'उपन्यास-कुसुम' माला—संख्या २५

॥ श्रीः ॥

विधि-विधान

अथवा

विपर्यय

डाक्टर नरेशचन्द्र सेनगुप्त, एम० ए, डी० लिट.

लिखित अपूर्व उपन्यास "विपर्यय" का अनुवाद

अनुवादक—श्री अमजद् अली खां, बी०एस्‌सी०

लहरी बुक डिपो

बनारस सिटी

१९३७

प्रकाशक—
दुर्गाप्रसाद खत्री
प्रोप्रा० लहरी बुकडिपो
बनारस सिटी

प्रथम संस्करण

१,००० प्रति — मूल्य [illegible])
सजिल्द का चार आना अधिक

मुद्रक—
दुर्गाप्रसाद खत्री
लहरी प्रेस
काशी

'उपन्यास-कुसुम' माला—संख्या २५

विधि-विधान

अथवा

विपर्य्यय

'उपन्यास-कुसुम' माला

१	नरेन्द्रमोहनी	१३	काला चोर
२	सुरसुन्दरी	१४	माधुरी
३	हवाई डाकू	१५	मौत का फन्दा
४	लालपञ्जा	१६	जुमेलिया
५	चन्द्रभागा	१७	मायावती
६	चन्द्रकान्ता	१८	मदरेसिया
७	रक्तमण्डल	१९	सुफेद शैतान
८	कुसुमकुमारी	२०	खूनी कौन ?
९	कुसुमलता	२१	भूली हुई याद
१०	बलिवेदी पर	२२	भयानक भ्रमण
११	माया	२३	चोर
१२	कलंक कालिमा	२४	मीठी भूल

२५ विधि-विधान

परिचय

मैंने वङ्गभाषा के कई उपन्यास हिन्दी में अनुवाद किये हैं—जिनमें नरेशचन्द्र के उपन्यास भी सम्मिलित हैं। वंगभाषा के उपन्यास-साहित्य में शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के बाद ही नरेश बाबू का स्थान आता है और निःसन्देह नरेश बाबू औपन्यासिक के हिसाब से एक श्रेष्ठ रत्न हैं। 'विपर्य्यय' उपन्यास उन्हीं ही की सर्व श्रेष्ठ कीर्त्तियों में से एक है जिसका यह अनुवाद 'विधि-विधान' के नाम से हिन्दी प्रेमियों के सामने रक्खा जा रहा है। जो लोग वंगभाषा से परिचित नहीं हैं—अथच वंगभाषा के उपन्यास साहित्य का ज्ञान लाभ करना चाहते हैं उन्हें इस पुस्तक का पाठ करना परमावश्यक है क्योंकि यह वंगभाषा की एक विख्यात पुस्तक है। इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि लेखक ने अबतक जितनी पुस्तकें लिखी हैं और उनमें जितने भी चरित्र-चित्रण किये हैं उन सभों में 'विपर्यय' की 'अनीता' चरित्र चित्रण में सर्व-श्रेष्ठ समझी जाती है—सभी समालोचकों का यही अभिमत है। इसके अतिरिक्त यह उपन्यास बहुत रोचक और मनोरञ्जक भी है और एक बार पढ़ना शुरू करने से अन्त तक पढ़े बिना रहा ही नहीं जा सकता है।

वंगभाषा की इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करने में मैंने स्वतंत्रता का कहीं आश्रय नहीं लिया है अर्थात् हिन्दी अनुवाद में मूल पुस्तक का वास्तविक स्वरूप वर्त्तमान है। मैंने यथासाध्य चेष्टा कर जहांतक हो सका मूल भाषा और शैली के सौंदर्य को नष्ट होने नहीं दिया है, जिससे इस पुस्तक को पढ़ते समय बहुत कुछ मूल उपन्यास को पढ़ने का ही आनन्द मिलता है।

यहां मैं बहुत संक्षेप में लेखक की समालोचना करने की धृष्टता भी करता हूँ पर मेरी प्रार्थना है कि यदि पाठक इस उपन्यास को पढ़ कर पूरा आनन्द उठाना चाहते हैं तो उन्हें इस समालोचना को अभी नहीं पढ़ना चाहिये—क्योंकि प्रथमतः तो इसमें उपन्यास के गल्पांश की अनेक बातें आलोचित हुई हैं जिनका उपन्यास नहीं पढ़े विना समझना कठिन है और द्वितीयतः इन समालोचनाओं को पढ़ने से गल्पांश का बहुत कुछ मालूम हो जाता है जिससे बाद में उपन्यास को पढ़ने से गल्पांश मालूम रहने के कारण वह जितना मनोरञ्जक लगना चाहिये उतना नहीं लगता है। अतएव मेरा पाठकों से यही निवेदन है कि वे पहले उपन्यास को पढ़ कर समाप्त कर लें तब इस समालोचना को पढ़ें।

नरेशचन्द्र के उपन्यासों में यह 'विपर्य्यय' वास्तव में एक सम्पूर्ण भिन्न प्रकार का उपन्यास है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही की इसमें प्रधानता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कला में बंगला लेखक कितने निपुण हैं यह पुस्तक उसका एक विशिष्ट उदाहरण है। पुस्तक को पढ़ते समय शुरू ही से पाठक के चित्त में एक आकर्षण की अनुभूति होती है। पर इस आकर्षण के वास्तविक रूप को शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है—उसको पाठक केवल अपने हृदय में अनुभव कर सकते हैं। यह अनुभूति पाठक को कल्पना के राज्य में विचरण कराती है—उसके हृदय के प्रत्येक स्तर में भावोच्छ्वास का श्रोत बहा देती है—उसके अन्तःकरण के अन्तरतम प्रदेश में आनन्द के अनन्त सुख और वेदना के गभीर दुःख का स्पर्श करा देती है।

नरेशचन्द्र में एक विशेषता यह है कि वे आदर्शवाद,के घोर विरोधी हैं। आदर्शवाद की छाया में जो मनुष्य की सत्य अनुभूति और हृदय का सच्चा उद्गार छिप जाता है वे इस बात को खूब अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिये वे हर जगह मनुष्य के प्राण की—हृदय की—सत्य अनुभूति को ही प्रकाश करते हैं। इस सत्य अनुभूति के साथ मनुष्य के आदर्श

और नीति का जो भीषण संघर्ष होता है इसको वे साहित्य के वाक्यों में प्रकाश करते हैं। इस संघर्ष की पुकार उनके प्रत्येक वाक्य से गूंजती है। इस पुस्तक में भी इसी संघर्ष की प्रधानता है।

मानव जीवन के जिस संघर्ष के आधार पर इस उपन्यास की रचना की गई है वह संक्षेप में इस प्रकार है। अनीता एक पढ़ी लिखी ब्राह्म बालिका है। उसका इन्द्रनाथ से प्रेम करना धर्मगत और समाजगत संस्कार के अनुसार पाप है। वह आदर्श प्रेम नहीं है, नैतिक नियमों के अनुसार यह अधःपतन है। परन्तु अनीता के अन्तःकरण की सत्य अनुभूति केवल यही है कि वह इन्द्रनाथ पर मुग्ध है। वह इस अनुभूति को अस्वीकार नहीं कर सकती है, और ऐसी अवस्था में आदर्शवाद का अस्तित्व ही नहीं रह जाता, नैतिक नियम लुप्त हो जाते हैं। यहीं आदर्शवाद और नीति का वास्तविक संघर्ष आरंभ होता है।

मनोरमा में भी ठीक इसी बात का प्रदर्शन किया गया है। मनोरमा हिन्दू-विधवा है। ब्रह्मचर्य पालन करना और अपने को सब सुख से वञ्चित रखना ही उसका एकमात्र कर्त्तव्य है। परन्तु क्या वह ऐसा कर सकती है? उसका अन्तर वैधव्य के कठोर नियमों से पीड़ित हो जाता है। वह अनुभव करती है कि अपने वाह्य आडम्बरों से चाहे वह जो कुछ भी प्रदर्शन करे पर वह उसके अन्तर का सत्य रूप नहीं है, उसके हृदय की सच्ची अनुभूति नहीं है। वह अपने सत्य रूप को प्रकाश न कर केवल वैधव्य का अभिनय करती है, पर वह वास्तव में विधवा नहीं है।

एक स्थान पर मनोरमा सोच रही है,—"मनोरमा को मालूम हुआ कि उसका सारा जीवन एक प्रकार मिथ्या है। वह जिस शोक का परिच्छद सर्वदा धारण करे रहती है, क्या वह उस शोक की छाया को भी अपने मन में अब कभी देख सकती है? ...... इन सब आनन्द मिलन में योगदान करना उसके लिये अनधिकार चर्चा है। वह विधवा है, ब्रह्मचारिणी है, यह जो हास्य कोलाहल है—जगत का यह जो

आनन्द का श्रोत है — क्या इसी में उसका वास्तविक स्थान है ? यदि वह सचमुच ही विधवा है तो इन सब को छोड़ कर क्यों न आ सकी ?"

"परन्तु यही क्या विधाता का न्याय विचार है ? व्यर्थता की आग में जलाने के लिये उसके हृदय में इतनी वासना को नहीं भर देने से क्या भगवान के न्याय की रक्षा नहीं होती ? परीक्षा ? हाय उसने क्या कम परीक्षा दी है ? स्वामी को खोकर उसने कठोर ब्रह्मचर्य्य के द्वारा मन को संयत करने की चेष्टा की है। अपने जीवन के आरम्भ ही में वह सकल सुख सम्भोग से वञ्चित हो गई और साथ साथ अपने कठोर संन्यास व्रत से भी वञ्चित हो गई ? उसके समान इतनी परीक्षाएं कब किसको देनी पड़ी हैं ? कौन कब इतना आत्मसंवरण कर सका है ? परन्तु उसके इस प्रयत्न का क्या यही पुरस्कार है ?—दूसरों को तो कभी इस प्रकार की अग्निपरीक्षा में नहीं पड़ना पड़ा है ! दूसरों का जीवन तो चारों ओर से इस प्रकार कभी व्यर्थ नहीं हो जाता ! तब उसी ने ऐसा कौन सा पाप किया है कि भगवान उसे इतना दुःख दे रहे हैं ?"

यह केवल मनोरमा के हृदय की अनुभूति नहीं है—यह समस्त भारतवर्ष की विधवाओं की पीड़ित आत्माओं की पुकार है। कितनी विधवाएं ऐसी हैं जो इस व्यथा-पूर्ण कठोर संस्कार के वशीभूत होकर ज्वालामय जीवन व्यतीत करती हैं और केवल मात्र वैधव्य का नाटकीय अभिनय ही किया करती हैं ! उनके वाह्य आडम्बर की ओट में पड़ी हुई उनकी अन्तरात्मा की व्यथा दूसरों के पास अदृश्य ही रह जाती है।

वैधव्य की इस निरर्थकता पर लेखक ने बहुत जोर दिया है क्योंकि यह केवल समाज ही की एक विकट समस्या नहीं है—यह मानव जीवन के प्रत्येक अंग का एक प्रकाण्ड सत्य है। एक जगह मनोरमा अपने मन में अपने मन के सच्चे रूप के बारे में कल्पना करती है—"उसने अनुभव किया कि वाह्यिक आचार विचार की दृष्टि से वह चाहे कितनी ही निष्ठावती क्यों न हो, पर अपने अन्तर से वह विधवा नहीं है। वह अपने

स्वामी के फोटोग्राफ की पूजा कितना ही मन लगाकर क्यों न करे, पर स्वामी के लिये नारी में जो व्याकुलता होनी चाहिये वह उससे एक दम दूर हो गई है। उसके स्वामी की स्मृति अब एक सुदूर अतीत के अर्द्ध-विस्मृत स्वप्न के समान रह गई है। इसके अतिरिक्त—और यही उसके लिये और भी भय की बात है—उसका हृदय अब विधवा का ऊसर अन्तर नहीं रह गया है। अन्तःसलिला फल्गू के समान उसमें रस की धारा प्रवाहित हो रही है। उसका समस्त यौवन तृप्ति की व्याकुल आकांक्षा से मत्त हो रहा है......!"

इसके बाद जब मनोरमा को पता लगता है कि अमल को उससे प्रेम है तो उसके समस्त शरीर और मन में प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं। "......मनोरमा ने यह अपने अन्तर में कैसा स्पन्दन अनुभव किया? उसके हृदय के अन्तरतम स्थान में यह कौन सी वंशी बज उठी? विधवा के ऊसर हृदय में यह कैसा रस का श्रोत वह पड़ा?"

मनोरमा के मन की यह धारा ही मानव-जीवन का एक महान सत्य है। मनुष्य के वाह्य आचरण के आवरण में उसके अन्तर का वास्तविक रूप गुप्त रहता है। उसके अन्तर की गुप्त अनुभूति और वाह्य प्रदर्शन के बीच में परस्पर एक भीषण विद्रोह होता रहता है। वह जो कुछ दिखलाता है उसे सचमुच अपने अन्तर में अनुभव नहीं करता है। इसी लिये मनोरमा को मालूम होता था कि 'उसका जीवन एक प्रकाण्ड मिथ्या से पूर्ण है।'

'अनीता' का चरित्र-चित्रण, निःसन्देह लेखक की कल्पना की एक अनुपम कीर्त्ति है, लेखक की उपन्यास-कला का एक चमत्कार है। 'अनीता' के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने से भी लेखक के यही आदर्शवाद और नीति-शास्त्र के विरुद्ध विद्रोह घोषणा करने का आभास मिलता है। अनीता नारी है, मानव है। उसका धर्म मानव-धर्म के अन्तर्गत है। उसका स्वभाव मानव-स्वभाव है। उसे इन्द्रनाथ से प्रेम

है। समाज के संस्कार, धर्म के जटिल तत्व, और नैतिक दृष्टि से देखने से अनीता का इन्द्रनाथ से सम्बन्ध पापमय है। समाज, धर्म और नीति की आंखों में अनीता पापी है क्योंकि परपुरुष-प्रेम महापाप है और विशेषतः इसलिये कि इन्द्रनाथ दूसरी नारी का स्वामी है। परन्तु प्रकृति की आंखों में क्या अनीता पापी है? मनुष्य मात्र प्रकृति से उद्भूत है अस्तु उसके लिये प्रकृति के नियम ही अवश्य पालनीय हैं। वह प्रकृति तो प्रेम को पाप नहीं कहती! प्राकृतिक प्रेम तो सत्य सुन्दर और निर्मल है—उसमें पाप की मलिनता कहां है! फिर अनीता का प्रेम करना कैसे पापमय हो सकता है? एक स्थान में अनीता कहती है, "......प्रेम कर्त्तव्य से भी बड़ी कोई एक चीज है, कर्त्तव्य सीमावद्ध होकर चलता है और प्रेम का स्वभाव यही है कि वह दोनों तटों को प्लावित कर उसी में अपने को विसर्जित कर देता है ......!"

किसी भी दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक बात है। मनुष्यमात्र इस प्रकृतिगत स्वभाव का दास है। प्रेम करना या किसी पर मुग्ध हो जाना मनुष्य को कोई सिखलाता नहीं है—यह अनुभूति मन में स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है और सहस्र बार प्रयत्न करने पर भी कोई इस प्रेमानुभूति को अपने मन से निकाल नहीं सकता है—मनुष्य किसी के भी प्रति आकृष्ट हो सकता है, चाहे वह प्रेम धर्म की दृष्टि से पापमय हो या न हो, पर ऐसा आकर्षण होना अस्वाभाविक नहीं है। इन्द्रनाथ के प्रति अनीता का भी ऐसा ही आकर्षण है। आदर्शवाद और नीति के नियमों के अनुसार ऐसा आकर्षण होना धर्म विरुद्ध, समाज विरुद्ध और संस्कार विरुद्ध है। परन्तु यह प्रेम अनीता के हृदय के अन्तरतम प्रदेश की अनुभूति है। यह उसके अन्तःकरण का सत्य रूप है। अनीता इसे अस्वीकार नहीं कर सकती। वह यह नहीं सोच सकती है कि इस सुखानुभूति में कोई पाप भी रह सकता है। यह उसके प्रेममय अन्तर का सच्चा उद्गार है, यह मनुष्य के स्वाभाविक धर्म या

प्राकृतिक धर्म का अनुयायी है। लेखक ने यहीं धर्म और आदर्शवाद के बीच अनीता की वास्तविक अनुभूति का संघर्ष दिखलाया है और अन्त में उस स्वभावगत वास्तविक रूप के पास आदर्शवाद और नीतिशास्त्र के सीमाबद्ध तत्त्वों को हार माननी पड़ी है। अनीता के चरित्र का सारा विश्लेषण इसी आधार पर है। उसका समस्त जीवन उस आदर्श और इस सत्य के बीच कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर टक्कर खाता है। इस प्रेम के आदर्श के विरुद्ध विद्रोह घोषणा कर लेखक ने एक जगह लिखा है, इन्द्रनाथ कहता है,—"वह यदि दूर ही से अपने मन में अनीता की पूजा करे तो इससे किसी की क्या हानि हो सकती है? एक सुन्दर फूल को देख कर लोग बार बार उसे देखने के लिये प्रलुब्ध हो जाते हैं, इसमें यदि दोष नहीं है तो एक सुन्दर नारी को देख कर यदि उसकी मन ही मन प्रशंसा अथवा पूजा की जाय तो इसमें ही क्या हानि है...!"

इन वाक्यों में जिस विचार को प्रकट किया गया है वह भी मानव जीवन का विराट सत्य है। प्रेम करना मनुष्य का स्वभाव है, किसी पर मुग्ध हो जाना भी मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्य प्रेम में पड़ता है परन्तु वह धर्म और समाज की सीमाओं में कुछ इस प्रकार बद्ध रहता है कि उसे उस प्रेम को प्रकाश करने का साहस नहीं होता। उसके वाह्य आचरण या व्यवहार से वह प्रेम प्रकट नहीं होता है परन्तु इस कृत्रिम आवरण के अन्तस्थल में उस प्रेम का प्रबल स्रोत बहता रहता है—कामना की तीव्र पिपासा बनी रहती है। उस आकांक्षा को तृप्त करने का कोई उपाय नहीं रहता है—वह केवल विष का घूंट भर कर रह जाता है—यही तो जीवन का सत्य है।

इस आकांक्षा की अतृप्ति ही इस उपन्यास में एक महान ट्रेजेडी कि सृष्टि करती है। यह ट्रेजेडी भी मानव जीवन की ट्रेजेडी है। मनुष्य मात्र का जीवन सैकड़ों सहस्त्रों अतृप्तियों से पूर्ण है। उसकी सभी इच्छा और आंकाक्षायें कभी पूर्ण नहीं होती। अनीता को सब कुछ है।

उसे किसी वस्तु का अभाव नहीं, परन्तु तौभी उसका जीवन सुखमय नहीं बन सकता है, क्योंकि उसके जीवन को उसकी प्रियवस्तु नहीं मिली है, वह अपने प्रेमास्पद इन्द्रनाथ को नहीं पा सकती है। उसका सारा जीवन निरर्थक हो जाता है। उसके जीवन में एक विराट शून्य बना रहता है। उसके लिये दूसरा पथ नहीं है, उसे केवल एक ही पथ देख पड़ता है और वह है बनावटी सन्तोष। मनुष्य को जब तृप्ति पाने का कोई दूसरा उपाय नहीं मिलता तो वह इसी पथ का अनुसरण करता है। इससे वह सचमुच तृप्त तो नहीं होता है परन्तु वह केवल दिखलाता है कि वह तृप्त है—उसकी यह तृप्ति कृत्रिम रहती है, वास्तविक नहीं।

अनीता को भी इसी बनावटी संतोष का अवलम्बन करना पड़ता है। वह वैष्णव धर्म्म का अनुसरण करती है, क्योंकि उस धर्म का आधार ही प्रेम पर स्थापित है। वह प्रेम की प्यासी है. अस्तु उसे इस प्रेममय धर्म्म की आलोचना कर कुछ शान्ति मिलती है, कुछ सान्त्वना मिलती है। परन्तु यह शान्ति भी कृत्रिम है। उसके हृदय में प्रेम की जो अनन्त ज्वाला जलती रहती है, उस अग्नि को शान्त करने का कोई उपाय नहीं है। यह भी मानव जीवन का एक महान सत्य है। प्रेम मनुष्य पर कब और किस प्रकार आक्रमण कर बैठेगा यह कहा नहीं जा सकता है। आज इस विश्वसंसार में ऐसे मनुष्यों की संख्या कम नहीं है जिनके हृदय में रात दिन प्रेम की आग धधकती रहती है और उसी प्रेमाग्नि की चिता में उनकी समाधि भी हो जाती है। उनका कोई दोष नहीं रहता, कोई अपराध नहीं रहता, इस दुःख का कारण केवल यही रहता है कि वे प्रेम करते हैं। यही प्रेम का पुरस्कार है। अनीता का भी केवल यही दोष है कि उसको इन्द्रनाथ से प्रेम है। परन्तु इसको दोष कहना क्या उचित है? प्रेम तो निर्मल है, स्वर्गीय है, पापरहित है, इसमें पाप की पंकिलता कहां?

लेखक ने अनीता के द्वारा वैष्णव धर्म के प्रेम की कुछ व्याख्या की है।

वैष्णव धर्म्म का प्रेम तत्व सचमुच ही एक अपूर्व सृष्टि है। इन्द्र-नाथ के प्रेमसेनिराश हो कर जब अनिता वैष्णव-धर्म्म के जगत में प्रवेश करती है तो वह सोचती है कि भगवान को प्राप्त करने का यही तो सहज उपाय है, अनुभव कर सकती है कि साधना का यहीसत्य मार्ग है। कृष्ण प्रेम में विभोर होकर वह अपने को 'मीराबाई' के आदर्श में गठित करने की चेष्टा करती है। वह गद्गदचित्त से कृष्णजी का जप-ध्यान करने लगती। इन्द्रनाथ का कृष्ण के रूप में ध्यान कर, नारा-यण को इन्द्रनाथ के रूप में चित्रित कर, वह मग्न हो जाती है। एक अपूर्व आलोक से उसका समस्त चित्त उद्भासित हो जाता है। ससीम और असीम, जीव और नारायण, सब एकाकार हो जाते हैं। सब सीमाएं टूट करटुकरे टुकरे हो जाती हैं। उसके दिव्य दृष्टि के सामने जाग उठता है एक सीमाशून्य भेद रहित अखण्ड अपार प्रेमसागर। उस अनन्त सागर के बीच पद्मदल के उपर वंशीधारी मदनमोहन कृष्ण के रूप में इन्द्रनाथ विराजमान हैं। अहा हा! क्या सुन्दर दृश्य था! अनीता जिस प्रकार से इन्द्रनाथ की कल्पना करती है वह सम्पूर्ण मिथ्या है। उसमें सत्य की छाया भी वर्तमान नहीं है, परन्तु इससे अनीता को कृत्रिम तृप्ति मिलती है। यही है वह बनावटी संतोष।

सुख की सभी सामग्रियों के वर्तमान रहने पर भी जो मनुष्य सुखी नहीं बन सकता—'अनीता' उसका एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।

इस उपन्यास में सर्वत्र ही नरेश बाबू की प्रतिभा का श्रेष्ठ उदाहरण वर्तमान है। शुरू से अन्त तक करुण रस से पूर्ण इस उपन्यास को पढ़ कर पाठक अश्रुरोध नहीं कर सकता है। मनुष्य के हृदय को कोई प्रवृत्ति इतना प्रभावित नहीं कर सकती है जितना कि मनुष्य की मर्म-व्यथा। मानव अन्तर की मर्म-व्यथा मनुष्य के अन्त.करण के अन्तरतम स्थल में आघात करती है और उस आघात से हृदय में जो कम्पन की सृष्टि होती है उसकी वेदना पूर्ण अनुभूति हृदय पट में स्थायी गंभीर छाप बना देती

है। वेदना की अनुभूति ही कला का प्राण है। नरेश बाबू ने भी इसी पथ का अनुसरण किया है। इस पुस्तक का करुण रस पाठकों के चित्त में स्थायी प्रभाव डालता है।

और एक बात लक्ष्य करने की वस्तु है। यह है इस पुस्तक की गम्भीर वेदना। इसका एक उत्तम उदाहरण मिलता है जब कि अनीता के अमल के पास से चले जाने के बाद उसके कमरे की अवस्था का वर्णन किया गया है। "अनीता उस कमरे को जैसा रख कर गई थी वह अब भी ठीक वैसा ही सुन्दर और वैसा ही सुसज्जित था। अमल ने उसकी एक वस्तु को भी इधर उधर नहीं हटाया था। यदि अनीता किसी दिन भी उस त्यक्त गृह में लौट आये तो उसे किसी वस्तु का अभाव न हो—यही अमल की कामना थी। पर अनीता नहीं लौटी—!" यह कितना वेदना-पूर्ण दृश्य है! फिर जब हम पढ़ते हैं कि अनीता उसी कमरे को मनोरमा को उपहार में दे देती है तो उस वेदना की गंभीरता अपनी सीमा में पहुँच जाती है।

अनीता जब अमल को छोड़ कर चली जाती है तो वह उपासना मन्दिर में पहुंचती है—वहां जब उसे गाने के लिये कहा जाता है तो वह गाती है, "मेरा जो कुछ भी अपना था उसको तुमने छीन लिया..." वह गा नहीं सकती है। गाते गाते उसकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगती है। वह गाना और साथ साथ वह अश्रुजल कितना वेदना पूर्ण है! कितना मर्मभेदी है! यही तो लेखक की कला का चमत्कार है।

फिर जब अनीता मनोरमा के विवाह में अमल के घर आती है और उसी कमरे में पहुंचती है जहां उसने इन्द्रनाथ से प्रेम किया था और देखती है कि जिस कुर्सी को पकड़ कर इन्द्रनाथ खड़ा था वह अब तक वहीं पड़ी हुई है और ठीक उसी अवस्था में रक्खी हुई है, तब वह आत्म संवरण नहीं कर सकती है। इसका वर्णन भी लेखक ने बहुत निपुणता के साथ किया है—"जिस कुर्सी को पकड़ कर इन्द्रनाथ निर्मम देवता

की मर्मर मूर्त्ति के समान खड़ा था, वह कुर्सी अब भी वहीं थी। सम्पूर्ण अन्यमनस्क होकर उस कुर्सी को अपने हृदय से लगा कर अनीता उस वेदनामय स्मृति को अनुभव करने लगी। उस दिन की प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना, विषाक्त कांटे के समान उसके वक्ष में चुभने लगी, तो भी केवल इस स्मृति से ही उसे कितना आनन्द मिला! इन्द्रनाथ की स्मृति-मात्र ही जो आनन्दमय थी!" इसके बाद इन्द्रनाथ वहां आ पहुंचता है और अनीता को उस कुर्सी से लिपटा हुआ पाता है। यह कितना वेदनामय है यह सहज ही समझा जा सकता है।

इसी प्रकार के अनेकानेक उदाहरण मिलेंगे। लेखक ऐसी परिस्थि-तियों की सृष्टि करने में बहुत सिद्धहस्त हैं। उनकी उपन्यास-कला की यह भी एक विशेषता है। इन परिस्थितियों में करुण रस का ऐसा समा-वेश रहता है कि पाठक का हृदय वेदना तथा सहानुभूति से पूर्ण हो जाता है, और वह वेदना नयनाश्रु बन कर निकलने लगती है।

नरेशबाबू की शैली भी एक आलोच्य वस्तु है। उनकी शैली में एक ऐसा माधुर्य्य रहता है कि पाठक को पुस्तक का कोई अंश अमनोरञ्जक नहीं मालूम होता है। यह उपन्यास भी उसी शैली का परिचय देता है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने से भी उनके सब उपन्यास और विशेषतः यह उपन्यास मनोविज्ञान और दर्शन के उच्च तत्वों का उदाहरण प्रदर्शन करता है और यही कला का एक आवश्यक अंग है। अथच लेखक इसे इस प्रकार प्रदर्शन करते हैं कि उपन्यास अधिकतर मनोरञ्जक बन जाता है। उनके इस उपन्यास का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर देखा जाता है कि लेखक ने मानव जीवन और मानव मन के जटिल तत्वों की विशद व्याख्या की है।

नरेशचन्द्र तथा उनके उपन्यास और विशेषतः इस उपन्यास के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न समालोचक और पत्र-पत्रिकाओं के जो मतामत हैं उनका सारांश भी मैं विश्व कवि रवीन्द्र के निम्नलिखित शब्दों में देता हूँ:—

"वंगभाषा के उपन्यास-साहित्य में जिन्होंने नया तथा स्थायी सम्पद दान किया है उनमें नरेश बाबू का नाम किसी से नीचे नहीं है। उनकी रचना के प्रत्येक अनन्य साधारण उत्कर्ष, वाक्य योजना की अपूर्व कुशलता, और चरित्र—सृष्टि की असामान्य शक्ति ने वंगभाषा के पाठक पाठिकाओं को मुग्ध कर दिया है। अथच इनकी प्रथम रचना से शेष ग्रन्थ तक, इनकी अम्लान प्रतिभा का समान परिचय मिलता है। किसको छोड़ कर किसको श्रेष्ठ कहा जाय यह विचार करना असम्भव हो जाता है। साहित्य में नया पथ और नया रस आविष्कार करने में इनकी कृतित्व जैसी है, उनका साहस भी वैसा ही अनंत है।

"नरेश बाबू में और एक प्रकाण्ड विशेषता यह है कि इनका उपन्यास केवल कहानी नहीं होता है। उसको पढ़ने के बाद वह मिट नहीं जाता है। वह लोगों को समझा देता है, उनको सोचने का अवसर देता है। समाज में, मनुष्य में, जो नाना समस्याएं छिपी हुई हैं, उन्होंने उनको ढूंढकर निकाला है और वे अपने सुपरिचित भाव प्रवणता पाण्डित्य और भाषा के असामान्य लालित्य तथा प्राञ्जलता की सहायता से उसको पाठक के चित्त में विचित्र रूप से आन्दोलित कर डालते हैं।"

"आपको कोई डर या भय नहीं है, पाठकों का मनोरञ्जन कर पुरस्कार पाने की लालसा आपकी नहीं है। आप स्वयं चिन्ता करते हैं और सत्य बात कहने की दुःसाहसिकता में प्रवृत्त रहते हैं। हम लोगों के इस स्तुतिवाद-पिपासु देश में आपके इस दुःसाध्य नध्यवसाय को देख कर मैंने अनेक दिन आपको मन ही मन स्तुतिवाद दिया है।"—रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

पटना
१९३७ ई०

अमजद अली खां

समर्पण

मैं इस पुस्तक को अपने गुरुदेव के श्री
चरणों में समर्पण करता हूँ

—अमजद अली खां

विधि-विधान

(सामाजिक उपन्यास)

पहिला परिच्छेद

मैट्रिकुलेशन की परीक्षा के बाद वाली लम्बी छुट्टी किस प्रकार बिताई जाय इसकी चिंता करने से पहले इन्द्रनाथ एक बार खूब अच्छी तरह से सो लिया। कई दिनों की लम्बी नींद से उठ कर तब वह नाना प्रकार का प्रोग्राम बनाने और बिगाड़ने लगा। एक छोटे से ग्राम की स्थिर शान्ति के भीतर अपने मन की चञ्चलता दूर करने का यथेष्ट उपादान पाना उसके लिये सहज न था, फिर भी बहुत तोड़ मरोड़ के बाद उसने एक साधारण सा प्रोग्राम ठीक कर ही लिया।

परन्तु इन्द्रनाथ के पिता उसकी छुट्टी के लिये एक दूसरे ही प्रकार का प्रबन्ध कर रहे थे। एक दिन प्रातःकाल इन्द्र-

नाथ तालाब के किनारे बैठा हाथ मुंह धो रहा था कि इतने में नौकर कुबेर ने आकर खबर दी कि उसके पिता उसे बुला रहे हैं। वह जल्दी से स्नान कर घर पहुंचा। नंगे पैर और नंगे सिर जब वह सुसज्जित बैठके में घुसा तो उसने देखा कि कई एक अन्य सज्जन भी वहां बैठे हुए हैं। अपरिचितों को देख वह कुछ अप्रतिभ सा हो उठा।

उसके पिता ने एक बार अप्रसन्न दृष्टि से उसकी ओर देखा, तब उसे बैठने के लिये कहा। इन्द्रनाथ फर्श के एक कोन में कुछ सकुचता सा बैठ गया। वे अपरिचित सज्जन उसके पढ़ने लिखने के बारे में उससे नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे। इन्द्रनाथ साधारणतः शर्मीला था, फिर भी अपने पढ़ने लिखने के विषय में उसे कुछ घमण्ड था, और इसी लिये इस विषय में उसके उत्तरों ने खूब बुद्धि का ही परिचय दिया। आगन्तुकों के सब प्रश्नों का ठीक उत्तर दे कर थोड़े ही समय में उसने अपने समस्त कृतित्व का परिचय दे दिया।

इसके बाद उसके पिता ने उसे जाने के लिये कहा। वह सीधा रसोई घर में अपनी माता के पास पहुँचा। उसकी माता रोटी बना रही थी, इन्द्र ने वहां बैठ कर खूब आराम से रोटी खाई, तब एक अंग्रेजी उपन्यास ले अपने कमरे में पढ़ने के लिये चला गया।

इसी समय अचानक उसकी छोटी बहन उसके पास पहुंच-

कर खूब हंसने लगी। इन्द्र ने यह देख कहा, "क्या है रे मनो, इतना हंस क्यों रही है ? क्या हंसते हंसते अपना पेट फाड़ डालेगी !! क्या है—बात क्या है ?"

मनोरमा ने कहा, "भैया, तुम परीक्षा में पास हो गये !!"

इन्द्र ने आश्चर्य से कहा, "अभी पास फेल क्या ? रिज़ल्ट निकलने में अभी बहुत देर है !"

मनोरमा०। अरे नहीं, मैं उस परीक्षा के बारे में नहीं कह रही हूं—मैं कह रही हूं कि आज की परीक्षा में तुम पास हो गये ?

इन्द्र०। आज की किस बात की परीक्षा ?

मनो०। वाह ! तुम्हें मालूम ही नहीं ! अभी तुम्हारे ससुर आकर तुम्हारी परीक्षा न ले गये हैं !!

झट सभी बातें इन्द्रनाथ के सामने साफ हो गईं। उसके माता पिता उसका विवाह करना चाहते हैं यह तो उसे मालूम हो चुका था। अब यह भी जान गया कि वे उसके भावी ससुर ही थे जो उससे इतनी बातें पूछ रहे थे।

मनोरमा के चले जाने बाद वह तरह तरह की बातें सोचने लगा। आगन्तुक यौवन के अग्रदूत की भांति एक अपूर्व प्रेम लालसा उसके मन में उदय हो उठी जिसमें प्रेम का असली आवेग यद्यपि न था परन्तु मेघाच्छन्न ज्योत्स्ना के समान एक अस्पष्ट मधुर मादकता अवश्य थी। आह ! उस

समय वह क्या जानता था कि इस स्वप्न के भीतर छिपी हुई है एक गंभीर वेदना। 'वह' कैसी है? गौर वर्ण या कृष्ण वर्ण? सुन्दर या असुन्दर? उसका हृदय मधुमय है या कठोर? इन्द्रनाथ ने अपने मन से ये सब प्रश्न नहीं किये। वह केवल स्वप्न ही देखता रहा, और उस स्वप्न-राज्य में उसने अपनी प्रिया को ठीक उसी तरह का बना डाला जैसा कि उसका मन चाहता था।

यह सब हो चुकने के बाद उसकी भावी पत्नि कैसी है यह जानने के लिये इन्द्रनाथ की इच्छा हुई। उससे भी अधिक इच्छा हुई उसके सम्बन्ध में किसी के साथ बात चीत करने की। परन्तु किससे वह इस बात को निकाले? मनोरमा से तो इस बात के बारे में पूछना ठीक नहीं होगा! परन्तु शायद मनोरमा भी ठीक यही चाहती थी कि अपनी आगंतुक भाभी के बारे में बातें करे—इस लिये थोड़ी देर ही में इन्द्र ने अपनी प्रिया के बारे में बहुत सी बातें जान लीं।

आखिर इन्द्रनाथ का विवाह हो गया। जब लाल वस्त्र का आवरण खोलने पर सरयू का मुंह इन्द्र की आंखों के सामने सचमुच ही प्रकाशित हुआ तब उसने कोई नई चीज न देखी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों यह मुंह उसका चिर-परिचित, चिर-आकांक्षित ही हो। इसके बाद स्तब्ध रात्रि में उत्सुक चक्षुओं के सम्मुख सरयू ने जब उसके मृदु आवाहन के उत्तर में कुछ हँसकर कहा, "क्या?" तो उस

समय उसके प्राणों में जिस संगीत का झंकार ध्वनित हो उठा वह भी उसे चिर-परिचित ही मालूम हुआ।

पित्रालय और श्वशुरालय में रह कर इन्द्रनाथ की लम्बी छुट्टी एक अत्यन्त मधुर परन्तु क्षुद्र स्वप्न के समान कब और कैसे बीत गई यह इन्द्रनाथ को मालूम भी न हो पाया। जब बिदा होने का समय आया तब उसे केवल यही मालूम हुआ कि छुट्टी लम्बी नहीं बहुत छोटी थी। विधाता और समस्त घर वालों के अन्याय के प्रतिवाद स्वरूप एक दीर्घ श्वास और कुछ अश्रुजल विसर्जन कर इन्द्रनाथ कलकत्ता चला गया, और सरयू उसकी पुस्तकें कापियां आदि सामने रख स्वप्न देखने लगी।

दूसरा परिच्छेद

इन्द्रनाथ के दुःख में भी सुख की एक बात थी। उसने परीक्षा अच्छे नंबरों से पास की थी और इस कारण बीस रुपये की वृत्ति भी पाई थी। इसके सिवाय, उसका इतने दिनों का स्वप्न भी तो आज सफल होने जा रहा था। वह सचमुच ही कलकत्ते के प्रेसीडेंसी कालेज में पढ़ने के लिये जा रहा था।

वह जो एक महान पुरुष है, यह ज्ञान उसके मन में जाग

उठा था, इसी लिये उसने उत्साह के साथ कालेज में प्रवेश किया। उसकी आयु सोलह वर्ष की थी, तौ भी आकार में वह बहुत छोटा ही मालूम होता था। इतने छोटे बालक की बहादुरी देख कर विश्व के सभी लोगों के मन में आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा यही उसके निकट स्वाभाविक मालूम होता था। परन्तु कालेज पहुँचने पर यह देख उसे दुःख हुआ कि अपने गांव में रहते समय वहां के लोगों को वह जैसे आश्चर्यान्वित कर सकता था, यहां वैसा कुछ भी नहीं हो पाया। कालेज के प्रोफेसर लोग आकर साधारण रीति से ही लड़कों का नाम पुकार जाते हैं,—उसके नाम पर पहुँच कर वे चकित होकर ठहर तो नहीं जाते हैं, उसकी ओर एक बार घूम कर भी तो नहीं देखते हैं,—निर्विकार चित्त से अपना अपना वक्तव्य बोल कर चले जाते हैं। क्लास में जो एक इतना अच्छा लड़का है—एक इतना मेधावी बालक है,—इसकी तो वे कुछ भी परवाह नहीं करते! अन्य लड़के भी उसे देख कर अचम्भा नहीं मानते,—यह सब देख उसे कैसा कुछ एक दुःख सा हुआ।

बहुत दिनों तक तो किसी ने उसकी कुछ परवाह ही न की, उसके साथ बात चीत करने के लिये व्याकुल होकर उसके पास आना तो दूर रहे, उसका अस्तित्व तक स्वीकार करने का कोई चिन्ह नहीं दीख पड़ा। केवल यही नहीं—कुछ वेदना के साथ उसने अनुभव किया कि बहुत से दूसरे लड़के उससे कहीं अधिक चलते पुर्जे हैं। उसे अनिच्छापूर्वक ही

स्वीकार करना पड़ा कि उनमें से कोई कोई तो उसी के समान था उससे भी अधिक अच्छे थे। परन्तु साथ ही साथ उसने यह भी देखा कि अधिकतर लड़के कुछ भी अच्छे नहीं हैं। बात बोलने में चाहे बहादुर हों, दुनिया की सब खबर रखते हों, और बड़े बड़े गूढ़ मामलों में अत्यन्त सहज सरल मुख बना कर मतामत प्रकाश करते हों, परन्तु वास्तव में उनमें कुछ भी बुद्धि नहीं है यह भी वह अच्छी तरह जान गया।

इन्द्रनाथ के जो कोई भी मित्र न बने ऐसी बात न थी। उसी के समान सरल शान्त स्वभाव के भी कुछ लड़के थे जो उसी के ऐसा पिछली बेञ्चों पर बैठते थे। उनमें से कुछ लड़कों के साथ उसकी मित्रता हो गई थी। समय समय वह उनके साथ गप किया करता था। उनमें 'अच्छा लड़का' कह कर उसका कुछ नाम भी हो गया था। परन्तु उनकी ठंढी प्रशंसा से इन्द्रनाथ को कुछ विशेष सन्तोष न होता था। वे लड़के जो आगे की बेञ्चों पर बैठते थे, जो लम्बी लम्बी बातें किया करते थे, तीव्र वेदना के साथ इन्द्रनाथ ने अनुभव किया—कि वे ही क्लास के "लीडर" हैं। उनके पास जाकर उसका मन नत हो जाता था। उसके स्वाभाविक घमण्ड को चूर्ण कर, इसका चित्त ललचने लगता था और उन्हीं के साथ बैठने और रहने की इच्छा होती थी।

उसकी यह आकांक्षा पूर्ण होने में अधिक देर भी न हुई। किसी तरह यह बात प्रगट हो गई कि इन्द्रनाथ विवाहित है।

एक दिन इसी बड़े दल का एक लड़का आकर उसके साथ बहुत आत्मीयता दिखाता हुआ बोला, "अच्छा. तुम्हारे साथ यह बात भी है! तुम्हें पहले ही कहना चाहिये था !!"

इन्द्रनाथ का मुंह लज्जा से लाल हो गया। परन्तु वह इस सम्भाषण से आनन्दित हो गया। क्रमशः उस दल के लड़कों ने उसे अपनी ओर खींच लिया। इन्द्रनाथ के साथ उसकी स्त्री के सम्बन्ध में बातें करना ही था उन लोगों का प्रधान आनन्द। इन्द्रनाथ भी इस तरह की बातों से विमुख न था। सरयू के सम्बन्ध में कुछ कहने या सुनने में उसे अत्यंत आनन्द मिलता था, उसमें उसकी समस्त बुद्धि लोप हो जाती थी। अस्तु वह मन लगा कर उस बारे में बातें करता था। कब सरयू के साथ क्या क्या बात हुई थी, परस्पर वे दोनों कब और कैसे प्रेमालाप करते थे, इत्यादि बातों को वह बड़े प्रेम से कहता था यहां तक कि सरयू की लिखी हुई चिठ्ठियां भी कभी कभी वह इन लोगों को दिखला देता था।

अमल था क्लास भर का नेता - सर्दार। वह कोई बहुत तेज लड़का न था, कोई स्कालरशिप भी उसे मिला न था। पर था वह धनी घर का लड़का,—अपनी बग्घी पर चढ़कर कालेज आता। उसके पिता एक बड़े बैरिस्टर थे और वह स्वयं भी उनके साथ एक दो बार विलायत हो आया था। अतः फैशन और कायदे-कानून के सम्बन्ध में उसका मत

निर्विवाद रूप से सभी स्वीकार कर लेते थे। इसके अलावा अन्यान्य भी सभी बातों में वह सब से अधिक खबर रखता था और प्रायः प्रत्येक विषय में उसके मन्तव्य दृढ़ रहते थे। वह किसी के साथ तर्क नहीं करता था, तर्क की जगह पहुंच कर वह केवल देवादेश के समान अपने विचारों को प्रकाश कर देता था। सभी को सहज ही पदानत कर, वह सभी पर अपना नेतृत्व फैलाता फिरता था।

परंतु इन्द्रनाथ के इन नये मित्रों के दल में यह अमल शामिल न था। जब ये नये मित्र अमल के पास आकर उसकी प्रेम कहानी सुनते थे, तब कुछ दूर बैठा वह हंसने लगता था। उसके पास ये सब घटनायें लड़कपन की सी मालूम होती थीं, परंतु इसी प्रकार देखते देखते एक दिन अचानक अमल का मन इन्द्रनाथ की ओर आकर्षित हो गया। इन्द्रनाथ का मुख-मण्डल पहली दृष्टि में साधारण सा मालूम होता था, परंतु उसकी आंखों में एक अद्भुत स्निग्ध शांत भाव छिपा हुआ था जो कुछ देर तक देखने के बाद दृष्टिगोचर होता था। उसकी इसी स्निग्ध कान्ति ने अचानक एक दिन अमल को आकृष्ट किया।

उसी दिन से अमल ने इन्द्रनाथ को अपना बना लिया। उसे बहुत पहिले ही मालूम हो चुका था कि बेचारे इन्द्र को सीधे और नम्र स्वभाव का पाकर वे दुष्ट लड़के उसकी हंसी उड़ाया करते हैं। इस लिये वह इन्द्रनाथ की रक्षा करने के

लिये अग्रसर हुआ। क्षुद्र इन्द्रनाथ को अपने विशाल वक्ष-स्थल में आश्रय देकर वह धन्य हो गया।

न जाने क्यों इन्द्रनाथ को भी इस लड़के अमल पर सब से अधिक लोभ हो गया था। अमल ही जो ईश्वरप्रदत्त अधिकार से क्लास का नायक हो रहा है, उसे यह बात मालूम थी। पहले पहल इसके आधिपत्य से उसे कुछ ईर्ष्या भी हुई थी पर पीछे, क्रमशः, जब उसका आत्माभिमान लुप्त हो चला तो वह इसके साहचर्य की कामना करने लगा। अमल के मुंह से किसी विषय में अपनी जरा सी भी प्रशंसा सुनते ही वह धन्य हो जाता था।

जितना ही दोनों की मित्रता घनिष्ट होने लगी, उतना ही दोनों परस्पर के प्रति अधिक अनुरक्त भी होने लगे। अमल ने देखा, इन्द्र में मनुष्यता है,—उसका अन्तर सरल, स्वच्छ है, प्रतिभा से उज्ज्वल है। अमल ने उस प्रतिभा को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखना शुरू किया। उधर इन्द्रनाथ ने देखा, अमल का चरित्रबल असाधारण है। उसके मन की शक्ति प्रबल है। साथ ही वह न्यायप्रिय भी है। अन्याय के प्रति अपने तीव्र विरोध को छिपाने की वह कभी भी चेष्टा नहीं करता था।

धीरे धीरे अमल ने इन्द्रनाथ को उसके अन्य मित्रों से छीन लिया। उसका उपदेश पा इन्द्रनाथ ने सरजू के संबंध में दूसरों के साथ बातचीत करना एक दम बन्द कर दिया।

हां वह अमल के साथ सरयू की सभी बातों को कहता था। अमल भी तृप्ति के साथ और सरल हृदय से प्रेम के किसी आदिष्ट के समान उन सब बातों का उपभोग करता था।

तीसरा परिच्छेद

स्वभावतः ही इन्द्र का अमल के साथ बहुत सी बातों में मतभेद भी था। स्वामी-स्त्री सम्बन्ध, पत्नि का अधिकार, इत्यादि विषयों में अमल के संस्कार और इन्द्रनाथ के संस्कारों में बहुत प्रभेद था। इन्द्रनाथ हिन्दू-परिवार के सनातन आदर्शों के पक्ष में था, परन्तु अमल हिन्दू नारी की वर्तमान अवस्था को ऐसी सुन्दरता के साथ अंकित करता था कि इन्द्र चाहे कितनी ही अच्छी बहस क्यों न करे, वह हार ही जाता था। अमल की आंतरिक धारणा इस विषय में जो कुछ भी क्यों न हो, पर वह अपनी बातों को इतनी दृढ़ता के साथ कहता था कि वे इन्द्र के मन में स्थायी चिन्ह बना डालती थीं।

एक दिन दोनों में ऐसी ही एक बहस छिड़ी हुई थी जब अमल ने कहा, "यह सब तो ठीक है, लेकिन यह तो कहो कि इस साधारण प्रश्न का क्या उत्तर तुम्हारे पास है? पुरुष

भी मनुष्य है और स्त्री भी मनुष्य है। जब इन दोनों की एक ही प्रकार की आत्मा है तब पुरुष की उन्नति के लिये जिन जिन चीज़ों की आवश्यकता है, स्त्री की उन्नति के लिये भी उन्हीं चीज़ों का प्रयोजन क्यों न हो? एक यही पढ़ने लिखने की ही बात को ले लो!"

इस बात को अस्वीकार करने का उपाय न था। इन्द्र अस्वीकार कर भी न सका, परन्तु उसने इतना जरूर कहा, "अवश्य ही स्त्री को पढ़ना लिखना सीखना होगा। लेकिन इसी लिये जो हम लोगों के ऐसा बी० ए०, एम० ए०, भी उन्हें पास करना होगा यह तो कोई बात नहीं। उनके कार्य्य का क्षेत्र अलग है, उसके लिये विशेष प्रकार की शिक्षा भी आवश्यक है।"

अमल बोला, "उन लोगों का क्षेत्र है रसोई बनाना, बर-तन मलना, क्यों?"

"नहीं,—हां—कुछ ऐसा ही है, तो?"

अमल०। मगर यह तो सोचो कि हम लोगों का बावर्ची या तुम लोगों का रसोइया स्त्री न होने पर भी रसोई कर सकता है, तो उसी तरह स्त्रियां भी पुरुष न होने पर भी उसका स्थान क्यों नहीं ले सकतीं!

इन्द्र०। केवल रसोई बनाना ही तो एक काम नहीं है। बच्चों का लालन पालन करना, स्वामी, श्वसुर, सास, को सुख पहुँचाना, आदि के लिये भी तो विशेष शिक्षा की आवश्यकता है।

अमल०। आवश्यक है तुम्हारा सिर! हम लोगों की सुपर्णा दीदी ने एम० ए० पास करके विवाह किया है। अब वे अपने बाल बच्चों को लेकर गृहस्थी कर रही हैं। उनकी गृहस्थी को देखो, और अपनी किसी अन्य विशेष-शिक्षा-प्राप्त हिन्दू नारी की गृहस्थी को देखो। वे ही विशेष शिक्षिता-गण बीस वर्ष तक सुपर्णा दीदी के पास सीख सकती हैं।

इसके बाद अमल ने अपनी चारु दीदी, चपला मौसी, सरसी बूआ इत्यादि इत्यादि के अनेकानेक उदाहरण देकर यह अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया कि उच्चशिक्षा लाभ करने से सभी विषयों में अशिक्षिताओं से अधिक निपुणता लाभ की जा सकती है।

बेचारा इन्द्र तो यह सब नहीं जानता था। सुपर्णा दीदी और चारु दीदी के जाति की महिलाओं के सम्बन्ध में उसका ज्ञान केवल मनोहर वस्त्र पहनी हुई मोम की गुड़ियों तक ही था। उन लोगों की भी जो एक गृहस्थी है, और वे भी बाल बच्चों का लालन पालन किया करती हैं, यह उसे मालूम न था। अतः लाचार उसे चुप हो जाना पड़ा। फिर भी अमल के सभी विचारों को स्वीकार न करते हुए भी इन्द्र ने कई एक विषय में अनजानते ही अमल के विचारों को ग्रहण कर लिया था। नारी को उच्च शिक्षा पाना आवश्यक है, इस बात को धीरे-धीरे वह भी अपने मन में अनुभव करने लगा था। परन्तु, स्कूल कालेज में पढ़ाकर शिक्षा देने से हिन्दू नारी के नारीत्व

में बाधा पड़ती है, घर में बैठाकर उच्च शिक्षा देना ही उचित है यही उसने तय किया था—उसने संकल्प कर लिया कि वह स्वयं सरयू को शिक्षा देगा, उसे पण्डिता बना डालेगा, यह दिखला देगा कि उच्च शिक्षा और गार्हस्थ्य विद्या में क्या सुन्दर समन्वय हो सकता है।

गर्मी की छुट्टी में वह बहुत सी कापियां, पेनसिल, कलम, दावात, पुस्तकें इत्यादि लेकर घर चला। अपनी बारह वर्ष की छोटी बहू को इस अढ़ाई महीने की छुट्टी में ही वह जो जो विद्या सिखला देने का संकल्प कर चुका था, उसकी फिह-रिस्त को सुन कर 'मिलटन' के भी आश्चर्य का ठिकाना न रहता।

परन्तु पढ़ना लिखना बहुत दूर अग्रसर न हुआ। प्रत्येक रात को इन्द्र पुस्तक कापी आदि ठीक कर टेबिल के पास बैठ सरयू की प्रतिक्षा करता। सरयू कुछ अधिक रात बीतने पर, जब सब सो जाते थे, पान लेकर आती और आते ही दो चार पान इन्द्र के मुंह में ठूंस देती थी। उसके बाद उसकी गोद में बैठ जाती थी। बहुत देर तक अनादृत पुस्तक नीरव अभिमान से टेबल पर पड़ी रहती थी। इसके बाद जब इन्द्र का कर्त्तव्य-ज्ञान सजग होता था तो वह जोर कर सरयू को बगल की कुर्सी पर बिठा कर पढ़ाना शुरू करता था। पर सरयू पढ़ नहीं सकती थी। वह कहती कि सारा दिन उसका कामकाज करने में ही बीता, पढ़ने का समय जरा भी

न मिला। फिर इधर उधर की बातें होने लगतीं। अन्त में सरयू आकर शय्या पर सो जाती और उस दिन की पढ़ाई खतम हो जाती थी।

किसी दिन, शायद इन्द्र के बहुत अनुनय विनय करने पर, सरयू बहुत मनोयोग पूर्वक हिसाब बनाती। दांतों से पेंसिल को काटती हुई, भौंहें चढ़ाकर, कापी की ओर एकाग्र दृष्टि से देखती, उंगली पर कुछ गिनती। इन्द्रनाथ अचानक घर में पहुँच कर इस दृश्य को देख चौंक कर खड़ा हो जाता। इसके बाद धीरे धीरे अग्रसर हो अचानक पीछे से सरयू के गाल पर एक गरम चुम्बन कर देता था—बस हिसाब की वहीं सम्पूर्ण समाधि हो जाती थी।

केवल अढ़ाई महीने का तो समय, उस पर भी दिन को बहू का साथ मिलना असम्भव, रात में कुछ सोना भी अनिवार्य, बचे खुचे समय का कितना अंश लिखने पढ़ने के समान बेकार काम में नष्ट भी किया जा सकता था? इसी लिये बहुत अधिक समय पढ़ने लिखने में बिताया नहीं जा सका।

तो भी इन्द्रनाथ का संकल्प भंग न हुआ। छुट्टी खतम होने पर वह सारी अव्यवहृत पुस्तकें और कापियां सरयू को देकर, और पूजा की छुट्टी के पहले क्या क्या पढ़ लेना होगा, इसके सम्बन्ध में विस्तारित उपदेश देकर गया। कलकत्ते आकर भी वह प्रत्येक पत्र में पढ़ने लिखने के बारे में उपदेश देता रहा।

सरयू भी यथा-शक्ति चेष्टा करती थी। प्रत्येक महीने के शुरू में बीच में और अन्त में एक एक बार प्रतिज्ञा कर पढ़ने बैठती। एक बार अंगरेजी एक बार इतिहास और एक बार साहित्य शुरू करती और तीन दिन तक अत्यन्त अध्यवसाय के साथ पढ़ती लिखती। तब चौथे दिन दोपहर को वह सोचती कि अब एक बार मनोरमा दीदी के साथ ताश खेला जाय, रात को पढ़ लिया जायगा। रात को खा-पीकर आराम से सो जाती थी। इच्छा रहती थी कि कुछ देर के बाद उठ कर पढ़ेगी परन्तु भोर को आँखें खोल कर ही याद आता था कि रात को पढ़ने की बात थी। किसी किसी दिन पढ़ने की बात याद भी न रहती थी। इसके बाद पढ़ने की बात एक दम भूल जाती थी। इस प्रणाली से अध्ययन करने के कारण प्रत्येक पुस्तक के शुरू के चार पांच पृष्ठ तो प्रायः पचासों बार पढ़े जा चुके, परन्तु अवशिष्ट अंश एक दम ही अपठित रह गया। क्योंकि, महीने के अन्त में वह जब पुस्तक को फिर हाथ में लेती थी, तब अत्यन्त विरक्ति के साथ अनुभव करती कि एक महीना पहले उसने जो कुछ पढ़ा था वह सब भूल गई है। अतः उसे फिर शुरू से पढ़ना पड़ता था।

पूजा की छुट्टी में जब इन्द्रनाथ घर लौटा तो पूजा इत्यादि की भीड़ भाड़ में ही कई दिन बीत गये। इन्द्रनाथ एक नई धारणा लेकर आया था। उस बार बङ्गीय साहित्य परिषद् में छात्र सभ्यों के द्वारा ग्राम ग्राम का विवरण संग्रह करने का

प्रस्ताव हुआ था। इन्द्रनाथ महल्ले महल्ले घूम कर नाना प्रकार का विवरण संग्रह करने लगा। उसी में उसके दिन व्यतीत हो गये। सरयू की शिक्षा की बात याद भी न आई। सरयू को भी छुटकारा मिला, क्योंकि उसने कुछ भी अध्ययन नहीं किया था और इसी कारण वह केवल अत्यन्त कुण्ठित और लज्जित ही नहीं हो रही थी बल्कि स्वामी के लिये इस प्रश्न का नाना प्रकार का उत्तर तैयार कर रखने पर भी वह कुछ आशंका के साथ स्वामी के तिरस्कार की ही प्रतीक्षा किया करती थी।

चौथा परिच्छेद

पौष-संक्रान्ति के दिन दोपहर के समय अमल अचानक इन्द्रनाथ के मेस में आ पहुँचा। उस समय मेस के सब लड़के बेतरह काम में लगे हुए थे। मेस में पूड़ी मिठाई इत्यादि बनाई जा रही थी। सब लड़के मिल जुल कर मिठाई पूड़ी हलुआ तरकारी इत्यादि बनाने का आयोजन कर रहे थे। मेस भर में केवल इन्द्रनाथ को ही मिठाई बनाने के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान था, इस लिये उसका भार उसी पर दिया भी गया था। जब अमल आकर उसके सामने खड़ा हुआ तब

इन्द्र अपना काम शुरू कर चुका था और चारो ओर लड़के खड़े होकर चिल्ला रहे थे, "ब्रेवो ! ब्रेवो !!"

अमल कुछ देर तक खड़ा होकर देखता रहा, तब इन्द्र से काम ठीक से नहीं हो रहा है यह देख स्वयम् अग्रसर होकर बोला,—"हटो, यह तुम्हारा काम नहीं है।" कहकर वह स्वयं बनाने लगा। उसको बहुत निपुणता के साथ काम करते देख सब लड़के आश्चर्य से देखने लगे।

मिठाइयां बना चुकने के बाद अमल इन्द्रनाथ को लेकर उसकी कोठरी में पहुँचा। वहां पहुँचते ही उसने इन्द्रनाथ को झट कपड़े पहनने के लिये कहा। इन्द्र ने पूछा, "क्यों ? कहां जाना होगा ?"

"मेरे यहां, तुम्हें खाने के लिये निमन्त्रण है।"

इन्द्र ने कुछ आपत्ति की, पर इसी समय तीन चार लड़के अमल के लिये कुछ मिठाइयां लेकर आ पहुँचे। अमल इन्द्र को साथ लेकर खाने बैठ गया। इसके बाद इन्द्र को अमल के साथ जाना ही पड़ा।

अमल के घर में जाने का इन्द्र को यही पहले पहल निमन्त्रण मिला था। अमल का बहुत बड़ा महल था और उसका रहन सहन भी राजसी था जिसका कुछ अंश उसे आज देखने को मिला।

अमल के पढ़ने वाले कमरे के सामने के छोटे "लान" पर स्थान ठीक किया गया था। इन्द्र और अमल बेंत की बड़ी

बड़ी दो कुरसियों पर जा बैठे। सामने एक टेबुल पर नाना प्रकार की मिठाइयां सजी हुई थीं। पूर्ववंग मिठाइयों का देश है, विशेषतः इन्द्र की मां मिठाई बनाने में बहुत ही निपुण थी, अतः नाना प्रकार की मिठाइयों के साथ इन्द्रनाथ का खूब घनिष्ठ परिचय था, परन्तु आज उसने देखा कि उसकी परिचित नाना प्रकार की मिठाइयों के सिवाय वहां अज्ञात-पूर्व और अश्रुतपूर्व अनेक प्रकार की और भी मिठाइयां सज्जित हैं।

इन दोनों के आकर बैठते ही अमल की मां वहाँ आईं और स्वयं एक एक प्याला चाय बनाकर इन्द्रनाथ और अमल को दिया। खाते खाते सब लोग गप-शप करने लगे। अमल की मां इन्द्र के साथ नाना प्रकार की बातें करने लगीं। कुछ देर बाद एक नव-प्रस्फुटित पुष्प के समान निर्म्मल, उज्ज्वल बालिका हाथ में एक प्लेट लिये आ पहुँची। अमल ने इन्द्र को उसका परिचय देते हुए कहा, "यह मेरी छोटी बहिन अनीता है।"

अनीता की आयु तेरह-चौदह वर्ष की होगी, किन्तु उसका स्वभाव अथवा चलन चाल हिन्दू परिवार की किसी साधारण तेरह चौदह वर्ष की लड़की से कहीं विभिन्न था। वह मानों एक मूर्त्तिमति प्राण-शक्ति के समान नृत्य करती हुई चलती थी। उसकी चञ्चल उज्ज्वल आंखें मानो कुछ बाधा-हीन आनन्द से नृत्य करती रहती थीं। उसका मुंह सुन्दर

था, शायद सरयू के समान एक दम दोषहीन तो नहीं है—परन्तु खूब ही सुन्दर। सरयू शान्त स्निग्ध है, और अनीता मानो तरल आनन्द से झिलमिल हो रही है। जीवन मानो इसके अङ्गों में उछल रहा था।

अनीता अपने हाथ वाले प्लेट से एक नई प्रकार की मिठाई उठा कर इन्द्र को देने के लिये बढ़ी। इन्द्र ने आपत्ति कर कहा, "आप और क्यों दे रही हैं! मैं किसी तरह और नहीं खा सकता हूं!!"

परन्तु अनीता छोड़ने वाली नहीं। अमल और उसकी मां भी ज़िद कर बैठीं,—लाचार इन्द्र को मिठाई लेनी ही पड़ी। इसी समय अमल हंस कर बोला, "अनि, तू तो आज शायद गर्व से नाच उठेगी, इन्द्र ने तुझे 'आप' कह दिया, अब तू 'लेडी' बन गई! क्यों?"

अनीता खूब हंस कर बोली, "सचमुच इन्द्र बाबू, यह आपका अन्याय है जो मुझे 'आप' कहते हैं!!"

अमल की माँ भी बोल उठीं, "हां, ठीक तो है, इतनी छोटी लड़की को भला 'आप' क्या!"

इन्द्र बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वह झट अनीता को 'तुम' भी न कह सकता था, और अब 'आप' कहना भी असम्भव था, अतः कुछ देर तक सोच कर तुम और आप दोनों को ही बचा कर बातें करता रहा। पर अन्त में तुम कहने का ही अभ्यास हो गया।

इन्द्र ने अमल से कहा, "इतनी तरह की मिठाइयां जो पृथ्वी पर होती हैं यही मुझे मालूम न था। अच्छा, क्या तुम्हारा बावर्ची ही यह सब बनाता है?"

"वाह! खूब अकल है!! माताजी और अनीता ने मिलकर यह सब बनाया है। आज सारा दिन यही काम किया गया है।"

'साहेब-गृह' के इस निमन्त्रण ने इन्द्र के मन में एक दूसरा ही चित्र चित्रित कर दिया। उसने इस जलपान के साथ अपने घर में मिठाई खाने की तुलना की। रसोई-घर के कच्चे बराण्डे पर बैठ कर उसकी माताजी मिठाई बनाती हैं और सारे बराण्डे भर में बाल बच्चे बैठ जाते तथा कोलाहल करते और जूठा गिराते हुए मिठाई खाते हैं। उसके साथ मिलान करने से अमल का यह अनुष्ठान कितना सुन्दर, कितना परिष्कृत्, कितना नीरव और कितना तृप्तिप्रद है—वह यही सब सोचने लगा। अमल की मां और बहिन ने अपने हाथों से मिठाइयां बनाकर और स्वयं सामने बैठ कर उसे खिलाया है, नौकर चाकरों का सम्पर्क मात्र भी इसमें नहीं आने पाया है। इन्द्र की मां यदि इसी अवस्था में अमल का निमन्त्रण करतीं तब, प्रथम तो ऐसा सुन्दर शोभायमान परिच्छद ही न रहता, सम्भवतः मैले कपड़े ही पहनी रहतीं, बरतन वासन स्थान, कुछ भी ऐसा न होता, इसके अलावे बहुत हल्ला चिल्लाहट इत्यादि रहती। इन्द्र को आज यह बात स्वीकार करनी पड़ी

कि इस समाज की परिच्छन्नता और कर्म-सौष्ठव एक अनुकरण करने की चीज है।

उसे और एक बात याद आई—वह थी सरयू। अनीता सुन्दरी है, मनोहारिणी है। इसी लिये अनीता की छवि आंखों के सामने पड़ते ही उसके सामने, उसके मन में, सरयू की छबि भी जाग उठी थी। सरयू उसकी प्रिया है—अनीता सो कुछ नहीं है, अतः यद्यपि निपुण हाथों से प्रसाधित सद्यःस्नात अनीता का मुंह कुछ अधिक मनोरम जान पड़ा फिर भी वह रूप के सम्बन्ध में सरयू को अनीता से कम न देख सका। परन्तु अनीता की शिक्षा, दीक्षा, उसकी सहज प्रसन्नता, उसकी हर एक बातों में प्रतिभा की छाप, इन सब बातों को उसने जरूर अनुभव किया। उसे मालूम हो गया कि सरयू को यह सब नहीं है। मालूम होते ही उसने यह भी ठीक कर लिया कि जरूर सरयू को वह अनीता के समान ही बना डालेगा।

× × ×

इसके बाद इन्द्र बहुत दफे अमल के घर गया है। बहुत दफे अनीता के साथ उसकी बात चीत हुई है। अनीता उसकी श्रेष्ट भक्त बन बैठी है। इन्द्र की ओर से वह अपने भाई अमल के साथ तर्क करती है। बात बात में इन्द्र का समर्थन करती है। उसके मन में जितने प्रश्न उठते हैं उनके समाधान के लिये इन्द्र के पास आती है। उसे यह सब करने में एक विन्दु भी संकोच नहीं होता, कोई उद्वेग नहीं होता। उसने अत्यन्त

सहज सरल होकर एक छोटी बहन के समान इन्द्रनाथ को वेष्टन कर लिया था, अतः इन्द्रनाथ को भी अनीता के चरित्र विद्या मधुरता आदि के सम्बन्ध में एक स्पष्ट धारणा हो गई थी।

पांचवां परिच्छेद

आई० ए० परीक्षा देकर इन्द्रनाथ जब अपने गांव लौटा तो उसे अपना घर बहुत ही श्री-हीन सा मालूम हुआ। उसकी मां बहिन और स्त्री मैले कपड़े पहने रहती हैं। घर द्वार बहुत ही गंदा और अपरिच्छन्न रहता है। खाने पीने का संस्कार बहुत ही कुरुचि-पूर्ण है—यह सब उसे खूब अच्छी तरह मालूम होने लगा।

कभी कभी वह इस सम्बन्ध में अपनी मां और बहन के साथ तर्क करता और अमल के घर की अद्भुत परिच्छन्नता की बात भी दो चार बार उन लोगों को सुना देता, पर वे लोग इसकी बातों को केवल हंसी में उड़ा देते थे। लाचार उधर से निराश हो वह स्वयं ही जी जान से गृह-संस्कार में लग गया। पहले अपने कमरे को खूब साफ सुथरा बना डाला। दरवाजे खिड़कियों में परदे लगाये, टेबुल को सुस-

ज्जित किया, और सरयू को रात दिन झाड़ने पोंछने के काम में नियुक्त कर रक्खा। तब उसने अपनी मां के कमरे को साफ करना शुरू किया। उसके बाद रसोई-घर और भोजन इत्यादि में संस्कार करने की चेष्टा की। अपनी माता जी से उसने कहा—"साहब लोग सुबह उठते ही चाय और आठ नौ बजे ब्रेकफास्ट खाते हैं—हम लोग क्यों नहीं ऐसा करें?" माताजी उसकी बात सुन खूब हंस उठीं। मनोरमा बोल पड़ी, "भैया, बहू को सिखा लो न—वे मेम साहब बन कर तुम्हारा ब्रेकफास्ट तैयार कर दिया करेंगी।" परन्तु इन्द्र भी सहज में छोड़ देने वाला जीव न था। इस काम से न हटा। घर में तीन टाइमपीस घड़ियां थीं। उसने एक को रसोई-घर में, एक को बैठक घर में, और एक को माताजी की कोठरी के बाहर वाले बराण्डे में लगा दिया। सबको टाइम के अनुसार काम करने को कहा गया। कै बजे उठना होगा, कै बजे तरकारी बनाना होगा, कै बजे रसोई तैयार हो जानी चाहिये, इत्यादि वह समय के अनुसार सब व्यवस्था करने लगा।

परन्तु किसी तरह भी कुछ नहीं हुआ। दो चार दिन तो किसी तरह चला, पर फिर कभी एक बार भी नियमानुसार काम नहीं हुआ।

उसने अपनी स्त्री को अनीता के समान बनाने की चेष्टा तब आरंभ की। दिन में कितने बार नहाना और कब कब क्या कपड़ा पहनना होगा, सदा सर्वदा कैसे चित्र के समान सु-

सज्जित रहना होगा, इस सम्बन्ध में उसने विस्तारित उप· देश दिया, परन्तु सरयू ने सब कुछ सुन कर कह दिया— "मुझे माफ करो, मैं मेम साहब बन कर नहीं रह सकती।"

इन्द्र बोला, "तुम्हें मेमसाहब बनने के लिये कौन कहता है? केवल सब समय शरीर को परिच्छन्न रखने की बात है। क्या इतना भी कर न सकोगी? और इतने के लिये लोग कुछ कहें तो कहने दो!"

सरजू बोली—"घर साफ करना, रसोई बनाना, बरतन मांजना, इत्यादि कामों के रहते क्या सब समय साफ सुथरा रहा जा सकता है?"

इन्द्र०। रहा जा सकता है कि नहीं, यदि देखतीं तो समझतीं।

इन्द्रनाथ को दुःख हुआ देख सरयू ने सजल आंखों से कहा, "रञ्ज मत हो, तुम जो कहोगे मैं वही करूंगी, कम से कम तुम्हारे सामने मैं कभी मैली कुचैली हो कर न आऊंगी।

सरयू ने इस प्रतिज्ञा को पालन करने की चेष्टा की— पर कर न सकी। पांच सात दिन में ही सब कुछ फिर पूर्व्वावस्था में पहुँच गया। इन्द्र को क्रोध हुआ, परन्तु वह एक बारगी ही निराश नहीं हो गया। उसने कभी कभी स्त्री पर विरक्त होना शुरू किया। सर्व्वदा उसे संशोधन करने की चेष्टा कर कुछ ही दिनों में उसने अपने को सरयू के समक्ष बहुत ही भयानक बना डाला। सरयू की बुद्धि मारी गई।

वह ऐसी ऐसी बातें करने और कहने लगी जो अनीता के लिये कहना या करना एक दम असम्भव था।

इन्द्रनाथ उसका ढंग देख और भी दुःखी हुआ। कभी कभी वह सोचने लगा—"अनीता के समान होने के योग्य गुण सरयू में हई नहीं है।"

इन्द्रनाथ के अन्तर्पट पर अनीता की अत्युज्ज्वल मूर्त्ति ने विराजमान होकर सरयू को चारो ओर से बहुत नीचा बना दिया। इससे इन्द्रनाथ का मन बहुत अप्रसन्न हो उठा। उसने समझ लिया कि सरयू को अनीता बना डालना असम्भव है। उसने स्थिर किया कि पढ़ना लिखना खतम कर जितना शीघ्र सम्भव हो वह नौकरी करेगा और तब सरयू को अपने साथ ले जायगा। वर्तमान परिस्थिति से हटा लेने के बाद सरयू को अनीता के आदर्श में गठन करने की चेष्टा की जायगी। संभव है तब कुछ उपकार हो।

अब वह पुनः सरयू को पढ़ाने की चेष्टा करने लगा, कारण इस समय उसे पूर्ण अवकाश था। परन्तु सरयू गृहकर्म्म में इतनी लगी रहती थी कि दिन भर पढ़ने लिखने में समय न दे सकती थी और रात को प्रायः थक कर सो जाती थी। इन्द्र अकसर उससे कहता, "तुम इतना काम क्यों करती हो! कौन तुम्हें इतना परिश्रम करने के लिये कहता है?"

सरयू उत्तर देती, "वाह, यह कैसे हो सकता है? माता

जी, ननद जी, ये लोग तो काम करें और मैं किताब लेकर घर में घुसी बैठी रहूं! सब मुझ पर थूकेंगे नहीं।

"थूकेंगी तो थूकने दो।"

"तुम यह भला क्या कह रहे हो! माता जी क्या बहू को घर में इसी लिये लाई थीं कि वे काम करते करते परेशान हो जांय, और वह किताब लेकर पढ़ती रहे,—यह कौन से धर्म्म में लिखा है!"

"हां, मेरे धर्म्म में लिखा है! फिर माता जी कब तुमको काम करने के लिये कहती हैं? वे भी तो तुम्हें पढ़ने के लिये ही कहती हैं, और मैं भी कहता हूं। स्वामी और सास की बातों को न सुनना कौन धर्म्म बताता है?"

"मैं तुम्हारी कौनसी बात नहीं सुनती हूं?"

"कहां सुनती हो! खैर कहता हूं, कल सवेरे उठो और सात बजे तक बैठ कर पढ़ो,—उठोगी? करोगी?"

"सवेरे? और माता जी घर द्वार साफ करेंगी! रसोई की तैयारी करेंगी! कैसे हो सकता है? अच्छा कल मैं दोपहर को काम काज खतम कर के पढूंगी। कैसा?"

"काम-काज खतम होने में तो तीन बजेंगे, उसके बाद संध्या समय के भोजन की तैयारी शुरू होगी, फिर कब पढ़ोगी? नहीं, यह नहीं हो सकता है। तुम्हें पढ़ना ही होगा, मैं माता जी से कहूंगा।"

"मैं तुमसे माफी मांगती हूं, माताजी से कुछ मत

कहना! मैं पढ़ूंगी, जैसे हो सके पढ़ूंगी—पर तुम किसी से कुछ बोलो मत, नहीं मैं लज्जा से मर जाऊंगी।"

इसके बाद कई दिनों तक लिखना पढ़ना नियमानुसार चलता रहा।

× × ×

एक दिन सवेरे उठते ही सरयू मनोरमा को देख कर चौंक उठी। घबड़ा के वह बोली, "बहन, तुम्हें क्या हुआ है?" भ्रातृजाया के इस स्नेह-सम्बोधन को सुन मनोरमा रोने लगी। सरयू ने और भी घबड़ा कर मनोरमा के मुंह को अपने वक्ष के भीतर खींच लिया और कहा, "क्या हुआ है, बहन,—मुझसे कहो!!"

मनोरमा ने हिचकी लेते लेते कहा, "आज सात दिन से मुझे उनकी कोई चिट्ठी नहीं मिली है। अन्तिम पत्र में उन्होंने लिखा था कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है—बुखार और खांसी हुआ है। उसके बाद फिर कोई खबर नहीं मिली है। कल रात मैंने एक भीषण स्वप्न देखा है, उसी समय से रो रही हूं।"

अचानक सरयू का हाथ पकड़ कर मनोरमा ने कहा, "बहन, तुम आज कह सुन कर मुझे घर भेजने का उपाय कर दो, मैं तुम्हारा चरण धो कर पीऊंगी!"

बालिका सरयू का हृदय कांप उठा। उसे मनोरमा के लिये बड़ी चिन्ता हुई, और क्यों न होती? वह भी तो इसी

प्रकार अपने स्वामी के लिये चिन्तित रहती है! यदि किसी दिन उसके स्वामी को कुछ हो जाय या उसे इसी तरह हफ्तों चिट्ठी न मिले, तो वह कैसी घबड़ाती है इसे सोच कर ही वह रोमांश्चित हो उठी, मनोरमा के प्रति समवेदना से उसका प्राण भर गया।

सरयू उसी समय अपने कमरे में लौट गई। इन्द्रनाथ उस समय तक भी अपने कमरे से बाहर नहीं निकला था। वह उस समय—अब दतवन नहीं, खूब दामी टूथब्रश से मुंह धोने के बाद हजामत बना रहा था, परन्तु सरयू के वेदनापूर्ण मुंह को देख कर वह चौंक उठा।

सरयू ने सब कुछ उससे कहा। सुन कर इन्द्र बोला, "फजूल का इतना भय! सरदी और बुखार होने ही से क्या कोई डर की बात हो जाती है—वह चिट्ठी नहीं लिख रहा है, उसे कुछ हुआ है? अच्छा, मैं एक टेलिग्राम कर देता हूं!"

सरयू बोली, "नहीं, मनोरमा ने एक बहुत भयानक स्वप्न देखा है! तुमसे कहना ठीक नहीं—उस स्वप्न से बहुत अमङ्गल होता है!"

"पगली कहीं की! स्वप्न से मङ्गल या अमङ्गल क्या हो सकता है! जानती हो स्वप्न क्यों होता है? हम लोग सोते समय जो चिन्ता करते हुए सोते हैं उसी के असर से स्वप्न होता है।"

परंतु सरयू ने एक न सुनी। वह जिद्द कर बैठी कि मनोरमा को उसके स्वामी का घर भेजना ही होगा। इन्द्र को न सुनते देख उसने अपनी सास से वही बात कही।

मनोरमा उस समय गर्भवती थी। इसी लिये उसकी सास ने उसे पिता के घर भेज दिया था। बात यही हुई थी कि लड़का न होने तक वह पिता के घर ही में रहेगी। इस अवस्था में बिना कहे पूछे अचानक ससुराल में कैसे भेजा जा सकता है? अस्तु अन्त में ठीक हुआ कि उसी समय अरजेन्ट टेलिग्राम कर मनोरमा के स्वामी की खबर ली जाय। इधर मनोरमा तैयार रहेगी, कुछ जरूरत पड़ने पर ही उसे चले जाना होगा।

टेलिग्राम का जो जवाब आया उसे पढ़ इन्द्रनाथ सर से पैर तक कांप उठा।—"मनोरमा के स्वामी को निउमोनिया हुआ है, विशेष चिन्ता का कारण है, मनोरमा को भेजने से अच्छा होता।" उसके मन में जो भीषण आशङ्काएं होने लगीं वह उन्हें किसी तरह भी छुपा न रख सका, परंतु मनोरमा को विशेष कुछ नहीं कहा गया। उसके स्वामी बीमार हैं, उसे एकबार जाना ठीक है—केवल यही बताया गया। इन्द्र स्वयं मनोरमा को ले कर रवाना हुआ।

इन्द्र की छुट्टी के शेष दिन मनोरमा के स्वामी की सेवा शुश्रूषा ही में बीत गए।

छठवां परिच्छेद

छुट्टी के अंतिम दिन इन्द्रनाथ एक बार घर आया और असबाब इत्यादि लेकर कलकत्ता रवाना हो गया। उस समय मनोरमा के स्वामी को ज्वर प्रायः न था परन्तु वक्ष में कुछ दोष रह गया था। डाक्टर लोगों ने कहा था कि यक्ष्मा या थाईसिस है परन्तु कविराज महाशय को यक्ष्मा होने में सन्देह था। वर्तमान में कविराजी चिकित्सा ही हो रही थी। इन्द्रनाथ की धारणा थी कि मनोरमा के स्वामी को एक बार कलकत्ते ले जाकर किसी बड़े डाक्टर को दिखलाना चाहिए या आवश्यक होने पर कहीं चेञ्ज में भेज देना चाहिए। पर वे साधारण स्थिति के लोग हैं, सामान्य तनखाह पर नौकरी करते हैं, उनके लिये इतना खर्च करना सम्भव नहीं है, इसी लिये इन्द्रनाथ ने अपने पिता से अर्थ-साहाय्य करने के लिये अनुरोध किया।

इन्द्रनाथ के पिता की अवस्था अच्छी थी अर्थात् अन्न-

चस्त्र में उन्हें कोई भी कष्ट न था। परन्तु झट जो वे हजार दो हजार रुपया निकाल कर दे देंगे ऐसी उन्हें आदत न थी। उन्होंने बहुत हिसाब लगा कर देखा कि इस समय वे केवल तीन सौ रुपये दे सकते हैं। यदि संभव हुआ तो पूजा के समय और तीन चार सौ रुपया दे सकेंगे। इन्द्रनाथ ने सोचा कि इतने रुपये से रोगी को कलकत्ते ले जाकर कुछ दिनों तक चिकित्सा की जा सकती है परन्तु इससे अधिक कुछ भी न होगा। तो भी अन्त में वह उन्हीं तीन सौ रुपयों को लेकर कलकत्ते जाने को तैयार हुआ।

जाने के समय सरयू ने एक अद्भुत बात कर डाली। उसने अपने स्वामी के बक्स को सजा दिया था पर इन्द्रनाथ उस पर सम्पूर्ण निर्भर न कर एक बार स्वयं उलट पलट कर देखने लगा। अचानक उसने देखा कि सरयू का सात आठ सौ रुपये का हार उस बक्स में रक्खा हुआ है। इन्द्र चौंक उठा—बोला, "यह क्या! यह हार यहां कहां से आया! तुमने भूल कर शायद इसे यहां रख दिया है! लो, इसे ले जाओ!!"

सरयू लज्जा-रक्त मुंह लेकर खड़ी रही, कुछ बोली नहीं, हार को भी न लिया।

बक्स को और हिलाने से इन्द्र को उसके अंदर एक टुकड़ा कागज भी मिला। वह उसको लेकर पढ़ने लगा है—यह देखते ही सरयू दोनों हाथों से मुंह ढाप कर दौड़ती हुई रसोई-घर में एक दम अपनी सास के पास भाग गई।

इन्द्रनाथ ने पढ़ा, कागज़ में सरजू ने लिखा था—

"मनोरमा के स्वामी की चिकित्सा के लिये यदि आवश्यक हो तो तुम मेरे हार को बेच डालो। मुझे यह हार पसंद भी नहीं है। इसके सिवाय मेरे पास बहुत से गहने और भी हैं।

तुम्हारी—सरयू।"

चिट्ठी को पढ़ते पढ़ते इन्द्रनाथ की दोनों आंखों से आनन्दाश्रु बहने लगा। उसकी सरयू का हृदय कैसा सुन्दर, कैसा मधुर, कैसा प्रेममय है। घर में द्वार के पास कहार की लड़की बेंगी खड़ी हुई थी, इन्द्रनाथ ने उसे सरयू को बुलाने के लिये कहा।

उस लड़की को कुछ भी बुद्धि न थी। वह सीधी सास के सामने जाकर सरयू से बोली—"इन्द्र भैया बुला रहे हैं!" लज्जा से लाल मुंह छिपा कर सरजू एकाग्र मन से तरकारी काटने लगी। उसकी सास ने कहा, "जावो, जल्दी जावो, उसे शायद किसी चीज़ की ज़रूरत हुई होगी!" सरयू का मुंह और भी लाल हो गया। वह वहां से उठी मगर अपने कमरे के पास पहुंच कर वह आगे बढ़ न सकी। उसने जो किया था वह उसके लिये बहुत साहस का काम हुआ था, स्वामी इसके लिये उसे डांट सकते हैं। या, उसे इसी का अधिक भय है, कि सबको वह बात कह भी दे सकते हैं। इसी लिये अपने स्वामी के सम्मुख जाते उसे बड़ी लज्जा हुई, बहुत भय भी हुआ।

परंतु इन्द्रनाथ ने उसे देखते ही उसको एक दम अपने वक्ष में खींच लिया और आवेग से चुम्बन कर डाला। भाग्य-वश वहां कोई देखने वाला न था, नहीं तो सरयू की क्या दशा होती नहीं कहा जा सकता है।

इन्द्र ने आदर से, प्रशंसा से, सरयू को पूर्ण कर दिया परन्तु वह हार लेना किसी प्रकार स्वीकार न किया। वह बोला, "मैं तुम्हारा अलंकार किस तरह ले सकता हूं ! इसके अलावा, मुझे आवश्यकता भी नहीं है। पिताजी के दिये तीन सौ रुपयों से यदि काम न बन सका तो मैं ऋण कर लूंगा और पीछे उपार्जन कर ऋणशोध कर दूंगा। कहने ही से अमल के पास से रुपया मिल सकता है।"—आदि आदि।

परन्तु उसकी बातें सुन सरयू के हृदय में दुःख ही हुआ। उसने कहा, "तब मैं क्या अमल से भी गई गुज़री ठहरी ! वह दे सकता है, मैं नहीं दे सकती ?"

इन्द्र हंस कर बोला, "पगली, यह बात नहीं है। मैं अमल से केवल ऋण ही न लूंगा। ऋण का शोध हो सकता है, परन्तु अलंकार एक बार चले जाने पर फिर नहीं मिल सकेगा।"

परन्तु सब कुछ कह सुन कर भी इन्द्र सरयू को समझा नहीं सका। स्वयं भी वह समझा न था कि अमल के पास से यदि वह ऋण ले सकता है तो स्त्री के पास से लेने में ही क्या हानि है ? परन्तु उसका समस्त हृदय सरयू के इस

नि:स्वार्थ दान से गद्गद हो उठा। अन्त में वह बोला, "अगर सचमुच आवश्यक हो तो तुम्हारे सेविंगस् बैंक में जो पांच सौ रुपये जमा हैं उन्हें दे देना। अभी अपना हार रक्खो।"

इसके बाद पढ़ने लिखने के सम्बन्ध में यथा रीति उपदेश देकर, प्रत्यह पत्र लिखने के लिये बार बार सौगन्ध देकर, आदर कर, सुहाग कर, इन्द्र सरयू से बिदा हुआ। मनोरमा के ससुराल पहुंच उसने उसके स्वामी को अपने साथ लिया और तब कलकत्ता चला।

इन्द्रनाथ आई० ए० की परीक्षा में बहुत सफलता के साथ उत्तीर्ण हुआ था। उसे जो भिन्न भिन्न स्कालरशिप मिले थे उन्हें जोड़कर महीने में प्रायः चालीस रुपये हो जाते थे। कम से कम ये चालीस रुपये वह अपने बहनोई की चिकित्सा के लिये खर्च कर सकेगा—यह सोच उसे कुछ संतोष ही हुआ था।

परन्तु कलकत्ता पहुंच जब उसने चिकित्सकों की बातें सुनीं तो उसका मुंह सूख गया। भिन्न भिन्न चिकित्सकों को दिखला कर यही ठीक हुआ कि रोगी को यक्ष्मा हो गया है। चिकित्सा की जो व्यवस्था हुई उससे औषध पथ्य इत्यादि का मूल्य और डाक्टरों की फीस आदि में जो रुपये खर्च होंगे वे कहां से आयेंगे यह सोच वह बहुत विचलित हो गया। रोगी को शीघ्र ही किसी पहाड़ पर भेजने की व्यवस्था करनी होगी, पर ये रुपये भी कहां से आयेंगे?

मनोरमा ने अपना सारा अलङ्कार अपने भाई को दे दिया था। परंतु इन्द्र को उनको बेचने का साहस न हुआ। रुपया कर्ज लेने का उसका एकमात्र स्थान था अमल। वह भी उसके कलकत्ता पहुँचने के दो ही दिन बाद विलायत चला गया है। उसके पिता माता बहन इत्यादि सभी कोई उसके साथ गये हैं।

उसके पिता उसके और अनीता के वहीं रह कर शिक्षा ग्रहण करने का सारा प्रबन्ध करके लौट आयेंगे। अतः उधर से भी अब कोई आशा नहीं रह गई थी।

बहुत सोच समझ और बहुत चेष्टा कर वह एक साहब को संस्कृत पढ़ाने के लिये पचास रुपये महीने में नौकर हुआ। इसके लिये उसको बहुत परिश्रम करना पड़ता था, परन्तु सो जो कुछ भी हो, इससे उपस्थित अर्थ-चिन्ता से उसे कुछ मुक्ति अवश्य मिली।

कई दिनों के बाद एक दिन अचानक एक हजार रुपये का एक इन्श्योरेंस आ पहुँचा। प्रेषक उसका बड़ा साला था। भीतर दो पत्र थे, एक सरयू का, और एक उसके साले का।

सरयू बड़े घर की लड़की थी। उसके पिता का देहान्त हो गया था परन्तु वह अपने भाई के बड़े आदर की बहन थी। उसने लिखा था—"पित्रालय आकर मैंने अपने भाई द्वारा उस हार को बेचने की चेष्टा की थी। परंतु भाई ने कहा कि हार नहीं बेचना होगा, मैं जितना रुपया कहो कर्ज

दे दूं। उसीने मुझको बिना सूद के एक हजार रुपये कर्ज दिये हैं। उसी रुपये को मैं तुम्हारे पास भेज रही हूँ।"

बड़े साले हेमेन्द्र ने लिखा है, "मैं तुम्हारी बहन को ऋण के तौर पर ये रुपये दे रहा हूँ। आशा करता हूं, तुम भी इसी नीति का अनुसरण कर, यह रुपया अपनी बहन को कर्ज के तौर पर दे दोगे। इस कर्ज के बारे में मेरी केवल एक ही शर्त है। तुम्हें जब तक अपने बहनोई से यह रुपया वापस न मिले, तब तक मैं तुमसे इस रुपये की एक कौड़ी भी न लूंगा।"

अश्रुपूर्ण नेत्रों से इन्द्र ने उत्तर लिखा—"क्या कह कर मैं आपको धन्यवाद दूं नहीं जानता! मेरा बहनोई यदि बच गया तो वह आपही की दया से बचेगा! परन्तु मेरी एक प्रार्थना है। आपने मुझे सचमुच ही इतना रुपया कर्ज दिया है ऐसा मान लेंगे। मैं अपने को या आपकी बहन को कोई कष्ट दिये बिना ही एक दिन आपका यह ऋण शोध कर सकूंगा, ऐसी ही मुझे आशा है। मेरी इस आकांक्षा से आप मुझे वञ्चित न कीजियेगा।"

हेमेन्द्र ने इस पत्र का कोई उत्तर न दिया। केवल सरयू ने उत्तर में लिखा—"उन्होंने मुझसे हार लेकर कहा है कि यह मेरे पास बंधक रहा।" इन्द्र ने इससे यही मतलब निकाला कि शायद उसे न जना कर सरयू फिर इसे बेचने की चेष्टा करे, इसी लिये उसके भाई ने हार अपने पास रख लिया है।

सातवाँ परिच्छेद

परन्तु इन्द्रनाथ के परिश्रम का कोई फल न निकला और मनोरमा विधवा हो ही गई।

इन्द्रनाथ ने उसके स्वामी के लिये जो कुछ भी बन सका किया था। तीन महीने तक उसे पहाड़ पर भी रक्खा था। परन्तु सब की आशा विफल कर, वह एक दिन अचानक चल बसा। मनोरमा एक महीने का लड़का गोद में लेकर अपने भाई के पैरों के पास मूर्छित होकर गिर पड़ी।

मनोरमा इन्द्र की बड़ी आदर की बहन थी। उसके जीवन की सब सुख-स्वच्छन्दता इस तरह अदृश्य होते हुए देख इन्द्र बहुत ही मर्म्माहत हुआ। स्वयं किसी प्रकार का सुख सम्भोग करने की अब उसे आकांक्षा नहीं होती थी। सरयू को गले लगाने के समय उसके मन में कुछ ऐसा भाव सा उत्पन्न होता था कि जिससे वह रोमांचित सा हो जाता था। दिनरात यही सोचता, "हाय! मनोरमा के भाग्य में कुछ भी

सुख न था ?" मनोरमा का सादा वस्त्र और शून्य हाथ देख उसकी आंखें सजल हो जाती थीं। घर में कभी हंसने का भी उसे साहस नहीं होता था, शायद हंसी के शब्द सुन मनोरमा के हृदय में आघात पहुँचे !

वह कलकत्ते लौट आया पर यहां आकर भी उसे शान्ति न मिली। रात दिन वह मनोरमा की अवस्था के ही बारे में सोचता रहता। किस प्रकार उस हतभागिनी के जीवन में कुछ सुख-स्वच्छन्दता मिल सकती है, सर्व्वदा वह यही सोचता रहता था। मनोरमा के लिये चुन चुन कर वह पुस्तकें भेजा करता। उसके लिये नाना प्रकार के सिलाई के पेटर्न भेजा करता। बड़े बड़े पत्र लिखकर उसे समझाया करता। मनोरमा को जीवन को यथा सम्भव सुखी बनाने के लिये ही उसने अपना जीवन लगा देने का निश्चय कर लिया था।

मनोरमा के भविष्यत के बारे में चिन्ता करते करते उसे एक बार यह भी खयाल हुआ कि क्या मनोरमा का फिर से विवाह हो सकता है ? विधवा-विवाह के बारे में उसने अनेक बार आलोचना की थी। वह विधवा विवाह का विरोधी था, परन्तु साधारण लोगों से कुछ स्वतन्त्र भाव से। पुरुष के पत्नी वियोग के बाद पुनर्विवाह करने का वह अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था, परन्तु विधवाओं के लिये भी वह उसी नीति का समर्थन करता था।

पुनर्विवाहित विधवा जो अपने नारीत्व के आदर्श से बहुत ही गिर जाती है ऐसा वह अपने अन्तर में अनुभव करता था। परन्तु अब मनोरमा की ओर देख उसके इस विचार में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया था।

मनोरमा बच्चे की मां हुई है यह सच है—पर उसकी अवस्था केवल पन्द्रह ही वर्ष की है। इतनी छोटी लड़की है और विधवा! इस अवस्था ही की अनीता जब नाचती कूदती फिरती है उस समय मनोरमा कठोर ब्रह्मचर्य पालन करेगी, और इन्द्रनाथ अपनी स्त्री को ले कर सम्भोग-सागर में गोता लगायगा, इस बात को सोच कर ही उसे बहुत दुःख हुआ करता था। अब उसे मालूम हुआ कि इन सब बाल-विधवाओं का विवाह होना ही चाहिये।

परन्तु मनोरमा को पुत्र जो हुआ है! यदि वह विवाह करे तो उसके उस पुत्र का क्या होगा? 'डेविड कापरफील्ड' की बात उसे याद आई। उसने फिर सोचा, अच्छा मैं स्वयं भी तो मनोरमा के पुत्र का भार ले सकता हूं। परन्तु बहुत सोच विचार के बाद उसे यह पसन्द नहीं हुआ। माता के गोद के बिना जो बच्चा पालित होता है, उसके जीवन के एक ओर प्रकाण्ड शून्य रह जाता है—इन्द्र को यही विश्वास था। शेष तक सोच समझ कर उसने यही ठीक किया कि जब पुत्र हुआ है तो अब मनोरमा के विवाह की कल्पना न करना ही ठीक है। अपने इस पुत्र के द्वारा ही मनोरमा

को अपना जीवन सार्थक करना होगा। उसे मालूम हुआ कि जीवन को सार्थक करने का और भी एक दो पथ निकल सकता है। ब्रह्मचारिणी बन कर भगवान की सेवा में अपने जीवन को नियुक्त कर सकने पर भी तो नारी जीवन सार्थक हो सकता है। इसके अलावे, ज्ञान विज्ञान के अनुशीलन के द्वारा भी तो मनोरमा के जीवन की गति लौटाई जा सकती है। इसमें जो एक कितनी बड़ी आनन्द की खान छिपी हुई है, इन्द्रनाथ को उसका सन्धान अच्छी तरह मिल गया था। इसी तरह के किसी उपाय द्वारा मनोरमा का जीवन सार्थक बनाने की चेष्टा करना होगा। यही विचार कर छुट्टी में वह अपने घर पहुँचा।

घर पहुँच उसने देखा कि सारे घर के ऊपर विषाद की एक गम्भीर छाया पड़ी हुई है। माताजी ने अपने हाथ की समस्त चूड़ियां खोल डाली हैं। यह देख सरयू ने भी वही किया है। वह किसी तरह भी कोई अलङ्कार पहनना नहीं चाहती है, कोई पहनने को कहता है तो वह रोती है। खाने पीने में, रहन सहन में, सभी में आनन्द अनुष्ठान सब अत्यन्त संक्षिप्त हो गया है।

जिस दिन इन्द्र घर लौटा, उस दिन एकादशी थी। इन्द्र ने आकर देखा, माताजी अब तक बिछौने पर पड़ी रो रही हैं। मलिन वस्त्र में सरयू उनके चरणों के निकट बैठी हुई है। इन्द्र आकर माता की गोद के पास बैठ कर बोला, "मां उठो!"

माताजी ने आंखें पोंछ कर कहा, "क्या उठें, यह इतनी नन्हीं सी बच्ची मेरी आंखों के सामने निर्जल उपवास करेगी, और मैं अभागी उठ कर भोजन करूंगी—किसके लिये ?"*

तब तक मनोरमा स्नान शिव पूजा आदि शेष कर वहीं आ पहुँची। उसके मुंह और आंखों से प्रगट होने वाली अनैसर्गिक शान्ति और दीप्ति को देख इन्द्र मुग्ध सा हो गया।

माताजी तब उठ कर बोलीं, "मनो, जाकर कुछ खा ले, तू बच्चे की मां है, तुझे क्या निर्जल उपवास करना ठीक है ?"

मनोरमा ने नीचा मुंह कर कुछ हंस के कहा, "माताजी, आप केवल बस यही कहा करती हैं! इतने बार जो मैंने निर्जल उपवास किया, उससे क्या किसी दिन भी कभी मुझे कोई कष्ट हुआ ?"

इन्द्र की आंखें सजल हो गईं। सरयू अपने आंचल से अपनी आंख पोंछने लगी। इन्द्र बोला, "मनो, तू क्या मां को भी मार डालेगी ? तेरे ऐसा करने से मां कब तक बची रहेंगी, कह तो ?"

मनोरमा बोली, "माताजी तो झूठ मूठ ही मेरे लिये दुःख करती हैं। मेरे जो भाग्य में बदा था सो हुआ। महीने में

---

* बंगाल में विधवाएं प्रत्येक एकादशी को निर्जला उपवास करती हैं।

केवल दो दिन उपवास—यह भी क्या कोई बड़ा कष्ट है? इतने के लिये लोग झूठ मूठ कह कह कर मुझे और दुःख न दें। तुम उठो और जाकर कुछ खाओ।"

इन्द्रनाथ एक गंभीर दीर्घ निःश्वास त्याग कर उठ के चला गया। घर की अवस्था देख कर उसका मन भीषण रूप से विचलित हो उठा था।

एक दिन मां के साथ बैठ कर मनोरमा के ही विषय में उसने कुछ परामर्श किया। उसकी बात सुन कर मां ने कहा, "देखो, कर सको तो करो। उसे यदि विवाह के लिये राजी कर सको तो करो।"

इन्द्र बोला—"मगर एक बात है मां। एक पुत्र को साथ में लेकर विवाह करने में सुख नहीं होगा। इसके सिवाय, वह यकायक विवाह करने में राज़ी हो जायगी, ऐसा भी मालूम नहीं होता है। पहिले उसको पढ़ना लिखना सिखाना आवश्यक है। इस समय कलकत्ते ले जाकर किसी अच्छे स्कूल में भर्ती करा देने से कुछ दिनों में जब कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेगी तब शायद वह......!"

माता पिता और इन्द्र ने मिल कर परामर्श किया। बहुत सोच विचार के बाद यही स्थिर हुआ कि इन्द्र मनो को कलकत्ते ले जाकर किसी लड़कियों के स्कूल में भर्ती करा देगा।

मनोरमा से यह प्रस्ताव किया गया। वह उत्साहित हो

उठी, पर कुछ देर के बाद ही बोली, "नहीं भैया, यह नहीं हो सकता है। मेरे साथ बहुत सी झंझटें भी तो हैं। बोर्डिंग में रहूँगी तो आचार नियम कुछ नहीं हो सकेगा। पूजा अर्चना नहीं हो सकेगी। इसके अलावे, बच्चा ?"

इन्द्र ने झट से कहा, "बच्चा ? वह माताजी के पास रहेगा। उसके लिये तुम्हें भला क्या चिन्ता है ?"

पर मनोरमा का मन इससे न टला।

अन्त में बहुत बातचीत के बाद स्थिर हुआ कि इन्द्र के माता-पिता इत्यादि सब के सभी कलकत्ते जाकर एक मकान लेकर उसमें कुछ दिन तक रहेंगे। यदि चल सका तो यही बन्दोबस्त चिरस्थायी हो जायगा। इन्द्र ने पत्र लिख कर हाटखोला की ओर गङ्गा के किनारे एक घर किराये पर ठीक किया। छुट्टी के बाद वह सबको लेकर कलकत्ते में आ पहुँचा। मनोरमा स्कूल में भर्ती करा दी गई।

सरयू को भी मनोरमा के साथ स्कूल में भेजने की उसकी बड़ी इच्छा हुई—परन्तु सरयू ने इन्द्र को किसी तरह भी यह बात माताजी के पास उठाने न दिया। तब इन्द्र ने अपने पिता से वह बात कही, पर वृद्ध पिता अपनी युवती पुत्र-वधु को स्कूल में भेजने के लिये किसी प्रकार भी सम्मत न हुए। विधवा बालिका को मानो स्कूल के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं था, पर इस लिये उनकी बहू भी जो स्कूल जायगी इतना सहन करने की शिक्षा उन्हें नहीं मिली थी।

आठवां परिछेद

धीरे धीरे कर के चार वर्ष बीत गये। इन्द्रनाथ ने बी० ए० और एम० ए० की परीक्षायें प्रथम होकर पास किया। विलायत जाने के लिये उसे स्टेट स्कालरशिप देने का प्रस्ताव हुआ था, पर इसमें उसके पिता ने घोर आपत्ति की। सरयू का मुंह भी इस बात को सुन कर म्लान हो गया और उसने अपनी छोटी लड़की को अपनी गोद में इस प्रकार दाब कर पकड़ा कि इन्द्र को इस सम्बन्ध में फिर कुछ कहने का साहस न हुआ।

अब इन्द्रनाथ प्रेसिडेंसी कालेज का एक प्रोफेसर है। अढ़ाई सौ रुपया महीना तलब मिलता है। उसके माता पिता देश में लौट गये हैं। मनोरमा इस बार मैट्रिकुलेशन की परीक्षा देगी। उसने स्वयं ही अपने पुत्र को पढ़ाकर दूसरे दर्जे का पाठ समाप्त करा डाला है। सरयू की दोनों लड़कियों का अधिकतर वही लालन पालन करती है।

वे लोग एक छोटा घर किराये पर लिये हैं, परन्तु घर

बहुत साफ सुथरा है। ऊपर दो कमरे हैं, एक मनोरमा का है, दूसरा सरयू का। मनोरमा के कमरे में एक तख्तपोश, एक टेबुल, और एक चेयर है, और उसके बगल में एक छोटी चौकी पर उसके पति का फोटोग्राफ है। उसके नीचे उसकी पूजा की सामग्री सज्जित है। घर उज्ज्वल, निर्म्मल है। बिछौने का चादर सर्व्वदा सफेद रहता है। सरयू के घर में सजावट का अन्त नहीं है। आलमारी शृंगारदान बकस शीशे लंप सभी कुछ है, पर मनो के लडके और सरयू की बड़ी लड़की के उत्पात से घर में अधिक परिच्छन्नता बनाए रखना सम्भव नहीं है। फिर भी सरयू और मनारमा दोनों सर्व्वदा घर की झाड़ पोंछ मे लगी हो रहती हैं। पीछे एक छोटी छत है, उसी के एक कोने में मनोरमा के लिये एक छोटा चूल्हा है। मनोरमा अपने सिवाय दूसरे के हाथ का बनाया जल्दी नही खाती।

इन्द्रनाथ ने अपने जीवन के सम्बन्ध में जितने आदर्शों का निर्म्माण किया था, अब निर्व्विवाद वह उनको कार्य्य में परिणत करने लगा है। एक दाई उसका खाना बनाती है, टेबुल पर बैठ कर स्त्री के साथ ही उसे खाता है, और खाने के बर-तन बासन इत्यादि जिसमें खूब परिष्कार परिच्छन्न रहें, इस विषय में वह खूब सावधान रहता है। चाकरानी को भी परि-ष्कार परिच्छन्न होकर रहना पड़ता था। अन्य बातों में भी जहां तक सम्भव हो साहेबी क़ायदा क़ानून से ही सब कार्य्य होते थे।

परन्तु एक विषय में वह कुछ भी कर न सका। वह सरयू को लिखना पढ़ना नहीं ही सिखला सका। उसकी और मनोरमा की सम्मिलित चेष्टा से भी जब कुछ न हुआ तब उसने एक मास्टर रखने की चेष्टा की, पर सरयू इस प्रस्ताव पर किसी तरह भी सम्मत न हुई। इसके बाद कुछ दिनों तक बहुत चेष्टा कर उसने कुछ पढ़ा, परन्तु फिर घर के कार्य्य कर्म्म में बझे रहने और तीन तीन बच्चों के लालन पालन की झंझट होने से पढ़ना लिखना बहुत दूर तक अग्रसर न हो सका।

अमल केम्ब्रिज में खूब प्रशंसा के साथ उत्तीर्ण होकर बैरिस्टर होकर लौटा है। उसके माता पिता दोनों ही का देहान्त हो गया है। कलकत्ते के प्रकाण्ड भवन में अब केवल वह और अनीता रहते हैं। अनीता भी दो वर्ष तक केमब्रिज में पढ़ और सङ्गीत में उच्च श्रेणी की परीक्षा पास होकर आई है। उसने नर्सिंग विद्या में भी विशेष शिक्षा लाभ करी है।

इन्द्रनाथ को पहले अमल के साथ भेंट करने का साहस नहीं हुआ। परन्तु अमल ने ही उसे खोज कर निकाला और उसके साथ भेंट न करने के कारण उस पर क्रोधित भी हुआ। इसके बाद उन दोनों की पुरातन मित्रता फिर वैसेही चलने लगी थी।

दोनों परिवारों में भी विशेष घनिष्ठता होगई थी। अनीता और मनोरमा में बन्धुत्व हो गया था। परंतु न मालूम क्यों, सरयू को अनीता से कुछ अधिक प्रेम न हुआ था। उसकी

समझ में अनीता मानो बहुत चञ्चल है, लड़कों और पुरुषों के पास जाते उसे लज्जा-शर्म्म कुछ नहीं आती, और इसके सिवा, उसका चाल वर्ताव बातें कैसा बुरे तरह का है, इत्यादि बातें सरयू अनुभव करती थी। पर उसे यह सब बातें किसी से कहने का उपाय न था। मनोरमा और उसका भाई दोनों ही अनीता का नाम सुन के ही गद्‌गद् हो जाते थे। पर इसके सिवाय भी उसकी अरुचि का और एक कारण था। अनीता ने जबरदस्ती सरयू की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया था। वह सरयू को गाना बजाना और सिलाई सिखाने की चेष्टा किया करती थी। लिखना पढ़ना भी सिखाने की इच्छा थी, पर इसमें वह सरयू को किसी तरह भी सम्मत न कर सकी थी। क्योंकि सरयू अपनी गभीर अज्ञता को लेकर इस महापण्डित समवयसी बालिका के सामने जाना नहीं चाहती थी। वह उससे कुछ सिलाई सीखती थी, कुछ कुछ गाना भी सीख लेती थी, परन्तु इन दोनों विषयों में अनीता की अगाढ़ अभिज्ञता के सामने वह अपने को बहुत ही हीन मालूम करती थी और इसलिये उसे क्रोध होता था। अनीता जो उसे जबरदस्ती सिखलाने आई है, इसमें वह एक अहङ्कार भाव का भी परिचय पाती थी।

पर क्यों ऐसा होता था, सो कहना कठिन है। किसी किसी मनुष्य को देखने ही से हम लोगों में उसपर शुरू ही से एक अकारण क्रोध का भाव उत्पन्न हो जाता है। अनीता के प्रति

सरयू का विद्वेष कुछ कुछ उसी प्रकार का था। इसके सिवाय केवल उसके स्वामी और ननद ही नहीं बल्कि तीनों बच्चे भी अनीता को लेकर जितना कौतुक करते थे, उतना ही उसका विद्वेष बढ़ता जाता था। परन्तु एक बात थी, सरयू ने बात से या काम से, कभी भी अपने इस विद्वेष को किसी पर भी प्रकाश नहीं किया।

उधर मनोरमा तो अनीता को पाकर एक दम धन्य ही हो गई थी। वह शिष्यारूप में और सखी रूप में उसकी एकान्त अनुगत हो गई थी। अनीता भी मनोरमा को अपनी समस्त विद्या सिखलाने के लिये लग पड़ी थी। वह स्कूल में गाना बजाना सीख रही थी, अनीता ने उसकी वह शिक्षा बहुत शीघ्रता के साथ पूर्ण कर दी। सिलाई, नर्सिंग, प्राथमिक शुश्रूषा आदि नारियों के अवश्य ज्ञातव्य विषयों में मनोरमा अपनी मैट्रिकुलेशन परीक्षा के पहिले ही इतना सीख गई कि अनीता उसे देख स्वयं अवाक् होने लगी।

नवाँ परिच्छेद

इन्द्र को जभी फ़ुरसत मिलती वह अमल के घर जाता और जब तक वह वहाँ रहता था उसे एक अपूर्व शान्त आनन्द

मिलता था। अमल का घर इतना शान्त, इतना स्निग्ध था, उसकी प्रत्येक वस्तु ऐसी नयनाभिराम थी, कि जिस तरफ देखता उसी तरफ उसका मन फँस जाता था। पर फिर साथ ही साथ एक तरह की विरक्ति भी बोध होती थी कि उसका अपना घर ऐसा शान्त, ऐसा मनोहर नहीं है। अवश्य ही अमल के पास नौकर-चाकर, रुपये पैसे, सभी की बहुलता थी, परन्तु रुपये पैसे के अतिरिक्त भी और एक वस्तु वहां थी, जो उसके अपने घर में नहीं थी। वे लोग स्वभावतः ही ऐसे साफ सुथरे, परिष्कार परिच्छन्न, फिटफाट थे कि इन्द्र को यही समझ में आता था कि दीनतम कुटीर में आकर भी वे इसी तरह के एक शान्तिमय गृह की सृष्टि कर सकते हैं।

इस घर के सब असबाबों में, उद्यान में, चित्रों में, सभी वस्तुओं में—दो चीजें सब से श्रेष्ठ थीं—अमल और अनीता। उनको देखकर देखने वाले की आंखें सफल हो जाती हैं। वे मानो किसी निपुण भास्कर की बनाई हुई अपूर्व्व मूर्तियां हैं, या किसी निपुण शिल्पी के अङ्कित चित्र हैं। इन्द्रनाथ जब कभी उन लोगों को देखता था, तभी वे लोग किसी सुन्दर देव या देवी मूर्ति के समान उसके सामने दीख पड़ते थे। उनकी बातों से मधु टपकता था, उनकी सहृदयता से प्राण एक अद्भुत आनन्द-रस से प्लावित हो जाता था।

उनके यहां से अपने घर लौटने पर इन्द्र को ऐसा मालूम होता था मानो वह अबूहुसैन के समान बादशाही खोकर पुनः

अपनी जीर्ण कुटीर में लौट आया है। अपने घर में आकर वह जो तुलना, जो समालोचना, करता था, उससे उसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। बहुत पैसे खर्च कर उसने तरह तरह का सुन्दर असबाब खरीद कर अपने घर को सजाया था, पर वह सब सामान उसकी दृष्टि में तुच्छ बल्कि कुत्सित ही मालूम होता था। वह अपना घर-द्वार साफ रखने के लिये बहुत प्रयत्न करता था, परन्तु सारा घर उसे मैला कुचैला और गन्दा ही मालूम होता था।

केवल इतना ही नहीं, अनीता के उज्वल मुंह के सामने अब उसे अपनी सरयू का मुंह भी अत्यन्त साधारण ही सा मालूम होने लगा था। किसी समय जिस विकारहीन सौंदर्य्य को देख वह पागल हो गया था, आज उसकी दृष्टि में वही सौन्दर्य किसी अनभिज्ञ निर्माता के अङ्कित चित्र के समान मालूम होता था। घर में उसके लिये एक मात्र स्नेह की पात्री रह गई थी केवल मनोरमा। वह मानो अनीता की उज्वल प्रतिमूर्त्ति हो उठी थी। अनीता के हाथों वह अनीता ही के समान संवारी जा रही है यह देख इन्द्रनाथ को बहुत ही आनन्द प्राप्त होता था।

अनीता के साथ तुलना करने से जो सरयू बेचारी को हारना पड़ेगा इसमें विचित्रता ही क्या थी? वह लिखना पढ़ना नहीं जानती है, गाना भी थोड़ा ही बहुत सीखा है, अनीता के ऐसा बातचीत भी कैसे कर सकती है। पहले पहल

जब इन्द्रनाथ ने अनीता को देखा था, उस समय भी उसने ऐसी ही एक समालोचना सी की थी, परन्तु उस समय सरयू इतना तुच्छ नहीं मालूम हुई थी जितना अब मालूम होने लगी थी।

चाहे कर्त्तव्य ज्ञान से वह अपने मन को कितना ही दूसरी ओर रक्खे, पर प्रायः अनवधानता के अवसर में उसका मन मुक्ति लाभ कर न मालूम कितनी ही असम्भव कल्पनाएं करने लगता था। उस समय वह सोचता कि यदि उसका बाल्य-विवाह न हुआ होता तो आज वह अनीता के समान—या अनीता को ही—सहधर्मिणी रूप में पा सकता था। ऐसा होने से उसका जीवन कितने भिन्न प्रकार का, कितना मनोरम, कैसा सुखी, हो सकता था। अमल के परिवार के जिस सौम्य शान्त सौष्ठव को देख कर वह आज इतना मुग्ध हो रहा था, उस समय उसका भी घर उसी सुख सौभाग्य का केन्द्र बन जाता। अनीता को अपनी पत्नी रूप में कल्पना कर जो वह किस प्रकार के आकाश-कुसुम की रचना करता था, सो कहा नहीं जा सकता।

ऐसा करते करते क्रमशः उसके कर्त्तव्य-बुद्धि का उत्पीड़न कम होने लगा। ऐसी कल्पनाएं करने में जो विशेष कोई दोष है इसका ज्ञान कम होने लगा। "वह यदि दूर ही से अपने मन में अनीता की पूजा करे तो इससे किसी की क्या हानि हो सकती है ?" ऐसा उसे ख्याल होने लगा। एक सुन्दर फूल को

देखकर लोग बार बार उसे देखने के लिये प्रलुब्ध हो जाते हैं। इसमें यदि दोष नहीं है, तो एक सुन्दरी नारी को देखकर यदि उसकी मन ही मन प्रशंसा अथवा पूजा की जाय तो इसमें ही क्या हानि है? इसमें ही दोष क्या है। इसीतरह की बातें सोचते सोचते अन्त में इन्द्रनाथ ने अपने मन को अनीता पर एक बारगी ही उत्सर्ग कर दिया।

अवश्य ही यह बात उसे मालूम थी कि इसमें दोष हो सकता है, पर तभी जब यदि वह कार्य्य से या वाक्य से अपने मन की बात को प्रकाश कर डाले। यदि सरयू के प्रति वह बिन्दुमात्र भी कर्तव्यहीनता का व्यवहार करे, यदि वह सरयू से कम प्रेम करे या कम यत्न करे, तभी वह सचमुच ही अपने धर्म से पतित हो जायगा। यदि वह किसी तरह अनीता के पास अपने मन की बात को प्रकाश कर डाले, तो अमल के बन्धुत्व और आतिथ्य का अपमान करना होगा। परन्तु उसने सोचकर देखा कि इस विषय में वह यदि खूब मनोयोग दे तो इन दोनों ही विपत्तियों से बचा रह सकता है। यह सोचने के साथ ही सरयू के प्रति उसने अपना आदर प्रेम बढ़ा दिया और अनीता के प्रति इतना सम्मान प्रकाश करना शुरू किया कि एक दिन अनीता को हंसकर कहना पड़ा, "इन्द्र बाबू, आपने तो सचमुच ही मुझे एक 'एलिजाबेथेन लेडी' बना डाला है! आप शायद भूल गये हैं कि मैं आपलोगों की वही छोटी अनीता हूं!!"

इन्द्र ने लज्जित होकर कहा, "तुम अब इतनी बड़ी हो गई हो—अब भी क्या तुम्हें वही छोटी अनीता समझने का कोई उपाय है ?"

न जाने क्यों यह बात सुन अनीता के मुंह पर एक मुहूर्त्त के लिये अन्धकार छा गया, परन्तु दूसरे ही क्षण उसका शान्त स्निग्ध भाव पुनः लौट आया। उसने हंस कर कहा, "और आप शायद बड़े नहीं हुए हैं ?"

"आयु में बड़ा हुआ हूं अवश्य, परन्तु जगत में छोटे बड़े का जो असल मापदण्ड है उसके अनुसार तुम बढ़ रही हो 'ज्योमेट्रिकल प्रोग्रेशन' में और मैं धीरे धीरे 'एरिथमैटिकल प्रोग्रेशन' में बढ़ रहा हूं।"

अनीता ने हंस कर कहा, "शायद आपने अपने नापने के असली मापदण्ड को अभी नहीं देखा है। ठीक ही है—बड़े लोगों का स्वभाव ही होता है कि अपने मूल्य को वे अच्छी तरह समझ नहीं पाते हैं।"

दसवां परिच्छेद

मनोरमा भी अब वही पहले की मनोरमा नहीं रह गई है यह कह देना भी ठीक ही है। उसका स्वयं-पाकी होना

अब नहीं रह गया है। सरयू के उत्पात से वह लाचार हो गई है। सरयू अपने हाथों से बनाकर उसे नाना प्रकार का अच्छे से अच्छा खाद्य खिलाती है, गङ्गामाई की सौगन्द देकर उससे कभी कभी और भी दो चार नियम भङ्ग करा डालती है। यद्यपि अभी भी वह ठीक पहले के समान ही सादा कपड़ा पहनती है, परन्तु अब ब्लाउस और पेटीकोट उसे पहनना पड़ता है, और वस्त्र-परिच्छद आदि में खूब साफ सुथरा भी रहना पड़ता है। स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद, अब पहले के समान मन लगा कर पूजा करने का समय उसे नहीं मिलता है, परन्तु शनिवार और रविवार को वह अपने मन की इच्छा पूर्ण कर अवश्य ही पूजा करती है। अपने स्वामी के फोटोग्राफ की वह नित्य ही पूजा करती है, इसमें उससे किसी दिन भी त्रुटि नहीं होती।

परन्तु अब इतना पढ़कर और ब्राह्मण और ईसाई बालिकाओं के साथ बातचीत मेलजोल बढ़ा कर, स्त्रियों के कर्त्तव्य अधिकार प्रभृति विषयों में बहुत से आधुनिक संस्कारों ने उसके मन में जड़ जमा लिया है। अनीता ने उसके इन सब मतामतों पर और भी पुट चढ़ा डाला है। इसके अतिरिक्त जाति भेद जो एक विधि-निर्दिष्ट व्यवस्था है, मनुष्य को स्पर्श करने से अपवित्र होना होता है, इत्यादि बातों को अब वह नहीं मानती।

इसीलिये अब जब कभी वह अनीता को अपने घर में ले

आकर बिठाती थी तो सरयू को यह ठीक नहीं मालूम होता था। उसने एक दिन मनोरमा से कहा भी था, "वहन, तुम अनीता को अपने घर में क्यों बिठाती हो? उस घर में तुम्हारी पूजा का सामान रहता है, तुम्हारे देवता रहते हैं। अनीता विलायत से लौटी अर्धम्लेच्छ महिला है।"

मनोरमा हंसकर वोली, "उससे क्या होता है? भगवान को भी क्या जाति-विचार है?"

सरयू कुछ रुष्ट होकर वोली, "तव फिर भया! डोम मेहतर कहार चमार सभी तो फिर पूजा के घर में जा सकते हैं!!"

मनोरमा०। मैं तो इसमें कोई वाधा नहीं देखती। देवता क्या हम ही लोगों के घर में रह सकते हैं उनके घर में नहीं?

यमुना०। वहन, तुम यह क्या सव वक रही हो? यदि यही होता तो ऋषि मुनि गण इस तरह की व्यवस्था क्यों कर जाते?

मनोरमा०। उन्होंने ऐसी व्यवस्था क्यों की सो तो वेही जानें पर मैं समझती हूं कि एक ही भगवान ने सभी मनुष्यों को जन्म दिया है, और वह सभी की पुकारों को सुनते हैं। जानती हो, स्कूल में पढ़ने के पहले हमलोग उपासना किया करती थीं—कालेज में अव ऐसा नहीं होता। हां कभी कभी आचार्य सुकुमार वावू आकर हम लोगों को उपदेश देते हैं। उनके उपदेश सुन मुझे सचमुच ही ऐसा मालूम होता है मानो भगवान हम लोगों के आसपास कहीं आ गये हैं, हम लोगों के मन के भीतर आकर विराज गये हैं। सुकुमार वावू की

उपासना में एक ऐसी व्यग्रता रहती है कि भगवान उनकी पुकार को न सुन कर रह नहीं सकते। वास्तव में आज आठ नौ वर्ष से मैं शिव-पूजा कर रही हूं, पर शायद एक आध दिन के सिवाय कभी भी मैंने भगवान् को इतना निकट नहीं पाया जितना सुकुमार बाबू की प्रार्थना के समय पाती हूं।

यमुना०। क्या मालूम बहन, अपने सुकुमार बाबू की बातें तो तुम्हीं जानो, पर यदि ऐसा ही है तो फिर पत्थर के शिव को लेकर रोज पूजा अर्च्चना करने की ही क्या आवश्यकता है?

मनोरमा को अभी तक किसी दिन भी यह बात ध्यान में न आई थी। सुकुमार बाबू ब्रह्मसमाज के कलकत्ता प्रसिद्ध उपदेशक थे। बात ही बात में उनका जिक्र मनोरमा के मुंह से निकल गया था। पर इस समय सरयू की बात सुन एक प्रचण्ड धक्का लग कर उसके मन में भी भयानक गोलमाल होने लगा। मनोरमा चिन्ता में पड़ गई।

उसे मालूम हुआ कि उसका सारा जीवन एक प्रचण्ड मिथ्या से पूर्ण हो उठा है। वह जिस शोक का परिच्छद सर्वदा धारण करे रहती है, क्या वह उस शोक की छाया को भी अपने मन में अब कभी देख सकती है? उसके वर्त्तमान जीवन के आनन्द के बीच उस अतीत वैधव्य-शोक की मानों समाधि हो गई है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि वह अपने स्वर्ग-गत स्वामी को एक वार भी स्मरण नहीं करती हो, किन्तु फिर भी उस स्मृति में जैसा भावोच्छ्वास होना चाहिये, वैसा तो नहीं होता।

फिर उसके स्वामी की चित्र-पूजा भी तो प्रायः उसकी शिव-पूजा के समान ही निरर्थक आडम्बर मात्र रह गई है, इस बात का ख्याल यकायक मनोरमा के मन में उठा और यह सोच कर उसे और भी दुःख ही हुआ।

सोचते सोचते उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानों प्रकृत पातिव्रतधर्म्म से वह गिर पड़ी हो। शमी, श्यामी, इत्यादि पड़ोसी विधवाओं के समान वह भी केवल विधवा के आवरण को ही ठीक रख सकी है—वास्तव में सच्ची विधवा नहीं है। यदि वह अपने स्वामी को खोकर सचमुच ही अपना सर्व्वस्व खो बैठती, राजरानी से अचानक भिखारिन बन जाती, तब अपने नित्य दुःख की आहुति से अपने पातिव्रत्य की वह्नि को सर्वदा जागृत रख सकती। परन्तु अपने स्वामी को खोकर केवल स्वामी के प्रेम के सिवाय उसने वास्तव में कुछ भी नहीं खोया है। उसके भाई ने अपने अपरिसीम स्नेह से उसके सभी अभाव, सभी शून्यता, को पूर्ण कर दिया है। सांसारिक होने के हिसाब से उसे पतिगृह में भी किसी दिन इतनी स्वतन्त्रता न मिलती, मिल न सकती, जितनी आज कल उसे मिली हुई है। स्कूल कालेज और कालेज के बाहर वह एक ऐसे विचित्र मनोहर जगत् के भीतर आ पहुँची है जिसके आनन्द की धारा में वह कर अपना दुःख वह प्रायः भूल बैठी है।

आज उसे मालूम हुआ कि, ऐसा करना अन्याय हुआ है। उसे उचित था कि स्वामी की मृत्यु के बाद वह संसार की

सभी सुख-स्वच्छन्दता को दूर हटा कर दारिद्रय दुःख और कठिनता को वरण कर, स्वामी के अभाव को निरन्तर मन में, हृदय में, अनुभव करती-पर सोच न कर स्वामी को खो कर वह अभागी एक ऐसे सुख के भवन में वास कर रही है जहां बन्धु बान्धवों के साहचर्य्य से अपरिसीम आनन्द बह रहा है।

मनोरमा ने अपने को बहुत धिक्कार देकर यह स्थिर किया कि उसे इस कृत्रिमता को छोड़ना ही होगा। वह सर्व्वस्व त्याग कर कठोर ब्रह्मचर्य के साथ, अपनी पूर्व्व निष्ठा के साथ व्रती होकर, अपने जीवन को आदि से अन्त तक सुधार डालेगी।

अभीतक उसने सरयू की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया था। सरयू समझ रही थी कि उसकी बातों का सचमुच कोई जवाब हुई नहीं है। इसी लिये बहुत देर तक राह देखने पर भी उसे चुप देख उसने विजय गर्व से कहा—"याद है बहन, तुमने एक दिन अपने भैया से कहा था कि मुझे मेमसाहब बना डालो! अब देखती हूं तुम ही मेमसाहब बन बैठी हो और मैं जो सरयू थी वही रह गई हूं।"

सरयू की यह बात मनोरमा के वक्ष में और भी वेग से, तीर के समान, चुभ गई। इस बात ने उसे और भी याद करा दिया कि वह कहां से कहां गिर पड़ी है।

सारे दिन वह गम्भीर होकर सोचती रही और रात को अपने बच्चे को तख्तपोश पर सुला स्वयं स्वामी के फोटोग्राफ के नीचे भूमि पर गिर हो फूट फूट कर रोने लगी। आखिर

सोच विचार दूसरे दिन उसने अपने गुरुदेव को पत्र लिखा कि यदि एक बार वे उससे साथ भेंट कर उसे उपदेश दें तो उनकी बड़ी कृपा हो।

सरयू को यह बात मालूम न हुई परन्तु उसने देखा कि उसके बाद से मनोरमा बहुत उदास सी रहने लगी है। उसने अपने वैधव्य की कठोरता को यकायक बहुत बढ़ा डाला है।

ग्यारहवां परिच्छेद

इसके बाद जिस दिन अमल और अनीता आए मनोरमा अनीता को लेकर झट अपने कमरे में नहीं चली गई। इन्द्रनाथ ने नीचे के जिस घर को ड्राइंग रूम के ऐसा सजा कर रक्खा था, वह वहीं शान्तभाव से सब के साथ बैठ गई।

बहुत प्रयत्न कर भी इन्द्रनाथ सरयू की लज्जा को पूर्ण-रूप से तोड़ नहीं सका था। बहुत कष्ट से उसने उसे अमल के सामने निकाला था, परन्तु वह जबतक उसके सम्मुख रहती थी तबतक अशान्ति ही बोध करती थी। अमल उसके साथ बहुत कुछ हंसी-दिल्लगी किया करता था, पर सरयू केवल "हां" "ना" के अतिरिक्त और कुछ भी न कह सकती थी।

इसीलिये अमल के आने पर वह यथासम्भव संक्षिप्त बातचीत कर झट रसोई घर में भाग जाती थी। कुछ ही देर बाद टेवल पर जलपान चाय टोस्ट इत्यादि हाज़िर होता था। आज भी उस नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ।

अनीता मनोरमा की बदली हुई अवस्था को देख कुछ देर बाद ही विस्मित होकर बोली, "ननी, बहन, क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है?"

मनोरमा ने एक शान्त हंसी हंसकर कहा, "नहीं।" अनीता ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा, "जरूर तुम्हें कुछ हो गया है। चलो, तुम्हारे कमरे में चलें। क्या बात है? तुम्हें मुझसे कहना ही पड़ेगा!"

मनोरमा बोली, "नहीं बहन, यहीं बैठो, ज़रा इन लोगों की बातें मैं भी तो सुनूं।"

अमल और इन्द्र इसी थोड़े समय में ही एक तर्क में लग गये थे। यह उनकी मित्रता की एक विचित्रता थी। वे सर्वदा तर्क ही किया करते थे, नाना प्रकार की छोटी बड़ी बातों को लेकर तर्क खड़ा कर लेना ही उनके बन्धुत्व का एक विशिष्ट चिन्ह था।

आज के तर्क का विषय था स्वामी-स्त्री का अधिकार। इन्द्र कह रहा था,—"तुम इसे 'ड्रजरी' कहते हो? स्वामी पुत्र कन्या की सेवा करना हिन्दू नारी के लिये एक आनन्द है ड्रजरी नहीं है।"

अमल बोला, "देखो, अन्याय को काव्य के पर्दे में छिपा कर तुम भले ही उसे सत्य और धर्म बताया करो, पर मैं तुम्हारी बात मानने के लिये कदापि तैयार नहीं हूं।"

इन्द्र०। काव्य? इसमें काव्य कहां है? यह तो गद्य है—फैक्ट है। अनुभूति के साथ देखने से देख सकोगे कि सेवा कर, विशेषतः स्वामी पुत्र कन्या इत्यादि निकट आत्मीयों की सेवा कर, जो आनन्द पाया जाता है वह उस 'विराट आनंद' का ही एक अंश तो है।

अमल०। आनन्द तो बहुत सी चीज़ों से मिलता है। रूस के 'सर्फ' लोगों को जब मुक्त किया गया तब उन लोगों में एक विलक्षण गोलमाल शुरू हो उठा था। दासत्व में जो एक दायित्व शून्य आराम है उसे खो कर वे बहुत बड़ी असुविधा में पड़ गये थे। हम लोगों ने भी अपनी स्त्रियों को ठीक उसी प्रकार के दासत्व में जकड़ रक्खा है और अब वे उसी में आनन्द पाती हैं, परन्तु उस सङ्कीर्ण जगत के बाहर जो एक प्रकाण्ड आनन्द है, उसको वे जानती ही नहीं हैं। यह क्या निष्ठुरता नहीं है!

इन्द्र इस बात को मान लेने को तैयार न था। अमल भी अपने मत से शीघ्र हटने वाला न था। उसका विश्वास था कि यूरप और अमेरिका की स्त्री जाति क्रमशः अधिकाधिक परिमाण से पुरुषों के समान ही सब कार्य कर रही है। उसको देखते हुए एक दिन ऐसा निश्चय आवेगा जब पुरुष और

नारी सम्पूर्ण रूप से एक अधिकार और सम्पूर्ण साम्यत्व लाभ करेंगे। तभी इन्द्रनाथ के जैसे विचार वाले लोग शायद अपना मत बदलेंगे।

परन्तु एक विषय में इन्द्र और अमल में सम्पूर्ण एक मत था। दोनों को स्वीकार था कि स्वामी और स्त्री में समता रहनी चाहिये। परस्पर में अधिकार की कमी बेशी रहना ठीक नहीं है। स्वामी स्त्री का सम्बन्ध समान-समान में प्रेम का सम्बन्ध होना चाहिये।

अब अनीता ने भी इस तर्क में भाग लिया। उसने कहा, "अच्छा भैया, यह तुम लोगों का एक भ्रम है कि नहीं? पुरुष और नारी को समान होना उचित है, उनके अधिकारों में कोई कमी बेशी रहना उचित नहीं—यह ठीक है, पर इससे क्या यह मतलब निकलता है कि कोई भी पुरुष किसी भी नारी से बड़ा हो ही नहीं सकता? पुरुष और नारी में एक प्रकृति-गत प्रभेद तो आखिर बना ही रहेगा।"

अमल०। हां यह तो ठीक है।

अनीता०। यदि यह ठीक है, यदि ऐसा एक पुरुष है जो स्वभावतः एक नारी से सब बातों में बड़ा है, और उस पुरुष का यदि उस स्त्री के साथ विवाह हुआ है, तब क्या उस पुरुष को उस स्त्री पर शासन करने का स्वाभाविक अधिकार नहीं रहेगा? हां अवश्य ही वह अधिकार परस्पर के प्रेम पर प्रतिष्ठित रहेगा, शक्ति पर नहीं।

इन्द्र०। यह बात ठीक है, परन्तु मैं कहता हूं कि ऐसा विवाह होना ही नहीं चाहिये। जहां स्त्री स्वभावतः स्वामी के समान नहीं है, वहां विवाह होने से एक आधिपत्य का भाव आ ही जायगा। दृढ़ प्रेम का सम्बन्ध ऐसे मिलन से नहीं हो सकता। समान-समान में विवाह होने से ही यह सम्बन्ध आदर्श प्रेम का सम्बन्ध हो सकता है और तभी स्वामी स्त्री परस्पर की समान श्रद्धा कर सकते हैं।

अनीता०। आपका कहना क्या ठीक है? मुझे तो ऐसा ज्ञान पड़ता है कि स्वामी स्त्री का सम्बन्ध वहीं होना चाहिये जहां स्त्री स्वामी को सचमुच ही अपने से बड़ा समझ सके, उसके निकट निर्भय होकर आत्म-समर्पण कर सके। मैं तो समझता हूँ कि इस तरह के आत्मसमर्पण से ही नारी प्रकृत सार्थकता लाभ करती है।

इन्द्र। अनीता, तुम यह बात कहती हो!! स्त्रियों के मनस्तत्त्व के बारे में अवश्य ही तुम मुझसे अधिक जानती होगी पर पुरुषों की ओर से मैं यह कह सकता हूं कि अपनी पत्नि की ओर से सदा एक गुलाम की तरह से बर्ताव यदि कोई पति पाता रहे तो वह पुरुष कभी भी अपने जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता लाभ नहीं कर सकता है। पति अपनी पत्नि में एक संगिनी चाहता है कोई दासी नहीं। दासी तो बहुत मिल सकती हैं!

इसी समय पीछे से नाना प्रकार की खाद्य सामग्रियों को

लेकर नौकरानी के साथ साथ सरयू आ पहुँची। सरयू ने अपने पति की अंतिम बात को सुन लिया था और सुन कर ही उसका सारा मुखमण्डल आरक्त हो गया था। इन्द्रनाथ भी उसे देख बहुत विव्रत हो गया। सरयू चाय की ट्रे मनोरमा के सामने रख कर बोली, "बहन, तुम चाय बना कर दो, मैं अभी आती हूँ।" कह कर ही वह घर से बाहर चली गई। अपने पति की बात सुन उसके हृदय में जो रुलाई उठ पड़ी थी वह उसे किसी तरह भी दाब कर रख न सकती थी।

सरयू अपने कमरे के दरवाज़े बन्द कर रोने लगी। इतने दिनों तक वह जिस बात को समझ कर भी समझना नहीं चाहती थी, उसी बात को आज स्वामी के मुंह से सुन कर उसका समस्त हृदय चूर्ण विचूर्ण हो गया। उसके स्वामी उससे जो आशा करते हैं, वह उसे पूर्ण नहीं कर सकती है, स्वामी उसे जिस प्रकार की अपनी संगिनी बनाना चाहते हैं वह वैसा बन नहीं सकी है,—यही सोच सोच वह रोने लगी। अपने स्वामी पर कोई क्रोध नहीं हुआ, उसे केवल अपने ही पर क्रोध हुआ। वह क्यों इतनी अयोग्य है! क्यों इतनी अक्षम है! वह क्यों अपने स्वामी के मन को आनन्द से भर नहीं सकती! स्वामी के सुख के लिये जो अपने जीवन को विसर्जित कर सकती है, वही अपने स्वामी के हृदय में कांटे के समान चुभी हुई है! उसके स्वामी के प्राण में जो एक गंभीर निराशा है इसको वह आज सम्पूर्ण रूप से समझ सकी।

बारहवां परिच्छेद

सौभाग्यवश सरयू के इस विव्रत भाव को किसी ने भी लक्ष्य न किया। इन्द्रनाथ ने स्वयं ही चाय बनाना शुरू किया, और अनीता ने अग्रसर होकर उसे सहायता की।

एक स्यान्डविच खाता खाता अमल बोल उठा, "'बाई गाड'! मिसेज़ इन्द्र एक 'जोवेल' हैं !!"

इन्द्र ने कुछ हंस कर कहा, "शायद, परन्तु 'अनकट' !"

अमल बोल उठा, "पापिष्ठ ! खाते खाते झूठ बोलते हो ! अगर फिर बोले तो यह 'केक' तुम्हारे मुंह में ठूंस दूंगा !" कहकर सचमुच ही एक पूरा 'केक' वह इन्द्र के मुंह में ठूंसने लगा। बाद में बोला, "तुम्हारी स्त्री के समान रसोईया द्वापर युग के बाद और कोई हुआ है ऐसा तो नहीं मालूम होता।"

इसके बाद वह मनोरमा से बोला, "देखो तो, तुम्हारी भौजाई कहां भाग गई! चलो हमलोग उन्हें ढूढ़ंकर निकालें।"

बहुत देर की खोज ढूंढ और पुकार के बाद सरयू मुंह-आंख धोकर आ पहुंची। अमल ने उसके सब सङ्कोच को दूर कर उसे ले आकर ड्राइंग रूम में बिठाया, इसके बाद अपनी रसिकता के द्वारा उसका मनोरञ्जन करने की चेष्टा करने लगा। विशेषतः, सरयू की बनाई भोज्य वस्तुओं की ऐसी निपुणता से उसने प्रशंसा की कि सरयू का आत्मसम्मान उससे बहुत कुछ परितृप्त हो गया। अनीता ने भी अपने भाई के साथ योग दिया। उसने सरयू की सिलाई की बहुत प्रशंसा की बल्कि सिलाई का एक नमूना लाकर सबको दिखलाया भी। इन सब बातों से सरयू के मन का दु:ख उस समय के लिये कुछ दूर हो गया। उसको कुछ प्रसन्न देख अमल ज़िद कर बैठा कि उसे एक गाना गाना ही पड़ेगा। आरंभ में सरयू किसी तरह भी सम्मत न हुई, पर अन्त में सब के बहुत ज़िद करने पर उसने बहुत धीरे धीरे एक गाना गाया। अनीता एसराज लेकर उसके साथ बजाने लगी।

वास्तव में गान बहुत ही सुन्दर हुआ। उसका सुर अत्यन्त साधारण था, उस्तादी गाने की मूर्छना उसमें न थी, परन्तु उसमें एक ऐसा सरल सौन्दर्य्य था कि इन्द्र उसे सुनकर मुग्ध हो गया। उसने अनेक दिनों से सरयू के मुंह से कोई गाना नहीं सुना था, सुनने की इच्छा भी न थी। आज अचानक इसे सुन उसको बहुत मीठा लगा। सरयू के गले का स्वर प्रथम परिचय में जैसा मीठा लगा था वैसा ही आज भी मीठा लगा।

अमल ने तो उसकी प्रशंसा के पुल बांध दिये परन्तु इन्द्र ने कहा, "यह बहादुरी किसकी है ? तुम्हारी या तुम्हारे गुरु की ?"

कहकर उसने अनीता की ओर देखा। सरयू के हृदय में फिर वेदना की एक अनुभूति हुई, पर उसी समय अनीता बोली, "मैंने तो यह गाना इनको नहीं सिखलाया है।"

आखिर अंत में प्रकाश हो ही गया कि सरयू ने यह गान मनोरमा से सीखा है। सुन कर अमल मनोरमा के पीछे पड़ा, परन्तु मनोरमा किसी तरह भी गाने के लिये राज़ी न हुई। अन्त में अनीता ने अपनी भुवनमोहिनी स्वर-लहरी ढाल कर सब के कानों में अमृत की नदी बहा दी। एक के बाद दूसरा दूसरे के बात तीसरा, इसी तरह अनीता ने सात या आठ गाने गाये। सभी लोग तन्मय होकर सुनते रहे, परन्तु इन्द्रनाथ तो अपना चक्षु कर्ण आदि सभी ज्ञानेंद्रियें अनीता पर स्थापन कर के बैठा रहा।

गाना समाप्त होने पर जब अमल विदा हो गया तो मनोरमा भी उठ कर अपने कमरे में चली गई। इस समय उसका मन कैसा कुछ छायाच्छन्न सा हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था मानों इस प्रकार के आनन्द-मिलन में योग दान करना उसके लिये अनधिकार चर्चा है। वह विधवा है, ब्रह्मचारिणी है, यह सब हास्य-कोलाहल, आनंद-स्रोत, उसके लिये नहीं है ! वह जो अब तक एक आनन्द बोध कर रही थी, अनेक बार

हंसी भी थी, यह बात याद आते ही उसकी मर्मव्यथा और भी बढ़ गई।

अपने कमरे में पहुंच कर उसने देखा कि सरयू की दोनों लड़कियों और उसके लड़के ने मिल कर सारे कमरे को कूड़ा-खाना बन डाला है। बहुत सी चीजों को तोड़ कर, सारे घर में फटे कागज छींट कर, हाथ मुंह में कालिख लगा कर, वे तीनों मूर्तिमति अपरिच्छिन्नता का स्वरूप बन कर बैठे हैं। पर मनोरमा कुछ भी रुष्ट न हुई। घर साफ कर, बच्चों को नहला धुला, उन्हें साफ कपड़े पहना कर, उनको ले वह एक कहानी कहने बैठ गई।

इधर सरयू को अकेली पा इन्द्रनाथ ने उसे अपने गले से लगा लिया। सरयू एक म्लान हंसी हंसकर बोली, "ओह, बुढ़ापे में भी वही आदत—"

इन्द्र ने कहा, "अच्छा, तुमने छिपा कर इतनी विद्याएं सीख लीं, और मुझसे कभी कहा तक नहीं!!"

"वाह! यह कौन सी विद्या में विद्या है!"

"तुम्हारे पास जो कुछ हीरे हैं सब अमल के लिये हैं, मेरे समान मूर्ख को कुछ देने की तुम्हारी इच्छा नहीं होती!!"

हाय! व्यर्थ की प्रशंसा! सरयू के मन के विश्वास का आधार कुछ ऐसा ढीला हो गया था कि इस जल-सिञ्चन से वह कुछ भी पुनर्ज्जीवित नहीं हुआ। इन्द्र ने अपने अपराध के प्रायःश्चित्त स्वरूप उसपर अगणित सुहाग ढाल दिया।

इन्द्र की प्रत्येक बात सरयू के लिये अमृत के समान थी, परन्तु फिर भी इससे वह तृप्त न हुई। इन सब बातों के बीच जो एक विराट शून्य वर्त्तमान है, इसको वह एक बार भी भुला न सकी। उसका पति उसे अपनी संगिनी नहीं समझता, वह केवल एक दासी मात्र बन पाई है—यह एक विचार उसके मन में शूल की भाँति गड़ता ही रहा।

तेरहवां परिच्छेद

अमल ने कहा, "मुझे तो मालूम होता है, इन्द्र ने अपनी स्त्री को 'नेग्लेक्ट' करना शुरू किया है।"

अनीता ने सिर हिला कर कहा, "नहीं, ऐसा नहीं है। उनके समान यत्न और आदर खूब कम लोग ही किया करते हैं।"

अमल०। यत्न करना एक बात है और प्रेम करना दूसरी बात है।

अनीता०। सच है, पर वे सरयू से प्रेम भी कम नहीं करते हैं। मुझे तो असल बात यह जान पड़ती है कि वे उसकी ओर से कुछ निराश से हो गये हैं, और सरयू को यह बात मालूम हो गई है।

अमल०। इन्द्र बेवकूफ़ है! उसकी स्त्री के समान स्त्री हज़ार में शायद् ही एक मिलती होगी! सरयू का हृदय कितना बड़ा है, उसके प्रेम में कितनी गंभीरता है!

अनीता०। (हंसकर) यह बात भी ठीक है। उसमें बहुत से गुण हैं। पर जिसमें जो गुण रहता है वह तो लोगों को बहुत शीघ्र ही मालूम हो जाता है और जो नहीं रहता वही लोगों के सामने एक विशाल शून्य के समान खड़ा हो जाता है।

अमल०। परन्तु उसकी स्त्री को क्या नहीं है? ऐसा रूप इस देश में बहुत कम ही मिलता है। रन्धन-कार्य्य में भी वह अतुलनीय है, गाना बजाना सिलाई सब कुछ जानती है। केवल अंगरेज़ी में बातचीत करना नहीं जानती!

अनीता०। लिखना पढ़ना नहीं जानती शायद् यही इन्द्र बाबू की निराशा का सब से अधिक कारण है!

अमल०। पागल है! पढ़ने लिखने की एक इतनी बड़ी नक़ली क़ीमत हो गई है जो कही नहीं जा सकती। पढ़ना लिखना एक उपाय मात्र है—उसका उद्देश्य है मनुष्य का गठन करना, और हमारा वह मूर्ख इन्द्र मनुष्य की ओर नहीं देख रहा है।

इन लोगों की बातचीत यकायक एक अंगरेज भद्र पुरुष के आने से रुक गई जिनकी मोटर बरसाती में आकर खड़ी हो गई थी। टाम लिण्डले प्रेसिडेंसी कालेज के प्रोफेसर

हैं। जब अनीता कैम्ब्रिज में थी उसी समय टाम के साथ उसका परिचय हुआ था। वे दोनों साथ साथ कई विषय पढ़ते थे। टाम और अनीता एक साथ एक ही जहाज़ पर इंगलैण्ड से भारत आये भी थे। जहाज में उन लोगों की चाल चलन देख कर सब लोगों ने यही अनुमान किया था कि जहाज़ भारत-वर्ष पहुँचते ही अनीता का नाम लिण्डले होने में देर न लगेगी और टाम की ओर से ऐसा करने में देर हुई थी भी नहीं। कलकत्ते पहुंचने के बाद ही अमल से टाम ने इस संबंध में बात की थी, पर अमल ने लिण्डले से कहा था—"तीन वर्ष के बाद यदि तुम इस प्रस्ताव को फिर उपस्थित करो तो मैं कुछ कह सकता हूँ। इस समय इस संबन्ध में अनीता से कोई बात करना उचित नहीं, वह अभी बिलकुल बच्ची है।"

अमल के ऐसा कहने के भीतर यह दृढ़ विश्वास था कि तीन वर्ष तक भारतवर्ष में वास करने के बाद कोई अंगरेज किसी भारतीय स्त्री से विवाह करना नहीं चाहेगा। परन्तु लिण्डले अपनी आशा त्याग न कर सका था। वह अब भी ठीक पहले के समान ही अनीता के पास आकर उसकी पूजा किया करता था।

पर सो जो कुछ भी हो, अनीता ने किसी दिन भी टाम को ऐसा कोई भाव नहीं दिखलाया था जिससे प्रगट होता कि वह टाम से प्रेम करती है। हां, टाम की पूजा से वह आनन्द लाभ नहीं करती थी ऐसा नहीं कहा जा सकता।

कौन नारी ऐसी है जो उपयुक्त पुरुष का प्रेम लाभ कर गर्वित और आनन्दित न हो।

इसके बाद अढ़ाई वर्ष बीत गये हैं। अढ़ाई वर्ष की अभिज्ञता से क्या नहीं हो सकता है—विशेषत: जीवन के इस महा सन्धि-स्थल में।

× × ×

परन्तु ज्ञात पड़ता है अनीता इन्द्र की बात को भूल न सकी। चाय पान करने के बाद टाम के जाते ही वह फिर वही जिक्र छेड़ बैठी। उसने अपने भाई से कहा—

जो कुछ भी हो भैया, पर इसका कुछ उपाय तो करना ही होगा! उन लोगों के सुख का संसार नष्ट हो और हम लोग खड़े खड़े देखें?"

अमल भौंहें चढ़ा कर बोला, "किसका? इन्द्र का? हां यह तो है, परन्तु इन्द्र अभागा है, उससे मुझे कुछ भी आशा नहीं है!"

अनीता कुछ देर तक चुप रही, इसके बाद बोली, "भैया, तुम यह क्या कहते हो! इन्द्रबाबू के समान मनुष्य से यदि तुम्हें कोई आशा नहीं तो क्या फिर सत्य से होगी!"

सत्य अमल का एक पड़ौसी और मित्र था। उसका नाम सुनते ही अमल हंस के बोला :—

"अलबत्त! सत्य एक मर्द आदमी है और उसकी स्त्री भी सौ पचास में एक महिला है! उनके मन के भीतर कोई छिपी

हुई आग नहीं है। जब सत्य को कोई बात पसन्द नहीं होती तो वह सीधा घर में घुसकर साफ साफ अपनी स्त्री से सब कुछ कह देता है। उसकी स्त्री भी उस विषय में और सत्य के चरित्र के सम्बन्ध में अपने मत को खूब साफ साफ कह डालती है, और मां भी कुछ इस तरह नहीं कि उसे केवल सत्य ही सुने और किसी को मालूम न हो। आवश्यक होने पर सत्य ऐसी जगह अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये बाहु-बल का आश्रय लेने में भी कुण्ठित नहीं होता और उस समय उसकी स्त्री और भी जोर शोर से अपना मत प्रकाश करती है। परन्तु इस तरह की लड़ाई झगड़े के बाद और यदि जो कुछ भी हो, पर परस्पर के सम्बन्ध में कोई मूढ़ धारणा बाकी नहीं रह जाती है और प्रायः देखा जाता है कि इस तरह की घटना के बाद वे महीनों बहुत सुख के साथ अपने दिन बिताते हैं। इन लोगों के बीच में उपदेशक बनने से कोई भी विपत्ति नहीं हो सकती। केवल झगड़े के समय वहां पहुँच कर दोनों को खींच कर अलग हटा देना ही यथेष्ट है। किन्तु इन्द्र और सन्तू के समान 'सोफ' लोगों की ऐसे विषय में भला क्या सहायता की जा सकती है!!"

अमल की ऐसी बातों से अनीता को बहुत ही अशान्ति मिल रही थी परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ न कह उसने कहा, "तो चलो न तुम और मैं दोनों मिल कर एक दिन इन्द्र बाबू को समझा कर सावधान कर दें।"

अमल बोला, "अरे बाप रे बाप ! मैं यह सब नहीं कर सकता। यदि बोलना चाहती है तो तू ही जाकर बोल। लेकिन तू भी उससे कहेगी क्या ? पति पत्नि के बीच में तीसरे आदमी का पड़ना क्या कभी हितकर होता है ?"

भाई को अपने मत का न कर सकने पर भी अनीता ने स्थिर किया कि वह एक बार स्वयं चेष्टा किये बिना न छोड़ेगी।

दूसरे दिन शाम को इन्द्रनाथ स्वयम ही इनके घर आ पहुँचा। अमल तब तक घर नहीं लौटा था, अस्तु इन्द्र लान के एक तरफ बैठ अनीता के साथ बातचीत करने लगा। अनीता ने सोचा यही शुभ सुयोग है। उसने इधर उधर की दो एक बातें कर अन्त में कहा, "एक बात पूछूं, ठीक उत्तर देंगे ?"

इन्द्र ने हंसकर कहा, "क्यों ? यह संदेह क्यों ?"

"क्या आप मुझसे सचमुच ही प्रेम करते हैं ?"

इस बात के मुंह से निकलते ही दोनों चौंक उठे। दोनों के मुंह आरक्त हो गये। परन्तु म्लान सन्ध्यालोक में किसी ने इसे लक्ष्य नहीं किया। अनीता ने अपनी बात को समाप्त कर तुरन्त ही फिर कहा, "—ठीक पहले के ऐसा ही—अपनी छोटी बहन के समान ही—प्रेम करते हैं ?"

अनीता ने क्यों ऐसी भूल की ? एक बात कहते कहते दूसरी एक बात क्यों कह डाली ? यह वह समझ न सकी। मगर अपने पर उसे बहुत ही अधिक क्रोध हुआ।

इधर इन्द्रनाथ का भी हृदय कांप उठा। उसने यथासम्भव

आत्मदमन कर कहा, "अनीता, तुम यह बात क्यों पूछ रही हो?"

"यदि आप सचमुच ही मुझे सम्पूर्ण रूप से अपना समझते हैं, तो मैं आपसे एक बात कहना चाहती हूँ।"

अनीता की व्यग्रता और आवेग से इन्द्रनाथ का मन शङ्कित हो गया। वह कुछ डर कर बोला, "कहो।"

"मैं नहीं जानती कि आप इस बात को समझ सके हैं या नहीं,—पर मुझे मालूम होता है कि आपकी स्त्री के मन में कोई बहुत बड़ा कष्ट है। वे शायद सोचती हैं कि आप उनसे सम्पूर्ण रूप से प्रेम नहीं करते हैं, और इसका कारण वे यह समझती हैं कि आप जैसा चाहते हैं वैसा वे नहीं बन सकी हैं।"

इन्द्रनाथ चुप रहा। बात ठीक थी। परन्तु सच हो या झूठ हो, इन्द्र अनीता से इस विषय में कैसे सब बातें कर सकता है? फिर, इस सन्ध्याकाल में अकेले एक सुन्दरी युवती के साथ इन बातों की आलोचना करना भी जो सम्पूर्ण निरापद नहीं है, उसे यह बात भी ख्याल आ गई।

अपनी बड़ी बड़ी उज्जल आंखें एकाग्र आवेग के साथ इन्द्रनाथ के मुंह पर गड़ा कर अनीता बोली, "इन्द्र बाबू, आप मुझ पर रुष्ट न होइयेगा। मैं स्त्री हूँ, इसी लिये स्त्री के मन की बात कुछ अधिक समझ सकती हूं। यमुना देवी इसी बात को सोच सोच कर दिन रात जो कष्ट पाती हैं इसे शायद आप नहीं समझ सकेंगे परन्तु मैं समझ सकती हूं। इन्द्र बाबू! आप क्या उनके इस दुख को दूर नहीं करेंगे?"

इन्द्रनाथ ने बड़े सङ्कोच के साथ कहा, "मैं कैसे क्या कर सकता हूं, कहो। अपनी स्त्री के प्रति मेरा जो कर्तव्य है—मैंने उसकी किसी दिन भी अवहेलना की हो ऐसा तो मुझे नहीं मालूम होता।"

"नहीं! आप ऐसा क्यों करने जायेंगे! परन्तु इन्द्र बाबू, प्रेम कर्त्तव्य से भी बड़ी कोई एक चीज है। कर्त्तव्य सीमाबद्ध हो कर चलता है और प्रेम का स्वभाव यह है कि वह दोनों तटों को प्लावित कर उसी में अपने को विसर्जित कर देता है। सरयू बहिन से आप जैसा प्रेम करते थे यह क्या मैंने नहीं सुना है। पर क्या अब भी वही अवस्था है? आप अपने मन से ही इस बात को पूछिये!!"

इन्द्रनाथ मिथ्या न कह सका, परन्तु इस बात का सीधा उत्तर भी न दे सका। उसने कहा, "यदि वह पूर्व्वावस्था न रहे तो भी मैं क्या कर सकता हूं? तुम मुझे क्या करने के लिये कहती हो? जो वस्तु वास्तव में नहीं है दिन रात उसका अभिनय किया भी कैसे जा सकता है?"

"आप क्या पागल हो गये हैं! मैं आपको अभिनय करने के लिये नहीं कहती—आपको सचमुच ही उसी प्रेम को लौटा कर लाना होगा। जब आपने एक बार उन्हें रानी के आसन पर बिठा दिया तब उन्हें एक कदम भी नीचे आने के लिये कहने से, उन्हें दुःख अवश्य ही होगा। इसके अतिरिक्त यह भी याद रक्खेंगे—जो जितना बड़ा दाता होता है

लोग उससे उतने ही बड़े दान की प्रत्याशा भी करते हैं। आप हृदय-सम्पद् में जितने बड़े धनी हैं, उतना बड़े धनी और कितने हैं ? उस असीम ऐश्वर्य्य को आपने जिसे दोनों हाथों से दान किया है, वह आज कैसे आपके पास से एक मुट्ठीभर भीख लेकर लौट जा सकता है ?"

इन्द्रनाथ चुपचाप बैठा रहा, अनीता कहती चली गई, "मुझे क्षमा करेंगे इन्द्र बाबू, पर आपकी स्त्री की हृदय में जो घाव हो गया है वह कितना बड़ा घाव है, यह मैं अपने प्राण के भीतर अनुभव कर सकी हूं। जिससे प्रेम किया जाता है, उससे कुछ नहीं मिलने पर भी जीवित रहा जा सकता है,—यदि उसकी श्रद्धा प्राप्त हो। परन्तु सब पाकर यदि श्रद्धा प्राप्त न हो तो कुछ न पाने के बराबर ही है। इसीलिये मैं आप से कहती हूं कि बहिन सरयू के हृदय के उस घाव को दूर करना ही होगा। आपको मैं बहुत बड़ा समझती हूं इसी लिये कहती हूं कि आपको अपनी वही पुरानी श्रद्धा और प्रेम लौटा कर लाना ही होगा। और आप ऐसा क्यों न कर सकेंगे ? आपकी स्त्री किस नारी से हीन है ? उसके समान हृदय आप कितनी पढ़ी लिखी स्त्रियों में देखते हैं ? चौदह वर्ष की लड़की अपनी ननद् के स्वामी की चिकित्सा के लिये अपने पांच सौ रुपये का हार खोल कर दे सकती है—हम लोगों जैसी खूब-शिक्षिता स्त्रियों में से कितनों में वैसा हृदय आप पा सकते हैं ? उस दिन भैया ने कहा था—'शिक्षा एक उपाय मात्र है, उसका

वास्तविक उद्देश्य है मनुष्य का गठन।' वे लिखना पढ़ना नहीं जानती हैं सच है, परन्तु वे वास्तव में एक श्रेष्ठ मानव हैं। उनके विरुद्ध केवल यही कहा जा सकता है कि वे लिखना पढ़ना नही जानतीं। पर क्या इसी लिये, केवल इतने ही के लिये, क्या एक ऐसे उच्च हृदय की नारी के प्रति आप श्रद्धा न कर सकेंगे, प्रेम कायम न रख सकेंगे!—मै आपको इतना सङ्कीर्ण नहीं समझती हूं।"

इन्द्रनाथ अब तक नीची दृष्टि कर चुपचाप बैठा हुआ था। इस बात को सुन उसने आंखें उठा कर देखा कि अनीता की आंखें भी सजल हो आई हैं। उसके मुंह और आंखों से उत्साह की एक तीव्र ज्योति निकल रही है।

अनीता ने फिर कहा, "आप शायद समझ नहीं सकते हैं कि आप कितनी बड़ी सम्पद् से उन्हें वञ्चित कर रहे हैं। आपके समान मनुष्य का प्रेम लाभ करना—किसी नारी को बड़ी कठिन तपस्या के फल स्वरूप ही मिल सकता है। उस प्रेम को एक बार लाभ कर पुनः खो बैठने से, सामान्य नारी का प्राण कैसे जीवित रह सकता है आप ही कहिये, इन्द्रबाबू!"

सड़क से गाड़ी का शब्द सुन दोनों उठ खड़े हुए। ड्राइंग रूम की ओर अग्रसर होते होते अनीता ने इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर कहा, "मेरी बात मानेंगे! कहिये?"

इन्द्रनाथ ने कहा, "मैं चेष्टा करूंगा।" अनीता का मुंह आनन्द से उद्भासित हो गया।

चौदहवां परिच्छेद

मनोरमा के गुरु हरिनाथ भट्टाचार्य्य महाशय वृद्धावस्था को पहुँच चुके थे। उनके आचार निष्ठा और साधना की बात सुपरिचित थी। संपूर्ण गौरकान्ति न होने पर भी उनकी दीर्घ देह, प्रशस्त वक्ष, सौम्यमूर्त्ति, भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न करती थी। भट्टाचार्य्य महाशय अपना अधिक समय पूजा-अर्च्चना में ही व्यतीत करते थे, और उनके मुंह से सर्व्वदा ही भगवन्नाम निकलता रहता था। उनके गले में रुद्राक्ष की माला लटकती रहती थी, हाथ में सदा एक स्फटिक की माला लिये रहते थे।

भट्टाचार्य्य महाशय बाल्यकाल में व्याकरण का अध्ययन कर रहे थे जब अचानक पितृवियोग होने के कारण, उन्हें अनेक शिष्यों के परकाल का भार ग्रहण करना पड़ा। इसी लिये वे स्वयम् ज्ञानमार्ग में कुछ बहुत अग्रसर होने का उपाय न कर सके। परन्तु इस यत्सामान्य व्याकरण विद्या की मदद

से और साथ साथ ज्योतिष शास्त्र की सामान्य दो एक वार्ता तथा स्मृति के आचार-काण्ड का थोड़ा बहुत परिचय होने के कारण वे कुछ ही चेष्टा में शास्त्रज्ञ के समान अपने सब शिष्य सेवकों की सब आध्यात्मिक आधिदैविक और आधि-भौतिक समस्याओं की मीमांसा करने लग पड़े। इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि भट्टाचार्य महोदय को एक सहज स्वाभाविक तीक्ष्ण बुद्धि अवश्य थी, और उसी के बल से सकल विषयों में वे इस प्रकार अपने लघु ज्ञान का असीम परिचय देते थे कि लोगों के मन में उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य के सम्बन्ध में श्रेष्ठ धारणा हो जाती थी।

मनोरमा के भेजे पत्र के उत्तर में एक दिन अचानक ही जब गुरुदेव उसके घर पधारे तो मनोरमा को आश्चर्य के साथ साथ बहुत प्रसन्नता भी हुई। उसने भक्तिपूर्ण चित्त से उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने आकाश की ओर देख हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया। उन्हें देख इन्द्रनाथ का तो सर्वाङ्ग जल उठा और वह झट घर छोड़ बाहर निकल गया, परन्तु सरयू ने भक्ति के साथ प्रणाम कर जल्दी जल्दी गुरुदेव महाशय की पूजा का प्रबन्ध किया। उसकी व्यवस्था देख भट्टाचार्य महाशय ने उसे मना कर कहा, "गङ्गा तट में आकर, गंगा स्नान न कर, देवी की पूजा न कर, मैं जल-ग्रहण न करूंगा। देवी के मन्दिर में ही मैं अपनी पूजा का भी आयोजन कर लूंगा।" इतना कह मुंह हाथ धो वे झट कालीघाट चले गये।

दो पहर के बाद वे कालीघाट से लौटे। मनोरमा कालेज न जा तब तक निरम्बु उपवास किये बैठी उनका आसरा देख रही थी। घर लौट गुरुदेव ने सरयू के आयोजन का सम्पूर्ण सद्व्यवहार कर आहार किया, इसके बाद मनोरमा की बिछाई दुग्धफेननिभ शय्या पर लेट गये। मनोरमा पंखा ले उन्हें पंखा करने लगी। कुछ देर बाद उनकी अनुमति पाकर मनोरमा को उनके पात्र से कुछ प्रसाद मिला।

पांच बजे गुरुदेव महाशय की निद्रा भङ्ग हुई। वे खाट से उठे और "गंगा के तट में सायंसन्ध्या करेंगे" यही कह कर घर के बाहर निकल गये। सन्ध्या के बहुत देर बाद वे लौटे। आहार किया और तब सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल सन्ध्या वन्दन, गीता पाठ, चण्डी पाठ, स्तोत्र पाठ, इत्यादि समाप्त कर गुरुदेव के उठते उठते बहुत देर हो गई। मनोरमा ने गुरुदेव के लिये जलपान का आयोजन कर रक्खा था। गुरुदेव जलपान करने के बाद कुछ देर तक निश्चिन्त होकर बैठे। सरयू रन्धन का प्रबन्ध कर रही थी। अस्तु मनोरमा अवसर पा गुरुदेव के पास विनीत होकर बैठी।

बहुत साहस कर मनोरमा ने गुरुदेव से पूछा, "मेरा मन विक्षिप्त हो गया है। मैं अपनी श्रद्धा को खो बैठी हूं। पूजा में मेरा मन नहीं लगता। आप मेरे चित्त को शान्त कीजिए, मुझे भक्ति दीजिये।"

गुरुदेव ने एक स्निग्ध हंसी हंस कर कहा, "मां, तुम गुरु के चरण का आश्रय लो, तभी तुम्हारा चित्त स्थिर होगा। मनुष्य की बुद्धि परमार्थ-तत्व के उद्‌घाटन के लिये अत्यन्त अक्षम होती है। इस लिये उसका एक मात्र आश्रय है ऋषि का वाक्य और गुरु का चरण। गुरु को मनुष्य न समझो। गुरु जब शिष्य को उपदेश देते हैं तब साक्षात् विष्णु आकर उनके शरीर में अधिष्ठित होते हैं ऐसा शास्त्र कहते हैं। इसके अतिरिक्त, भगवान ने कहा है—"मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्‌याजी मां नमस्कुरु" अतएव सर्वदा ऋषि-गुरु निर्दिष्ट पथ में भगवान की पूजा करो शान्ति मिलेगी। श्री भगवान ने कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि चिन्तसि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

यही श्रेष्ठ पूजा है—इसी प्रकार अपने समस्त जीवन को पूजा में व्यतीत किया जा सकता है। जो करोगे—यत् करोषि, जो खाओगे—यदश्नासि, जो यज्ञ करोगे—यज्जुहोसि, जो चिन्ता करोगे-चिन्तसि यत्, जो तपस्या करोगे-यत्तपस्यसि, हे अर्जुन वह सब मुझे समर्पण करोगे—क्योंकि भगवान स्वयं अर्जुन के गुरु हैं। हम लोग सामान्य मनुष्य हैं, हम लोगों को क्या शक्ति है कि उनके चरणों में कुछ पहुँचा सकें। हां बस एक उपाय है, भगवान गुरु रूप में हम लोगों के पास उपस्थित होकर हम लोगों के सकल दान को ग्रहण करते हैं। इसी लिये कहते हैं कि गुरु ही हम लोगों का एक मात्र आधार है।"

गुरुदेव के इस मधुर उपदेश ने मनोरमा के मन में मानों अमृत सिञ्चन कर दिया। यही तो ठीक है, यही तो धर्म्म है, यही तो पूजा है, यत्करोषि, यदश्नासि, यज्जुहोसि,—तत्कुरुष्व मदर्पणम्। आंखें बंद कर मनोरमा इस धर्म्म को आयत्त करने की चेष्टा करने लगी।

गुरुदेव कहते गये, "यदि समस्त जीवन को एक धर्म्म न बना सको तो सभी वृथा है। समस्त जीवन में, समस्त कर्म्म में, श्रीभगवान को ध्यान करो,—तभी तुम धार्मिक कहलाओगी। मां, इस जगत में भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। श्रीभगवान ने कहा है—"यो मां पश्यति सर्व्वेषु सर्व्वञ्च-मयि पश्यति" वही तत्वज्ञानी है। अस्तु तत्वज्ञानी बनो, भगवान को सब में देखो, सब में भगवान की पूजा करो अपने जीवन को भगवान की पूजा बना डालो।"

अहा, क्या मधुर वाक्य थे! मनोरमा का शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

मनोरमा बोली, "प्रभु, आप मुझे गीता पाठ कर उसकी एक व्याख्या सुना देंगे?"

इस बार गुरुदेव जरा विपद् में पड़ गये। गीता के केवल कुछ एक सुपरिचित श्लोकों के साथ ही उनका परिचय था। वे प्रत्यह, कम से कम शिष्य के घर में, प्रातःकाल उठ कर, गीता के एक अध्याय का पाठ करते थे, पर केवल पाठ ही—उसके तात्पर्य्य ग्रहण की कोई चेष्टा किसी दिन भी उन्होंने न

की थी। अतः मनोरमा के समान शिक्षिता संस्कृताभिज्ञा शिष्या के सन्मुख गीता की व्याख्या कर के सुनाना उनके लिये एक अत्यंत दुसह कार्य जान पड़ा। फिर भी उन्होंने हंस कर कहा, "हां हां, यदि मेरी गीता व्याख्या सुनना चाहती हो तो मैं सुनाऊंगा मां, पर इस बार नहीं। गीता पाठ ऐसे वैसे करने की तो चीज नही है। उसके लिये पहले प्रस्तुत होना पडता है। संयम के द्वारा मन प्रस्तुत हो चुकने पर गीता पाठ में प्रवृत्त होना चाहिये। इसमें कुछ समय लगता है, और व्याख्या करने में भी बहुत दिन लगेंगे। मैं इस बार तो इतने दिनों तक यहां नहीं रह सकूंगा, पर दूसरी बार जब आऊंगा तो तुम्हें अवश्य सुनाऊंगा। हां, तुमने तो संस्कृत पढ़ा है, तुम स्वयम् ही एक शङ्कर का भाष्य-युक्त गीता खरीदो और स्वयं पढ़ने की चेष्टा करो—लाभ होगा।

इसके बाद मनोरमा ने, क्रमशः एक एक कर के, उसके मन में मूर्ति पूजा, जातिभेद प्रभृति विषयों पर जो सब समस्याएं उठा करती थीं, उनको गुरु के पास उपस्थित करना प्रारंभ किया। अब गुरुदेव बहुत घोर विपद में पड़ गये। मनोरमा ने इन समस्याओं को जिस प्रकार उपस्थित किया आज तक ठीक उसी अवस्था में विचार करने का सुयोग कभी भी गुरुदेव को मिला न था, अतः इन सब विषयों में उनकी पल्लवग्राही विद्या उन्हें कोई भी सहायता देने में असमर्थ थी। अस्तु वे बात को घुमा फिरा कर, जिस उपाय को उन्होंने सैकड़ों स्थानों में

प्रयोग किया था, उसी उपाय को काम में लाकर, अपने मत को प्रकाश करने लगे।

उन्होंने कहा, "मां, देखो। आराम–कुर्सी पर बैठ कर केवल मात्र विचार बुद्धि से इन सब शंकाओं का समाधान नहीं किया जा सकता है। इन गुत्थियों को समझने और सुलझाने के लिये शिक्षा और दीक्षा का प्रयोजन है। '–प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया' ज्ञान को अर्ज्जन करना होता है। उसके लिये भी पहले मन को प्रस्तुत करना होगा। फसल जन्माने के लिये जैसे पहले भूमि को तैयार करना होता है, उसी प्रकार मन को तैयार करने से तभी उसमें इन सब ज्ञानों के पौधे जन्म ले सकते हैं। इसीलिये गुरु का कर्त्तव्य है कि अधिकारी का विचार कर क्रमशः ज्ञान देना। इसीलिये गुरु की आवश्यकता है। पहले गुरु से अधिकार के अनुसार निम्न स्तर की साधना की दीक्षा लेनी होगी, उसके बाद क्रमशः जैसे जैसे मन प्रस्तुत होता जायगा, तैसे तैसे उच्च अङ्ग की साधना की दीक्षा लेनी होगी। खूब उच्च स्तर में पहुँचने पर तभी श्रवण मनन और निदि-ध्यासन के द्वारा इन विषयों में तत्वज्ञान उत्पन्न हो सकेगा। तुममें अब तक इन सब विषयों में ज्ञान लाभ करने का अधि-कार उत्पन्न नही हुआ है। साधारणतः स्त्री-जाति में यह अधिकार सहज में जन्म लेता भी नहीं है। इसीलिये वेद ने कहा है कि स्त्री और शूद्र को वेद या परा विद्या में अधिकार नहीं है। फिर भी यदि भगवत् कृपा से तुममें यह अधिकार जन्मे, तो

तुम उसका उपयुक्त ज्ञान भी पा सकोगी। श्री विष्णु मेरे ही मुख से तुम्हें यह सब तत्वज्ञान की शिक्षा देंगे। इस समय तुम्हें यह सब अनधिकार चर्चा त्याग कर तुम्हारा जो स्वधर्म है उसीका अनुशीलन करना होगा।"

परंतु मनोरमा अपने गुरुदेव की इस आखिरी बात से संपूर्ण तृप्त न हो सकी। यह सब बातें उसके ज्ञान और संस्कार के इतनी विरुद्ध थीं कि गुरु के मुंह से सुन कर भी इस बात को निर्विचार ग्रहण करने में उसका मन इतस्ततः करने लगा।

फिर भी अपनी शंका को प्रगट न कर उसने पूछा, "तब मन को स्थिर करने के लिये मैं क्या करूं, सो मुझे उपदेश दीजिये और यह भी बता दीजिये कि क्या करने से मैं उच्चाधिकार लाभ कर सकूंगी?"

"बार बार महाभारत और रामायण का पाठ करो, गीता पाठ करने की इच्छा हो तो वह भी कर सकती हो, नित्य सहस्रबार बीजमन्त्र का जप किया करो, बिना जपे जलग्रहण न करो। कम से कम प्रारंभ में यही व्यवस्था यथेष्ट होगी, इसके बाद क्रमशः सहस्रबार से लक्षबार तक जप करना होगा।"

उस दिन बात वहीं तक रही क्योंकि सरयू ने आकर भोजन तैयार होने की सूचना दी, पर भोजन करते करते गुरुदेव सोचने लगे कि इस स्थान में और अधिक समय तक

रहना ठीक नहीं। इस शिष्या को लेकर अधिक तर्क-वितर्क करने से विपद की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त इसके भाई इन्द्रनाथ का व्यवहार भी अत्यन्त प्रीतिपद नहीं मालूम होता। वह अब तक चुपचाप है, परन्तु यदि किसी समय उसने तर्क शुरू किया तो मुशकिल होगी। गुरुदेव सुन चुके थे कि इन्द्रनाथ ने वेद-वेदान्त का बहुत कुछ अध्ययन किया है, अतः उसके साथ तर्क होने से गुरुदेव की कृत्रिमता प्रकाश हो जाने की बहुत सम्भावना है। अतएव यहां अब अधिक समय तक ठहरना युक्ति संगत नहीं।

उसी दिन सन्ध्या को उन्होंने मनोरमा से कहा, "मां, अब तो तुम्हारा काम हो गया। अब मैं बिदा होता हूं?"

मनोरमा ने बहुत आग्रह के साथ जिद किया कि और दो एक दिन रह जांय, परन्तु अन्य एक शिष्य के घर में विशेष प्रयोजन रहने के कारण किसी प्रकार भी गुरुदेव उसके अनुरोध की रक्षा न कर सके। अतः मनोरमा ने दस रुपये उनके चरणों के पास रख कर प्रणाम किया।

गुरुदेव रुपयों को उठा हंस कर बोले, "मां, तुम लोग श्रद्धा कर जो कुछ दो वही यथेष्ट है! तब भी मार्ग-व्यय का कुछ खयाल है, जाने आने में मुझे सात आठ रुपये लग जायेंगे, फिर घर पहुंच कर ही देवो की पूजा करनी है, शिष्य-सेवकों से—हां,—कुछ न मिलने से हां,—दरिद्र ब्राह्मण हां,—"

मनोरमा ने वाक्य व्यय न कर और दस रुपये अपने वक्स

से निकाल कर दिये। उसने इन रुपयों को अपने बच्चे के कपड़े बनवाने के लिये रक्खा था।

इस पर भी आने के समय जब गुरुदेव ने अपनी वार्षिकी प्रणामी की इच्छा प्रकाश की, तो मनोरमा का मन सचमुच ही तिक्त हो उठा। उसने बहुत कष्ट से पांच रुपै और दिये और तब अपनी विरक्ति को गुप्त रख गुरुपदिष्ट साधना में लग गई। इन्द्रनाथ की लाइब्रेरी में गीता और रामायण थे,—वह उन्हें निकाल कर नियमित रूप से पढ़ने लगी। कभी कभी उपनिषद् भी देखने लगी।

एक दिन कठोपनिषद् में उसने पढ़ा,

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः

स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः

दन्द्रभ्यमाणाः परियन्ति मूढ़ाः

अन्धे नैव नीयमाना यथान्धाः॥

मनोरमा चौंक उठी। यह क्या ठीक उसी की बात नहीं है? अपने गुरु के द्वारा चालित वह भी क्या ठीक इसी अन्ध के द्वारा नीयमान् एक अन्ध ही नहीं है?

दूसरे दिन प्रातःकाल सहस्रवार बीजमन्त्र जप करने के समय उसे उपनिषत् का एक दूसरा वाक्य याद आने लगा, "अन्धं तमः प्रविशति येह विद्यामुपासते।" वह माला लेकर जप करती रही, परन्तु उसका मन बहुत विक्षिप्त हो गया।

पन्द्रहवां परिच्छेद

उस दिन की अनीता की बातचीत से इन्द्रनाथ के मन में एक प्रचण्ड आंधी की सृष्टि हुई।

उसने वचन दिया था कि वह सरयू से प्रेम करने की चेष्टा करेगा। उस वचन की रक्षा करने में अपने भरसक उसने कोई त्रुटि नहीं की। वह सरयू के सद्गुणों को ऊंचा कर के देखने की चेष्टा करने लगा, उसके दोष और त्रुटियों को अग्राह्य करने लगा।

पर, इस साधना में सिद्धि लाभ करने के लिये उसे अपने मन्त्र-दाता गुरु के साथ परामर्श करने का भी प्रयोजन पड़ने लग गया। वह प्रायः प्रत्यह अनीता के साथ इस सम्बन्ध में एकान्त में बातचीत करने का सुयोग ढूंढता था। ठीक जिस समय अनीता सम्पूर्ण अकेली पाई जा सकती थी, ठीक उसी समय वह उसके घर पहुँचता था और वहां अनीता के साथ

अकेले बैठ कर गंभीर भाव से उसके साथ प्रेम-साधना के विषय में बातें करता था। अनीता उसको उत्साहित करती थी। इन्द्रनाथ प्रतिदिन की समस्त घटनाओं को उसके पास वर्णन करता था। अनीता उसके कार्य्यों की समालोचना करती थी, भूल संशोधन करती थी, सरयू के मन की बातों का विश्लेषण कर के सुनाती थी। इन्द्रनाथ भक्त शिष्य की भांति कान लगा कर उसकी सब बातों को अमृत-धारा के समान पान करता था। उसके बाद परितृप्त हृदय से अपने घर को लौट आता था।

इन्द्रनाथ ऐसा क्यों करता था? उसको विश्वास था कि सरयू के प्रति कर्त्तव्य वशतः उसे यह करना उचित है। सरयू के सुख के लिये, उसके जीवन की सुखस्वच्छन्दता के लिये, ऐसा करना आवश्यक है, यही वह अपने मन में सोचा करता था। परन्तु कभी कदाच जब वह अपने मन का विश्लेषण करता तो उसे यही मिलता था कि वास्तव में उसकी इस प्रवृत्ति का आधार है अनीता ही। अनीता ने जो उसका हाथ पकड़ कर, उसके सारे शरीर में विद्युत् बहा कर, उससे अनुरोध किया था, उस अनुरोध की रक्षा के लिये ही वह ऐसा कर रहा है, ऐसा विचार करते ही उसके नेत्रों के सामने प्रकाशित हो जाती थी अनीता की वही एकाग्र मूर्त्ति, उसका वह साग्रह अनुरोध, उसके वे सिक्त चक्षु-पल्लव। केवल यही नहीं। इस साधना को उपलक्ष बना कर वह जो अनीता के

एकान्त सम्भाषण का उपभोग करता था, यह भी उसके लिये कम प्रलोभन नहीं था।

औरों से चाहे वह जितना भी छिपावे पर अपने मन से वह यह बात गुप्त नहीं रख सका था कि वह अनीता से प्रेम करता है। कभी कभी यह कह कर वह अपने मन को भुलाने की चेष्टा करता कि वह उससे ठीक एक छोटी वहिन के समान ही प्रेम करता है, पर यह केवल अपने को भुलावा देना था। अनीता सुन्दरी थी, गुणवती थी, चित्तहारिणी थी, इसी से उसे देख, उससे बातें कर, उसके सामने बैठ, उसको आनन्द मिलता था। मनोरमा को देख कर तो उसे ठीक वैसा ही आनन्द नहीं मिलता था। सत्यनिष्ठ इन्द्रनाथ कम से कम अपने से इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता था कि जिस मादकता भरी आकांक्षा को लेकर वह प्रतिदिन अनीता के सामने जाता था वह वहिन के प्रति कभी नहीं हो सकता था। अनीता की प्रत्येक बात में, उसके अङ्ग के प्रत्येक स्पर्श से, उसके रग रग में जो विद्युत् धारा वहने लगती थी, वह भला भगिनी के स्पर्श से कभी बह सकती थी?

कभी कभी वह इस बात को भी अनुभव करता था कि शायद अनीता भी उससे प्रेम करती है। अनीता की कई एक बातें घूम-फिर कर उसके कान में ध्वनित होती रहती थीं। "आपके समान पुरुष का प्रेम लाभ करना जो किसी नारी की तपस्या क है"—"आप हृदय सम्पद में जो कितने बड़े धनी

हैं वैसे धनवान और कितने लोग हैं?" इत्यादि बातों का क्या अर्थ है? अवश्य ही यह कि अनीता उससे प्रेम करती है। इस कल्पना ही से उसे बहुत आनन्द मिलता था।

परंतु फिर दूसरे ही क्षण वह एक तीव्र वेदना के साथ अनुभव करता था कि यह बड़े भारी सर्व्वनाश की बात है! इस बात को सोचना भी उसके लिये पापमय है, स्वार्थपरता है, और है विश्वासघातकता। परन्तु तौ भी घूम फिर कर यह बात उसके सामने आ ही जाती थी।

इसी प्रकार दिन पर दिन बीतते गये। एक दिन अचानक टाम लिण्डले ने कालेज में उसे एकान्त में बुलाया और कहा, "बैठो, मुझे तुमसे कुछ बात करनी है—तुम अनीता के संबन्ध में क्या सोचते हो?"

बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक यह प्रश्न सुन इन्द्रनाथ चौंक उठा। अपने मन के पाप के बारे में सोच उसे बहुत भय भी मालूम हुआ। उसने यही समझा कि हो न हो किसी प्रकार टाम उसके मन की बातों को जान गया है और इसी लिये वह उससे सीधा सीधी यह बात पूछ रहा है कि तुम अनीता के प्रति इस प्रकार का अबाध प्रेम क्यों करते हो। उसका सारा मुखमण्डल लाल हो गया।

बहुत देर बाद, बहुत कष्ट से, उसने अपने को सम्भाल कर उत्तर दिया, "मैं क्या सोचता हूं? मैं सोचता हूं कि वह एक बहुत ही सुन्दर और बहुत ही गुणवान लड़की है।"

टाम०। यह तो हुई है जी, इस बात में तुम्हारे साथ किसी का क्या मतभेद हो सकता है, पर मैं तुमसे यह नहीं पूछ रहा हूँ। मैं जानना यह चाहता हूँ कि मेरे प्रति अनीता के मन का भाव कैसा है इसके बारे में तुम कुछ जानते हो?

इन्द्र को मुक्ति मिली। तब टाम को इन्द्र के मन की गुप्त पाप का कोई सन्धान नहीं मिला है।

कुछ रुक कर इन्द्र ने कहा, "मैंने इस बारे में तो कुछ विशेष लक्ष्य नहीं किया है।"

टाम ने कुछ चिन्ता के साथ कहा, "क्या तुम उसके मन की बात को जानने की एक बार चेष्टा करोगे? तुम पर उसकी बड़ी श्रद्धा है, इससे मैं सोचता हूँ कि शायद तुम सहज ही में उसके मन की बात को जान सको। उसके मन की स्थिति का पता न पाने से मैं बड़ा ही अस्थिर हो उठा हूं। क्या तुम मेरा यह उपकार कर दोगे?"

इन्द्र सहज ही राजी हो गया। घर लौटने पर बातों के सिलसिले में सरयू ने कहा, 'अच्छा, इस हफ्ते में अनीता एक बार भी यहां क्यों नहीं आई, कहो तो?"

इन्द्र बोला, "यह तो मैं नहीं जानता हूं।"

सरयू०। कहीं बीमार तो नहीं है?

इन्द्र०। नहीं, कल ही तो उसके साथ मैंने टेनिस खेला है।

सरयू०। (हंस कर) अच्छा! तब तो तुम्हारे साथ मुला-

बात होती रहती है !! अच्छा तो बताओ, आज भी उसकी तरफ जाओगे ?

न जाने क्यों इस सीधी सी बात को स्वीकार करने में इन्द्रनाथ हिचकिचाने सा लगा। कुछ सोच कर उसने कहा, "शायद जाऊं !"

सरयू०। यदि जाओ तो उसे कल चाय पीने के लिये बुलाते आना।

इन्द्र०। क्यों ?

सरयू०। क्यों ! इस लिये कि सात दिन तक उसके साथ मेरी भेंट नहीं हुई है, इसी लिये।

इन्द्र अपने कर्त्तव्य का विचार कर पर फिर भी सम्पूर्ण अनिच्छा से बोला, "तब आज तुम भी मेरे साथ ही क्यों नहीं चलती हो ? अपना निमंत्रण आप ही दे देना !"

मगर सरयू इसके लिये राजी न हुई। आखिर उसके बहुत आग्रह से मानों इन्द्र निमन्त्रण कर देने के लिये राजी हुआ। सरयू ने उसके हाथ में एक सील मोहर किया हुआ लिफाफा देकर कहा, "इसे अनीता को दे देना, खबरदार तुम खोल कर मत देखना।"

इन्द्र ने आश्चर्य से पूछा, "इसमें क्या है ?"

सरयू ने व्यग्र हो कर कहा, "जो कुछ भी हो, तुम मत देखना, सच ही न देखना !"

इन्द्र "हां, नहीं" कहते कहते बाहर निकल कर ट्राम पर

चढ़ गया। वहां वहुत देर तक उस लिफाफे को हाथ में लेके देखता रहा, पर अंत उससे रहा न गया। सील मोहर तोड़ उसने लिफाफे को खोला। अंदर से जो कुछ निकला उसको देखकर उसके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा। उसमें सरयू की लिखी हुई कई अंगरेजी रचनाओं के अनुवाद प्रवन्ध गल्प इत्यादि थे। इन्द्र ने वहुत आश्चर्य के साथ देखा कि सरयू ने इन कुछ ही दिनों में ही अंगरेज़ी में वहुत कुछ ज्ञान अर्जन कर लिया है। उसने समझ लिया कि अनीता अब तक गुप्त रूप से सरयू को सिखला रही थी और सरयू अपनी कापी संशोधन के लिये अनीता के पास भेज रही है।

अनीता के इस निःस्वार्थ ऐकान्तिक हितैषिता की वात को सोच कर इन्द्र का अन्तःकरण आनन्द से पूर्ण हो गया। इन्द्र के मङ्गल के लिये, उसकी तृप्ति के लिये, प्रकाश्य भाव से और गुप्त भाव से, इस असामान्या नारी ने जो निपुण अध्यवसाय दिखलाया है उससे इन्द्रनाथ का हृदय उसकी ओर और भी खिंच गया।

परन्तु इन्द्रनाथ ने यह भी देखा कि यही वात सरयू की परिपूर्ण पतिप्राणता भी प्रगट कर रही है। सरयू को जब यह स्पष्ट मालूम हो गया कि उसके स्वामी अपनी जिस प्रकार की संगिनी चाहते हैं सो वह नहीं वन सकी है, तो उसने सम्पूर्ण नूतन उत्साह से लिखना पढ़ना शुरू किया है। और वास्तव में वात यही थी भी। सरयू ने एक दिन अनीता से गुप्त रूप से कहा था,

"बहन, जैसे बन सके तुम मुझे अंगरेजी पढ़ा लिखा कर शिक्षिता बना डालो।" और अनीता ने भी आनन्द के साथ इस भार को ग्रहण किया था। दो महीने में ही सरयू यहां तक अग्रसर हो गई थी कि उसे देख अनीता को बहुत आश्चर्य हुआ।

उसने केवल यही नहीं किया था। जिस दिन उसको यह पता लगा कि अपने इस दोष के कारण ही वह अपने पति की श्रद्धा और प्रेम को खो बैठी है, उसी दिन से उसका प्राण स्वामी के प्रति समवेदना से व्यथित हो उठा। क्या करने से इसका प्रतिकार हो सकता है यही वह तब से निरंतर सोचा करती थी।

कई बार उसने यहां तक सोच डाला कि यदि वह इस समय मर जाय तो उसके स्वामी अनीता से विवाह कर योग्य पत्नी पा अवश्य ही सुखी हो सकते हैं। उसके स्वामी जो अनीता से प्रेम करते हैं, इसमें उसे बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं रह गया था। उसके मरने से इन्द्रनाथ को कुछ दिन तक कष्ट होगा सच है परन्तु अनीता को पाकर वह शोक बहुत दिन तक स्थायी नहीं रहेगा यह भी वह समझती थी, परन्तु साथ ही वह यह भी सोचती थी कि "अनीता भी क्या इन्द्र से प्रेम करती है?" बहुत दिन तक लक्ष्य कर सरयू को इस प्रश्न का उत्तर भी मालूम हो गया। वह जान गई कि अनीता भी इन्द्र से प्रेम करती है। तब वह क्यों न मर जाय और इन दोनों प्राणियों को सुखी कर दे?

गंभीरता से वह यह बात अकसर सोचा करती थी। आखिर उसने स्थिर किया कि कपड़े में केरासिन तेल डाल, आग लगा कर, सम्पूर्ण आधुनिक उपाय से मरना ही ठीक है। इस सम्बन्ध में वह सुयोग भी ढूंढ़ने लगी। परन्तु अचानक एक दिन अखबार में पढ़कर उसे मालूम हुआ कि वह यदि आत्महत्या करे तो उसके स्वामी को बहुत बड़ा कलङ्क लगेगा और तब शायद अनीता के साथ उसका विवाह होना भी असम्भव हो जायगा। यह भी संभव है कि बाद में कोई बात प्रगट हो जाय और लोग कहें कि अनीता से विवाह करने के अभिप्राय से ही उसके पति ने सरयू का खून किया है। तब वह आत्महत्या कर क्या स्वामी के सिर पर ऐसा भारी कलङ्क चढ़ा जायगी? नहीं, यह असम्भव है। बहुत सोच विचार कर यह विचार भी उसने त्याग दिया और तब से नित्य वह भगवान के पास मृत्यु कामना करती हुई जितने दिन जीवित रहे उतने दिन अनीता की ही छाया में बैठ कर जहां तक सम्भव हो अनीता के समान ही अपने को बनाने की चेष्टा करने लगी। उसी चेष्टा का फल ही यह उन्नति थी। पर अवश्य ही इन्द्रनाथ को उसके मन के हाल चाल की कुछ भी खबर न थी।

सोलहवां परिच्छेद

इन्द्र ने कहा, "अनीता, तुम विवाह कब करोगी ?"

कुछ देर ठहर कर अनीता बोली, "शायद विवाह मेरे भाग्य में नहीं है।"

इन्द्र०। क्यों ?

अनीता०। मेरे मन के योग्य वर कहीं दिखाई नहीं देता !

इन्द्र०। क्यों, टाम तो योग्य पात्र है—और वह तुमसे बहुत प्रेम भी करता है।

अनीता के मुंह से जो तीव्र वेदना प्रगट होने लगी इन्द्र उसे लक्ष्य न कर सका। कुछ देर तक नीरव रहने के बाद अनीता बोली, "मैं आपसे एक बार कह चुकी हूँ कि मैं स्त्री हूं, भारत की स्त्री हूँ। स्वामी के रूप में मैं जिसे देखना चाहती हूँ, उसे अपने से बहुत उच्च आसन में भी देखना चाहती हूँ। पति रूप में मुझे किसी ऐसे पुरुष का प्रयोजन है जिस पर

निर्भर हो कर रह सकूं, जिसकी भक्ति कर सकूं। टाम उत्तम मित्र हो सकता है, पर स्वामी रूप से उस पर मैं श्रद्धा नहीं कर सकती हूं।"

इन्द्र०। यह तो तुम्हारा अन्याय है। प्रथमतः, तुम्हारी यही बात ठीक नहीं है कि स्वामी बड़ा या श्रेष्ठ हो तभी नारी तृप्त हो सकती है। उस प्रकार का मिलन, जिसमें एक ओर आधिपत्य है और दूसरी ओर आत्मसमर्पण, इससे जो सुख अधिक नहीं मिलता है इसका उदाहरण तो तुम दूर नहीं मेरे ही जीवन में पा सकती हो। टाम तुमसे पागल के ऐसा प्रेम करता है। इतने दिनों तक अपेक्षा करने के बाद यदि तुम उससे विवाह करना अस्वीकार करोगी—तो उस बेचारे का दिल टूट जायगा। तुम क्या इतनी निष्ठुर बनोगी अनीता? उस पर कुछ भी दया न करोगी?

अनीता का हृदय कांप उठा, आखें सजल हो गईं, नाक कुछ फूल आया। वह पीड़ित पर नीरव दृष्टि से ज़मीन की ओर ताकने लगी। उसकी आंखों से अश्रु टपकने लगे।

इन्द्रनाथ ने उत्तर की प्रतीक्षा में उसके मुंह की ओर देखा, परन्तु घने अन्धकार में अनीता के मुंह की यह विकृत दशा उसे दृष्टिगोचर न हुई।

कुछ देर बाद उसने फिर कहा, "तब क्या मैं लिण्डले से कहूं कि तुम सोचने के लिये समय चाहती हो?"

अनीता गम्भीर पर क्लिष्ट कण्ठ से बोली "नहीं।" इन्द्र-

नाथ ने प्रश्न किया, "तब क्या उससे कहूँ कि वह आशा करता रहे?"

अनीता केवल बोली "यह भी नहीं।"

इन्द्र ने गम्भीर हो कर कहा, "अनीता, मैं तुम्हारा मतलब समझ नहीं पाता। टाम को किस बात में तुम अयोग्य पाती हो? वह अंगरेज है यह सच है, पर इतने दिनों तक उसके साथ मित्रता रखने बाद, इतनी प्रतीक्षा कराने के बाद, भी क्या तुम नहीं समझती हो कि उसके प्रेम ने उसकी जातीयता से निकल कर तुम्हारे पद्प्रान्त में आश्रय लिया है? क्या तुम नहीं जानती हो कि वह तुमसे कितना प्रेम करता है?"

एक सूखी हंसी हंस कर अनीता बोली, "केवल प्रेम करने ही से क्या प्रेम की वस्तु प्राप्त की जा सकती है! मैं तो देखती हूं कि मैं तो जिससे जितना ही प्रेम करती हूं उतना ही वह स्नेहास्पद दुर्ल्लभ होता जाता है।"

उसके आंसुओं ने अब सब बन्धनों को तोड़ डाला। वह आत्मसंवरण न कर सकी, इसलिये भाग कर वहां से चली गई। बहुत देर तक रो चुकने बाद कुछ शान्त होने पर वह हाथ मुंह धोकर पुनः बाहर आई।

अनीता का यह हाल देख इन्द्रनाथ को बहुत आश्चर्य्य हुआ। अब उसे स्पष्ट मालूम हुआ कि उसने अनजाने ही अनीता के कोमल अन्तर को कठिन आघात पहुंचाया है। अनीता के आंसू उसके वक्ष में कांटों के समान चुभने लगे।

यह दांत में उंगली दाब कर द्रुतगति से टहल रहा था, अनीता के आते ही उसके पास पहुँच गम्भीर होकर बोला, "अनीता, मुझे क्षमा करो!"

उसके मुंह से इस बात को सुन न जाने क्यों अनीता चौंक उठी। एक क्षण के लिये उसका मुंह पीला पड़ गया। पर इन्द्र-नाथ इसको लक्ष न कर बोला, "मैंने न जान कर तुम्हें कष्ट दिया है, मुझे क्षमा करो।"

अनीता व्याकुल हो इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर बोली, "क्षमा? क्षमा कैसी? मैं तुम्हें क्षमा करूं! मुझमें इतनी योग्यता कहां है? तुम मुझसे कहते हो, तुम!!" भावावेग में उसने अपना दूसरा हाथ इन्द्रनाथ के वक्ष पर रख दिया।

इन्द्रनाथ उसके कर-स्पर्श से कांप उठा, अनीता ने भी ज्ञान खो दिया। दोनों के अङ्गप्रत्यंग में एक भीषण कम्पन होने लगा। अनीता एक अद्भुत मादकता से मतवाली होकर इन्द्र-नाथ का मुह देखने लगी।

बहुत देर तक वे परस्पर को देखते रहे। उनकी आंखों ने उनके मत्त मन की सब गुप्त बातें प्रकाश कर दीं। अनीता के हृदय का तरङ्गित प्रेम-सागर इन्द्र के नेत्रों के सामने नृत्य करने लगा। अनीता भी इन्द्रनाथ के प्रेम की ताण्डव-लीला देखने लगी। इतने दिनों तक दोनों के बीच में जो एक परदा पड़ा हुआ था, वह एक दम हट गया।

इन्द्रनाथ के प्राण के भीतर एक प्रचण्ड आंधी बह गई।

भूत भविष्यत् वर्त्तमान सब टूट कर चूर चूर हो गये। विचार विवेचना का अवसर न रहा, और न ध्यान ही। उस मधुर सन्ध्या के स्निग्ध अन्धकार में वे दोनों ही प्राणी दो संगीशून्य आत्मा के समान एक हो गये। उनके लिये विश्व-संसार में मानों और कोई भी नहीं रह गया।

जब इन्द्रनाथ को फिर ज्ञान लाभ हुआ उस समय अनीता का सुगठित शरीर उसके वक्ष के पास आ पहुंचा था और उसने इन्द्र के हाथ को अपने वक्षस्थल में ज़ोर से दबा रखा था। उस हाथ के द्वारा अनीता के हृदय का मत्त नर्त्तन इन्द्र के हृदय तक जा रहा था।

घर के भीतर बिजली की बत्ती जल रही थी, उसकी एक क्षुद्र किरण आकर अनीता के उद्वेलित वक्ष पर अग्नि की ज्वाला की भांति चमक रही थी और उसके उत्तेजित मुग्ध चक्षुओं पर छाई हुई मादकता को स्पष्ट कर रही थी। पर, इसके अतिरिक्त, वहां सब कुछ अन्धकार था।

ज्ञान लाभ कर इन्द्र कुछ हट कर खड़ा हुआ। धीरे धीरे उसने उस लता के समान कोमल देह को अपने वक्ष से अलग कर दिया, परंतु अनीता के हाथ के कठिन-मधुर बन्धन से वह अपने हाथ को नहीं छुड़ा सका। आखिर एक कुर्सी को पकड़ कर कुछ दूर हट कर खड़े हो के उसने कम्पित कण्ठ से पुकारा—"अनीता!"

अनीता अपने दोनों हाथों से इन्द्र के हाथ को उठा अपने

मुंह पर रख रो पड़ी। इन्द्रनाथ का समूचा देह कांपने लगा। वह कांपते कांपते ही बोला, "अनीता, तुम शान्त हो जाओ, मैं जाता हूं।"

अनीता ने आंखें पोंछ कर शान्त कण्ठ से कहा, "अभी न जाओ, कुछ और ठहरो। हम लोगों का आज ही शेष मिलन है। अब मैं तुम्हारे पथ के सामने फिर कभी न आऊंगी। जिस बात को कभी भी प्रकाश न करूंगी यह सोचा था आज वही बात प्रकाश हो गई। आज मैंने स्वयं अपने समस्त सुख सौभाग्य को चूर कर डाला। अब आगे तुम्हें देख न सकूंगी, पर आज के लिये कुछ देर और ठहरो।"

इन्द्रनाथ कुछ देर तक खड़ा रहा, तब एक कुर्सी पर बैठ गया। बड़ी कठिनता से अपने को सम्हाल कुछ देर बाद अनीता बोली, "जब वह बात प्रगट हो ही गई तो क्यों न उसे और साफ साफ कह दूं। इतने दिनों तक मैं बराबर किस मूर्त्ति का एकान्त में ध्यान करती आई हूं जानते हो? विलायत में बरसों रह कर भी कभी किसी दिन मैं किसी पुरुष को देख कर मुग्ध नहीं हुई सो क्यों जानते हो? इसी लिये कि तुम्हारी महान मूर्त्ति ने मेरी आंखों के सामने खड़ी रह कर सारे जगत को अलग कर रक्खा था। वहां से लौट आकर जिस दिन तुम्हें फिर देखा, उसी दिन से मैं चिन्तन में, स्वप्न में, जागृत में, सदा किसको देखती रही हूं जानते हो? केवल तुम्हीं को। तुम्हारे समान श्रेष्ठ पुरुष कोई और न देख सकी इसी लिये

मैं विवाह भी अब तक न कर सकी। मैं तुमसे और कुछ भी नहीं चाहती थी, केवल तुम्हें देखना चाहती थी, तुम्हारे पास रहना चाहती थी, तुम्हारी सेवा करना चाहती थी। इसी लिये कि तुम दूसरे के थे, बहिन यमुना के थे, मैं तुम्हें अपना न सकती थी, पर आज इस प्रकार मेरे सामने आकर तुमने मेरे उस सुख को भी चूर कर दिया। खैर, भगवान की यही इच्छा होगी, अस्तु यही हुआ। अब कल से मैं तुम्हारी दृष्टि से अलग – बहुत दूर – चली जाऊंगी। कहीं किसी दूर देश में जाकर मैं दिन बिताऊंगी। परन्तु मेरी यह तुमसे पहिली और अंतिम प्रार्थना है कि उस दूर देश में भी अपना एकान्त दुःखमय जीवन व्यतीत करने के लिये तुम मुझे कोई आधार दोगे या नहीं? एक बार, केवल एक बार, तुम मुझसे कह दो कि तुम भी मुझसे प्रेम करते हो!"

इन्द्र चौंक उठा, वह अपना विश्वास न कर सका। खड़े होकर उसने बहुत कष्ट से कहा, "अनीता! वह बात तुम मुझसे मत कहलाओ!"

वह जाने लिये तैयार हो गया, पर मूर्तिमती क्षुधिता वासना के समान अनीता अचानक उसके सामने आ खड़ी हुई। इन्द्र के हाथ को जोर से पकड़ कर उसने कहा, "तुम और इतने निष्ठुर बन गये! मेरे इस हृदय को मरुभूमि बना कर भी तुम्हें एक बिन्दु दया न आई! मेरे जीवन को एक सामान्य आधार भी तुम न दे सके! ओः मैं क्या करूं, क्या करूं!"

इन्द्र के हाथ को अपने मुंह के पास ले जाकर अचानक उसने दो वार बहुत ही आवेग के साथ उसे चूम लिया, तब उसे अपने वक्ष पर दाब कर वह अपने को और रोक न सकने के कारण इन्द्रनाथ की ओर ढुलक पड़ी।

"इन्द्रनाथ!" वज्र के समान अमल का शब्द पास ही से आया। इन्द्रनाथ और अनीता दोनों सिर से पैर तक कांप उठे।

अमल ने इन दोनों निराश प्रेमियों की बातों को कुछ भी नहीं सुना था। पीछे के दरवाज़े से अचानक इस वाराण्डे में आते ही उसने एक चुम्बन का शब्द सुना, और तब देखा कि अनीता के वक्ष पर इन्द्र का हाथ रक्खा हुआ है। उसके समस्त शरीर से एक तीव्र विद्युत् प्रवाह बह गया, उसने क्रोध से जल कर पुकारा, "इन्द्रनाथ!"

"मेरे साथ चलो!!" कह कर अमल ने इन्द्र का हाथ पकड़ लिया और वहां से हटा ले चला। कहां जायगा, क्या करेगा, क्या पूछेगा, यह उसने कुछ सोचा न था, क्रोध ने उसे विक्षिप्त बना दिया था, पर दर्वाजे के पास आकर वह अचानक खड़ा हो गया। उसने कुछ कहना चाहा पर कह न सका। इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर उसे धक्का देकर दर्वाजे से बाहर निकालता हुआ वह बोला, "विश्वासघाती! सुवर कहीं का! निकल, जा मेरे मकान से! अगर फिर कभी मैंने तुझे यहां देखा तो कुत्ते की मौत मार डालूंगा!!"

इन्द्रनाथ का समूचा वदन कांपने लगा, फिर भी अपने को बहुत संभाल कर वह बोला, "मेरी एक बात भी क्या न सुनोगे!"

सिंह के समान गरज कर अमल ने कहा, "फिर बोल रहा है!" उसके बाद फिर, मानों अपने क्रोध पर आपही लज्जित हो वह बोला, "अच्छा कहो, क्या कहते हो?" इन्द्रनाथ ने तब तक सोच कर देखा कि वह क्या सर्वनाश करने चला है—कौन सी बात वह अमल से कहेगा? क्या कहेगा कि सब दोष अनीता का है! उसने सिर्फ कहा, "नहीं, कोई बात नहीं है।" और तब मुंह फिरा कर चला गया। मगर उसका दिल टूट गया। उसे इस समय कैसा कुछ अनुभव हुआ इसे वह स्वयं ही समझ न सका।

अनीता भी कम्पित पदों से, शङ्कित हृदय से, इनके पीछे पीछे फाटक तक आ गई थी। इन्द्र की शेष बात को वह सुन सकी थी पर उसको सुन उसका दिल और भी टूट गया। वह अपने मनोवेग को रोक न सकी। उसने चिल्ला कर कहा, "नहीं नहीं, बहुत सी बातें हैं, तुम कहो, बोल जाओ, कह जाओ! मेरे लिये तुम इतने बड़े कलङ्क का बोझ अपने पर लिए हुए ही यहां से मत चले जाओ इन्द्रनाथ!!"

अनीता का कण्ठस्वर सुन इन्द्रनाथ दौड़ कर वहां से भाग गया—मगर अमल ने क्रोध से अन्ध होकर तिरस्कार के स्वर से पुकारा, "अनीता!"

सत्रहवां परिच्छेद

मनोरमा ने कालेज छोड़ दिया था। अब उसे पढ़ने की कोई इच्छा न रह गई थी। हां वह अपने भाई से उपनिषद् गीता और दर्शन जरूर पढ़ने लगी। पर उसे इन्द्र से उपनिषद् तथा गीता की जो व्याख्या मिली, उससे उसके जप तप पूजा अर्चना आदि में और भी गड़बड़ी पड गई। धीरे धीरे शिव-पूजा, माला-जप, प्रभृति सभी अनुष्ठानों पर से उसका वि-श्वास हटने लगा। उपनिषदों में जिस परब्रह्म का वर्णन उसे मिला था समय समय ध्यानस्थ हो कर आत्मा के उसी स्व-रूप को अनुभव करने की वह चेष्टा करने लगी। गायत्री मन्त्र के द्वारा भूमा की 'अणयोरणीयान् महतो महीयान्' मूर्त्ति को आयत्त करने की चेष्टा करते करते धीरे धीरे उसे उसी में आनंद मिलने लगा। अब वह और कोई भी साधना न करती थी।

उसने अपने जीवन को सम्पूर्ण रूप से और निःशेष रूप

से सत्यनिष्ठ करने का संकल्प कर लिया। सब बातों में और सब आचारों में असत्य को त्याग करने की वह निरंतर चेष्टा करने लगी। मन के ढेर के ढेर छोटे बड़े असत्यों की आवर्जना को उसने दूर भगा दिया।

ऐसा करते हुए उसने अपने मन के गुप्त कोने में एक ऐसे सत्य का आविष्कार किया जिसने उसके प्राण में बहुत बड़ी चोट मारी। वह सत्य कितना भयंकर था, कैसा निर्मम था! उसने अनुभव किया कि वाह्यिक आचार विचार की दृष्टि से वह चाहे कितनी ही निष्ठावती क्यों न हो, पर अपने अन्तर से वह विधवा नहीं है। वह अपने स्वामी के फोटो की पूजा कितना ही मन लगा कर क्यों न करे, पर स्वामी के लिये नारी में जो व्याकुलता होनी चाहिये वह उससे एक दम दूर हो गई है। उसके स्वामी की स्मृति अब एक सुदूर अतीत के अर्द्ध-विस्मृत स्वप्न के समान ही रह गई है। इसके अतिरिक्त—और यही उसके लिये और भी भय की बात है—उसका हृदय विधवा का ऊसर अन्तर नहीं रह गया है। अन्तःसलिला फल्गू के समान उसमें रस की धारा प्रवाहित हो रही है। उसका समस्त यौवन तृप्ति की व्याकुल आकांक्षा से मत्त हो रहा है।

यह कैसी सर्व्वनाश की बात है! अब तक वह इस बात को अपने मन में पाकर भी दूर करती आई थी, परन्तु आज, सम्पूर्ण सत्यनिष्ठ हो कर, अब वह और अधिक आत्मप्रवञ्चना न कर सकी। इस सत्य को उसे स्वीकार करना ही पड़ा।

परन्तु इस सत्य को स्वीकार करने का अर्थ तो था इसको अपने पर जयी होने देना—प्रवृत्ति के पास आत्म समर्पण करना—और ऐसा वह किस तरह कर सकती थी? अतः उसने स्थिर कर लिया कि वह इस दुर्बलता को जय करेगी, इन्द्रिय-निग्रह और इन्द्रिय-दमन के द्वारा वह इस प्रवृत्ति पर जय लाभ करेगी। तौ भी उसके इस व्यवहार में असत्य का जितना अंश था, उसका उसने त्याग कर दिया। अपने स्वामी के फोटो को उसने चौकी पर से उठा कर, ढांप कर, रख दिया। पर उसके बाद? उसके बाद, कुछ सोच कर उसे जिस घर में लड़के लोग पढ़ते थे वहीं ले जा कर टांग दिया। उसका नित्य पूजन करना त्याग दिया। परन्तु वह और भी कठोर ब्रह्मचर्य पालन करने लगी। ब्लाउस, पेटिकोट इत्यादि को उसने त्याग दिया, कठिन भूमि पर विना बिस्तर के सोकर रात बिताने लगी। इस प्रकार अपने शरीर को सब सुख से वञ्चित कर क्रमशः सुख की कामना को भी नष्ट कर देने की वह चेष्टा करने लगी।

अपनी ननद की इन सब बातों को देख कर सरयू स्तंभित भीत और चकित हो गई। घर में शिवलिंग अपूजित अवस्था में पड़ा रहे, यह तो बहुत ही अनिष्टकर हो सकता है! मनोरमा क्यों ऐसी हो गई है, इसे सोच सोच वह बहुत ही अस्थिर हो गई। उसने मनोरमा के साथ तर्क वितर्क भी किया, परन्तु किसी तरह भी उसे सुधरता न देख कर उसे और भी भय

हुआ। वह छिप छिप कर प्रत्यह शिवलिंग पर दो बेलपत्र और थोड़ा गंगाजल चढ़ा दिया करती थी। अब बहुत कह सुन कर उसने शिवलिंग को पड़ोस की एक ब्राह्मणी के पास भेज दिया, तभी वह निश्चिन्त हो सकी।

शिवपूजा के साथ ही साथ मनोरमा ने जो स्वामी की चित्रपूजा को भी त्याग कर दिया था यह देख कर सरयू और भी भयभीत हुई थी। उसने एक दिन अपने स्वामी से कहा, "मनोरमा बहन की अवस्था देख कर मुझे बहुत भय हो रहा है।"

इन्द्र ने पूछा, "क्यों?"

उसके विगत परिवर्तन की बात को प्रकाश कर सरयू ने कहा, "मुझे भय हो रहा रहा है—शायद—" अपनी बात पूरी न कह कर वह नीचे की ओर देखने लगी। मनोरमा के भाई के सामने उसे मनोरमा के विषय में यह बात कहते बड़ा ही सङ्कोच बोध हुआ।

आखिर इन्द्र ने पूछा, "शायद क्या? कुछ कहो भी तो!!"

सरयू ने मुंह फेर कर उत्तर दिया—"शायद उन्हें फिर विवाह करने की इच्छा हुई है।"

इन्द्र चौंक उठा। न मालूम क्यों, उसे यह बात अच्छी नहीं लगी। पर फिर सोच कर देखा, इस बात में ऐसा दोष ही क्या है? विधवा का आदर्श उसके समझ में बहुत ही उच्च आदर्श था, और इसके लिये अब तक वह मनोरमा को बहुत

ही उच्च दृष्टि से देखता आया था। अब यह सुन कि मनोरमा उस उच्च आदर्श का पालन करने में असमर्थ हो रही है इन्द्र की दृष्टि में उसका महत्व कुछ नीचा हो गया पर फिर भी वह इसके लिये मनोरमा को दोषी नहीं ठहरा सका क्योंकि उसे तुरत ही यह ख्याल हुआ कि यदि ब्रह्मचर्य अप्राप्य ही हो तो उस मिथ्या कृत्रिम आवरण को रखने से ही क्या लाभ? यदि मनोरमा की विवाह करने ही की इच्छा हुई है, तब उसका विवाह कर देना ही सर्व श्रेष्ठ है यही उसने स्थिर किया।

परन्तु भोलीभाली सरयू को स्वामी के हृदय की इन चिन्ताओं का सन्धान न मिला। उसने कहा, "मैं तो कहती हूं कि जब उनका लिखना पढ़ना समाप्त हो ही गया है, तो उनको क्यों न घर भेज दो।"

इन्द्र को यह सलाह अच्छी नहीं लगी। उसने कहा, "अच्छा एक बार उसके साथ यह बात उठा कर देखो न सही?"

"तुम क्या कह रहे हो? सर्वनाश! ऐसी बात मैं उनसे कहूं! ऐसा नाम भी मत लो!!"

"क्यों? ऐसा करने में क्या हानि है?"

"पहिले तो, संभव है, उनके मन में ऐसा भाव उठा ही न हो, इसके सिवा, यदि सचमुच ही मन में ऐसी भावना हुई भी हो, तो शायद वह लज्जा से उस बात को छिपा कर रक्खें, उस पर से यदि उन्हें मालूम हो गया कि उनकी गुप्त इच्छा प्रकाश हो गई है, तब फिर क्या होगा? तब तो और कोई

लज्जा-शर्म्म की बाधा न रहेगी। स्त्रियों का मन बहुत नाज़ुक होता है—"

सरयू की बात सुन इन्द्र हंसने लगा।

उसी दिन संध्या के समय मनोरमा को अपने पढ़ने के घर में आता देख मौका पा उसने पूछा, "मनो, तूने अपने स्वामी के चित्र का पूजन क्यों बंद कर दिया?"

मनोरमा का हृदय कांप उठा। यकायक सच बात प्रकाश कर देने में उसे बहुत सङ्कोच मालूम हुआ, पर हृदय के समस्त बल को संग्रह कर उसने अपने सङ्कोच को जय किया और कहा, "भैया, वह पूजन तो मिथ्या है!"

इस सीधे साधे नग्न सत्य का इन्द्र पर बहुत प्रभाव हुआ। इसके बाद उसे क्या कहना चाहिये यह वह बहुत सोच कर भी ठीक न कर सका। अन्त में उसने कहा, "अच्छा, मनो, मैं तुझसे एक बात पूछूं? तेरी क्या कभी विवाह करने की इच्छा होती है?"

यकायक मनोरमा का मुंह लाल हो गया। सत्य की खोज में जा कर उसके उस साधारण कार्य का ऐसा तात्पर्य लगाया जायगा ऐसा अब तक उसके ध्यान में भी आया न था। अतः वह कुछ चमक कर बोली, "भैया, नहीं!!"

"मनो, देख तू झूठी लज्जा के फेर में मत पड़। मैं तेरे मन की बात जानना चाहता हूं। यदि तुझे विवाह करने की इच्छा हो तो स्पष्ट कह, मैं तेरा विवाह कर दूं।"

मनोरमा ने जोर दे कर कहा, "कभी नहीं,—मैं कदापि विवाह न करूंगी।"

इन्द्रनाथ कुछ ठीक समझ न सका कि मनोरमा के मन में क्या है, परन्तु फिर उसने मनोरमा से विवाह के लिये नहीं कहा।

अब मनोरमा और भी कठोर ब्रह्मचर्य पालन करने लगी। केवल अपने पुत्र और भाई की पुत्रियों को लेकर आमोद आह्लाद करने के सिवाय उसने अपने को संसार के सभी सुख सम्भोग से वञ्चित कर दिया। अनीता से अब उसकी कभी मुलाकात नहीं होती है। अमल के आने पर वह छत पर से हो कर बगल वाले मकान में चली जाती है।

अट्ठारवां परिच्छेद

मोटर पर चढ़ कर अनीता को इन्द्रनाथ के घर जाने की इच्छा हुई। भाई के व्यवहार पर क्रोध से अन्ध हो उसने यही संकल्प किया था। परंतु कुछ दूर जा कर उसे खयाल हुआ कि ऐसा करना उसके लिये एक दम असम्भव है। मगर घर लौटने का पथ भी तो बन्द है। तब वह कहां जाय? उसके

सब दुःख, सब वेदना, को घेर कर यह कठिन प्रश्न उसके मन में आ गया।

सन्ध्या की समस्त घटनाओं ने उसके मन के भीतर एक प्रबल आंधी बहा दी थी। अपने असंयत हृदय की नग्नता के द्वारा उसने क्या सर्व्वनाश कर डाला है! इतने दिन तक उसने जिस वेदना को अपने में छिपा कर रख छोड़ा था आज उसी ने उसको इस तरह कैसे अधीर कर दिया? बहुत परिश्रम के द्वारा उसने अपने मन में जो धैर्य्य का किला उठाया था वह एक क्षण में ही इस प्रकार गिर क्यों गया? और इसका फल क्या हुआ? इस जगत में वह केवल दो ही मनुष्यों से प्रेम करती थी, अपने भाई से, या इन्द्रनाथ से। जिनके सुख के लिये वह सब कुछ विसर्जन कर सकती थी आज उसने उन्हीं के हृदयों में विष की छुरी कैसे मार दी? और उसने सब से अधिक सर्व्वनाश उसी का किया है जिसके एक बिन्दु सुख के लिये वह अपने हृत्पिण्ड को काट कर दे सकती थी! इन्द्रनाथ—निर्दोष, निष्पाप, देवचरित्र इन्द्रनाथ—आज अमोदा के दोष से अपने जीवन से भी हज़ार गुण मूल्यवान जो सम्मान है, उसी को खो कर बैठा है। इसकी करनी से आज वह निष्कलंक सुचरित्र पुरुष इतना बड़ा कुत्सित कलङ्क अपने ऊपर ले कर चला गया! यह उसने क्या कर डाला!!

इसके बाद उसे अपनी बात याद आई। अब उसका क्या होगा? उसने तो अपने जीवन को ही आज विसर्जन कर दिया है।

यश मान चरित्र गौरव जिनको ले कर नारी का जीवन है, उस सभी को तो वह आज त्याग कर आई है। अब वह क्या लेकर जीवित रहेगी? जिनको पा कर वह संसार में बंधी हुई थी, उन्हीं को तो वह जन्म भर के लिये छोड़ कर निकल आई है। अब उसे इन्द्रनाथ के पास जाने का उपाय नहीं रह गया है, अमल के पास भी वह नहीं जा सकती। तब वह कहां जाय? किसको ले कर जीवित रहे? उद्देश्यहीन निरवलम्ब कलङ्कित जीवन को ले कर वह अब क्या करे?

मोटर आमहर्स्ट स्ट्रीट तक पहुँची थी जब नवविधान के उत्सव के उपलक्ष में एक संकीर्तन का बड़ा दल निकट आ पहुँचा। अनीता को उनका गाना बहुत मधुर मालूम हुआ। उसने ड्राइवर को धीरे धीरे गाडी संकीर्त्तन के दल के ही पीछे पीछे ले चलने के लिये कहा। वे लोग गा रहे थे,—

"मेरा जो कुछ भी अपना था
उसको भगवान तुम छीन लियो।

उजाड़ कर घर द्वार सभी प्रभु
बाहर है हमको तो कियो।

प्रभु बाहर है......

नीलाकाश के चन्द्रातप में,
सूर्य्य ताप में, दखिन पवन में,

अब नृत्य पूर्ण इस धरती तल में,

तुमने ही तो छोड़ दियो।

प्रभु तुमने......

नव प्रेम सुधा की धारा से मस,

शून्य हृदय हो पूर्ण सुधा सम,

सुख सागर में जीवित हों हम,

प्रभु भगवत प्रेम का दान दियो।

प्रभु भगवत प्रेम का दान दियो।

इस अवसर के इस गान ने अनीता के हृदय की एक खिंची हुई तन्त्री में आघात किया। उसके कम्पन से उसका समस्त हृदय कांपने लगा। धीरे धीरे वह इतना तन्मय हो गई कि उन्हीं लोगों के साथ साथ मृदु स्वर में स्वयम् भी गाने लगी। कीर्तन वाले लोगों ने एक बार मोटर की ओर देखा। गद्गद् चित्त से, अश्रु पूर्ण नयनों से, वह गा रही थी—

"सुख सागर में जीवित हों हम,

प्रभु भगवत प्रेम का दान दियो।"

उसके भाव की अभिव्यक्ति से वे भी उत्तेजित हो कर नाच नाच कर गाने लगे—

"सुख सागर में जीवित हों हम,

प्रभु भगवत प्रेम का दान दियो।"

महा मन्दिर के पास पहुँच कर जब कीर्तन के दल ने मन्दिर

में प्रवेश किया, तो अनीता भी मोटर से उतर उसके साथ साथ ही मन्दिर में चली गई। उसने सोचा कुछ समय तक इन लोगों के साथ रहने से चित्त को शान्ति मिलेगी।

उस दिन आचार्य्य सुकुमार बाबू उपासना कराने वाले थे। सुकुमार बाबू एक सौम्यमूर्त्ति पुरुष थे। उनकी आयु पचास वर्ष से अधिक थी। उनकी दोनों आंखें मानो एक स्निग्ध शान्त आलोक से उद्भासित थीं, मुख उज्ज्वल था, ओष्ठाधर में हंसी लगी ही रहती थी। साधारण धर्म्मप्रचारकगण जैसे सदा एक अपार गांभीर्य्य का अवलम्बन किये रहते हैं सुकुमार बाबू में वैसा कुछ नहीं था। वे रहस्यप्रिय लघुभाषी और कुछ चञ्चल भी थे। परन्तु वेदी पर आरोहण करने पर उसी चञ्चलता से मानो आग की चिनगारियां निकलने लगती थीं। उस समय उनकी प्रत्येक बात आंखों के सामने जीवन्त हो कर प्रकाशित हो जाती थी। वे जब पाप के बारे में कहते थे, तो सुनने वालों की आंखों के सामने वह कदर्य्य घृणापूर्ण चित्र खिंच जाता था। वे जब भगवान के बारे में कहते थे तो लोगों को मालूम होता था मानों वे चारों ओर भगवान का पुण्यस्पर्श अनुभव कर रहे हैं।

अनीता एक श्रेष्ठ गायिका के नाम से कलकत्ते भर के भद्र समाज में परिचित थी। आज उसे इस प्रार्थना मन्दिर में उपस्थित देख लोगों ने उसको भी कोई भजन गाने के लिये कहा। लोगों के अत्यंत आग्रह से उसने एक भजन गा कर सुनाया।

हृदय के समस्त आवेग को प्रकाश कर अपने विश्व विमोहन कण्ठ से गाना समाप्त कर जब श्रोता रुक गई तो लोगों ने देखा कि उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है। उसके गाने को सुन सुकुमार बाबू भी अपने आंसुओं को न रोक सके। उपस्थित मंडली में से भी कितनों ही की आंखें जल-पूर्ण हो गईं।

प्रार्थना के बाद सुकुमार बाबू ने अपना भाषण शुरू किया। धीर शान्त अश्रुरुद्ध कण्ठ से वह कहने लगे। क्रमशः उनका मुंह उज्ज्वल हो उठा, आंखों से ज्योति निकलने लगी, तीव्र उज्ज्वल रजत धारा के समान उनकी वक्तृता-लहरी चारों ओर फैलने लगी। वे कहने लगे—

"ईश्वर माता के समान स्नेह-पूर्ण हृदय लेकर अपने पथ-भ्रान्त पुत्रों के लिये सदा व्याकुल होकर बैठे रहते हैं। उनका हृदय क्षमा से पूर्ण है, उनका प्राण दया से पूर्ण है। हे संसार के लोग, तुम लोग दौड़ो और उनके चरणों पर जा गिरो। तुम्हारी सब क्लान्ति दूर हो जायगी। तुम लोगों को क्या भय है? यदि तुमसे भूल हो गई है तो उनकी अनन्त दया का आश्रय लो, फिर भूल न होगी। तुमसे दोष हो गया है? तो भय नहीं, भगवान पतित-पावन हैं। उनकी क्षमा का द्वार सदा खुला रहता है, उनकी शरण लो, तुम्हारा सब दुःख दूर हो जायगा! तुम्हें पाप से भय है? मिथ्या भय है! उनकी विश्व-व्यापी करुणाधारा के पास पाप का अस्तित्व रह ही नहीं सकता है।"

भगवान तो तुम्हीं लोगों के लिये हैं। अपने स्नेह पूर्ण हाथों को बढ़ा कर वह देखो वे तुम्हे अनन्त अभय दान कर रहे हैं, तुम्हें अपनी गोद में बुला रहे हैं। अपनी सब भावना, सब चिन्ता, को दूर कर तुम उनकी शान्त छाया में जाकर खड़े हो, फिर किसी चिन्ता का, किसी भय का, किसी दु:ख का, अवसर न रहेगा।"

मुंह आंख कान सब को सम्पूर्ण खोल कर अनीता ने इन बातों को क्षुधा-पीड़ित के समान सुना। वह सुकुमार बाबू की प्रत्येक बात में मानों एक स्निग्ध पुण्यमय पवन अपने अन्तर में अनुभव करने लगी।

उपासना समाप्त होते होते तक अनीता का मन एक दम शान्त हो गया। उसके हृदय में हाल ही की घटना से जो ज्वाला बलने लगी थी, वह एक दम बुझ गई। उत्साहित हृदय से सुकुमार बाबू के पास जाकर उसने चरण छू के उन्हें प्रणाम किया। अनीता के समान मेम साहब कभी किसी को दन्डवत कर सकती थी, यह अभी तक कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। उसे ऐसा करते देख सभी आश्चर्य में पड़ गये, पर सुकुमार बाबू ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "इतने दिन के बाद तुम्हें भगवान् की याद आई!"

अनीता सिर नीचा किये हुए चुप खड़ी रही। सुकुमार बाबू ने कहा, "तुम्हें कुछ कहना नहीं होगा। तुम्हारे मन में जो भय की तरङ्गें उठ रही हैं भगवान की कृपा होगी तो उनकी जगह प्रेम की शीतल धारा बहेगी।"

अनीता ने हाथ जोड़ कर कहा, "मैं आपके घर चलूंगी, आपके घर में क्या मेरा स्थान हो सकेगा ?"

सुकुमार बाबू आश्चर्य से उसका मुंह देखने लगे। इतना तो वे समझ गये कि यहां कुछ गड़बड़ है, लेकिन क्या गड़-बड़ी है यह न समझ कर उन्होंने कहा, "यह कैसी बात ?"

अनीता ने सिर नीचा कर उत्तर दिया—"बहुत सी बातें हैं। घर चल के कहूंगी।"

सुकुमार बाबू ने और कोई प्रश्न न किया। अनीता की मोटर पर चढ़ उसे अपने घर ले गये। इसके बाद निकल के एक मित्र के घर जाकर अमल को फोन किया, "अनीता मेरे यहां है, कोई चिन्ता न करना।" वे इन भाई बहिन को बहुत अच्छी तरह जानते थे।

मगर उनकी बात सुन अमल ने जो जवाब दिया उसने उनका आश्चर्य और भी बढ़ा दिया। वह बोला, "इसके लिये मुझे अब कोई चिन्ता नहीं है, वह जहां चाहे रहे!" उसके कुपित स्वर की बात सोचते सोचते सुकुमार बाबू घर लौटे।

अनीता ने सुकुमार बाबू के यहां पहुँचते ही ड्राइवर को चले जाने के लिये कहा। उसने पूछा, "फिर कब गाड़ी लानी होगी ?" अनीता बोली, "अब गाड़ी की ज़रूरत नहीं है। घर लौट जाओ।" ड्राइवर गाड़ी लेकर चला गया।

सुकुमार बाबू के आने पर अनीता ने अपना कुछ हाल उन्हें कहा। सब तो नहीं, पर जितना कहा उससे सुकुमार बाबू

समझ गये कि किसी बात पर दोनों भाई बहिनों में मनमुटाव हो गया है। उन्होंने अनीता को लौट जाने पर अनिच्छुक देख उसके वहीं रहने का बन्दोबस्त करा दिया।

दूसरे दिन सवेरे अनीता को एक सोलिसिटर का पत्र मिला। उसमें सोलिसिटर ने लिखा था—"पांच लाख के कम्पनी कागज़ और पार्कस्ट्रीट के एक मकान का दखल अनीता को दिला देने के लिये अमल बाबू ने उन्हें आदेश दिया है। अनीता कब उनका दखल लेगी यह बताने से अच्छा होगा।"

अनीता ने उस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया।

उन्नीसवां परिच्छेद

अमल के घर से निकल कर इन्द्रनाथ किसी तरह भी सीधा घर न जा सका। रास्ते ही में ट्राम से उतर वह वेलिंग-टन पार्क के एक निर्ज्जन स्थान में जा बैठा।

इस सम्पूर्ण निर्जन स्थान में भी वह सिर ऊंचा कर के बैठ न सका। कैसी लज्जा, कैसी घृणा, कैसी लाञ्छना की बात थी!! अपने मित्र अमल के सामने वह सर्व्वदा के लिये कलङ्क का भागी बन गया था। और किस लिये? एक दम

बेकसूर! मगर जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ है! उसके मन के पाप का उचित ही दंड उसे मिला है!

परन्तु कितना भीषण दंड! यह बात तो छिपी न रहेगी! जब लोग उससे पूछेंगे कि अमल के साथ अब भेंट मुलाक़ात होती है या नहीं, तब वह क्या कहेगा? आज ही रात को जब सरयू पूछेगी कि अनीता कल आयेगी या नहीं, तब उसे क्या जवाब देगा? टाम लिण्डले जब अनीता के बारे में पूछेगा, तो वह किस मुंह से उसके साथ बातचीत करेगा? इन्द्र को झूठ बोलने की आदत न थी। जब कभी भी वह झूठ बोलने की चेष्टा करता था तभी उसका झूठ प्रकाश हो जाता था। अतः मिथ्या के द्वारा जो वह इस विपद् से छुटकारा पा सकेगा उसे ऐसी आशा न होती थी।

अचानक एक मोटर की आवाज़ से वह चौंक उठा—देखा अनीता की वही सुपरिचित मोटर है। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों मोटर उसी के घर की ओर जा रही है। देख कर ही मानो उसके सारे शरीर से एक विद्युत का श्रोत बह गया। वह झट उठ खड़ा हुआ। आनन्द से उसका प्राण नाच उठा। वह दो क़दम आगे बढ़ा। परन्तु दूसरे ही क्षण दोनों हाथों से अपने हृदय को थाम कर बैठ गया। नहीं, अभी वह किसी तरह भी अपने घर नहीं जा सकता है।

बहुत रात बीते वह घर लौटा। उस समय मनोरमा घर में बैठी कुछ पढ़ रही थी। सरयू अपनी छोटी लड़की को सुलाते

सुलाते सो गई थी। अब चुपचाप वह घर में घुसा और देखा सरयू सोई हुई है, तब वह मानों एक विपद् से छुटकारा पाकर कपड़ा बदलने लगा। बच गया, कम से कम आज तो उसे कोई जवाबदेही नहीं करनी होगी।

उसके आने की आहट पाकर बगल के कमरे से मनोरमा ने आकर पूछा, "भैया, आज इतनी रात कर दी!"

इन्द्र घबड़ा कर बोला, "हां, खाने पीने में कुछ देर हो गई।" वह जिस कपड़े को खोल कर खूंटी में लटकाने आ रहा था, वह छूट कर हाथ से गिर पड़ा और इससे एक जूते की पालिस की शीशी और एक टीन की डिबिया उलट गई। इस शब्द से सरयू की नींद टूट गई और वह उठ कर स्वामी के खाने का प्रबन्ध करने लगी।

भोजन सामने आने पर इन्द्रनाथ अन्यमनस्क सा होकर खाने बैठ गया। उसे बड़ी भूख लगी थी और उसने खाया भी कम नहीं।

मनोरमा विनोद से बोली, "भैया, अभी न बोले थे कि खा कर आये हो?"

इन्द्रनाथ को यह बात एक दम भूल गई थी। वह बोला, "कब? खाया कहां? नहीं तो?" पर उसी के बाद जब याद आया तो लज्जा से उसका मुंह लाल हो गया।

सरयू ने इसे लक्ष्य किया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा, "कल के लिये अनीता को निमन्त्रण दे दिया?"

एक बार कांप कर इन्द्र ने कहा, "उससे कहा था, पर कल वह आ न सकेगी।"

परन्तु सरयू के मुंह की ओर देख कर वह इतनी बात भी कह न सका। मुंह नीचा करके उसने इतना कहा। आश्चर्य से सरयू ने पूछा, "आ न सकेगी! क्यों?"

"वह कल यहां न रहेगी!"

"कहां जायगी?"

कहां? इन्द्रनाथ ने इस बात का उत्तर सोच कर न रक्खा था। बहुत विचार कर उसने कहा, "शिमला पहाड़।"

"शिमला! तब तो उसका भाई भी उसके साथ जायगा!!"

"यह नहीं मालूम, शायद न जाय। मुझे मालूम नहीं!"

"वाह, तुमने इतना भी नहीं पूछा?"

इस बात से इन्द्र ऐसा विव्रत और लज्जित हो गया कि उसका मुंह सूख गया।

उसके बातचीत करने का रंग ढंग देख आखिर सरयू के मन में सन्देह हो ही गया कि जरूर इन्द्रनाथ किसी बात को छिपा रहा है। उसने सोचा शायद कोई ऐसी बात हुई है जिसको वे गुप्त रखना चाहते हैं। वह बात क्या है, इस विषय में अपने मन में वह तरह तरह का अनुमान लगाने लगी।

मनोरमा के चले जाने के बाद दरवाजा बन्द करते हुए उसने स्वामी से कहा, "कल अनीता किस समय जायगी?"

"क्या मालूम, शायद शाम को।"

"तब सवेरे मुझे एक बार वहां ले चलो, मैं उससे भेंट करूंगी।"

सर्वनाश! इन्द्रनाथ इस बात का क्या उत्तर दे? उसने कहा, "सवेरे मुझे बहुत जरूरी काम है, किसी तरह वहां न जा सकूंगा।"

कुछ सोच कर सरयू ने कहा, "अच्छा, कल सवेरे सतीश आयगा, मैं उसी को ले कर चली जाऊंगी।"

इन्द्रनाथ शङ्कित और व्यग्र हो कर बोल उठा, "नहीं, नहीं—सवेरे वह घर में नहीं रहेगी।"

सरयू ने सन्दिग्ध दृष्टि से स्वामी की ओर देखा। उस दृष्टि में अभिमान भरा हुआ था।

इस दृष्टि को देख कर इन्द्रनाथ को और भी भय हुआ। कुछ देर तक वह मुंह फिरा कर खिड़की से बाहर के गैस के लंप की ओर देखता रहा। तब उसने सरयू के मुंह की ओर देख कर कहा, "सरयू मैं झूठी बात कह रहा हूं। अनीता कहां जायगी, क्या करेगी, यह मुझे कुछ मालूम नहीं। मुझे केवल यही मालूम है कि आज से उसके और अमल के साथ हम लोगों के सभी सम्बन्ध सदा के लिये अन्त हो गये। तुम्हें या मुझे उनके घर जाने का कोई अधिकार नहीं रह गया।"

सरयू स्तम्भित हो गयी। उसने डर के कहा, "यह क्यों?"

"इस वक्त तुम मुझसे और कुछ न पूछो!" कह कर इन्द्र ने हाथ से मुंह ढांप लिया। उसके नेत्रों से आंसू गिरने लगे।

सरयू की आंखों से भी एक दो आंसू के बूंद गिर पड़े। अत्यन्त उत्कंठा से अधीर होने पर भी उसने कुछ कहा नहीं केवल इन्द्रनाथ के पास बैठ उसका सिर अपने वक्ष में दबा लिया। इन्द्रनाथ जब कुछ शान्त हुआ तो उसने केवल इतना कहा, "किसी बात पर रुष्ट हो कर अपने अमल ने मुझे घर से निकाल दिया है। शायद उसे अनीता के बारे में कुछ संदेह हुआ है।"

क्रोध से सरयू का सिर से पैर तक जल उठा। अमल ने उसके स्वामी का अपमान किया!! उसके हृदय का समस्त क्रोध अमल के विरुद्ध जाग उठा। वह क्रोध से कांपती हुई बोली, "अमल का इतना साहस! इतना घमण्ड! नालायक, सोचता क्या है? किस साहस से उसने तुम्हारा ऐसा अपमान किया!! बाप के दो पैसे से धनी बन कर इतना घमण्ड! तुमने उसे मारा क्यों नहीं? मैं रहती तो उसके मुंह पर थूंक कर चली आती!"

भयानक क्रोध से गर्जते तर्जते वह प्रतिहिंसा की मूर्ति बन गई। उलटा इन्द्र को उसे समझाना पड़ा।

बीसवां परिच्छेद

जहां तक हो सका इन्द्र टाम से भागता रहा था, पर उसे छुटकारा नहीं ही मिला। मुलाकात होते ही आशा निराशा से उद्वेलित हृदय से टाम ने उससे पूछा, "कहो, क्या पता लगाया ?"

इन्द्र ने फिर मिथ्या बोलने की कोई चेष्टा न की। वह बोला, "बात अच्छी नहीं है। अनीता ने कहा है कि वह तुम्हें मित्र रूप से चाहती है, पर पति और स्वामी रूप में तुम्हारी कल्पना नहीं कर सकती।"

टाम का मुंह कुछ गम्भीर हो गया। वह बोला, "क्यों ? मेरा कोई अपराध ?"

इन्द्र०। अनीता कुछ पुराने खयाल की है। वह कहती थी कि वह उसी से विवाह करेगी जिसे अपने से बड़ा समझ सके, जिसका आश्रय कर निर्भय हो आत्मसमर्पण कर सके।

कुछ सोच कर टाम ने कहा, "तुम्हें धन्यवाद ! पर इस

बात से मैं अपनी आशा नहीं त्याग सकता। मैं उसे राजी करूंगा ही—अवश्य और निश्चय !"

इन्द्रनाथ बहुत देर तक चुप रहा, तब अन्त में बोला, "और देखो, लिण्डले, तुम्हें और एक बात कह देना भी शायद उचित होगा। मुझे ऐसा मालूम होता है कि अनीता शायद किसी दूसरे पुरुष से प्रेम करती है !"

लिण्डले इसी बात की आशङ्का कर रहा था। उसने तुरत पूछा, "वह कौन है ?"

इन्द्रनाथ ने कहा, "इस बात को बताने का अधिकार मुझे नहीं है। तुम स्वयम् ही पूछ कर देख सकते हो।"

उसी दिन सन्ध्याकाल में टाम अमल के घर गया। पर अमल को देख वह स्तम्भित हो गया। वह एकदम ही बदल गया था।

अनीता के बारे में पूछते ही अमल चिढ़ कर बोला, "वह यहां नहीं है !"

"यहां नहीं है ! तब कहां है ?"

"मुझे मालूम नहीं !"

"तुम्हें मालूम नहीं ? यह तुम क्या कह रहे हो ?"

अमल बोला, "टाम, मैं जो जानता हूं, सो तुम्हें बतलाना नहीं चाहता हूं—क्योंकि सुन कर तुम्हें कष्ट होगा। परन्तु इस समय वह कहां है, इसकी कोई भी खबर मुझे नहीं है, और इसकी खबर रखना भी मैं नहीं चाहता। हां यह जरूर कहूंगा

कि यदि हो सके तो तुम भी उसे भूल जावो। वह तुम्हारे प्रेम के योग्य नहीं है।"

अपनी भग्न आशा की वेदना को अन्तर में ही दमन कर, राम ने अमल का हाथ पकड़ कर कहा, "अमल, मालूम होता है तुम्हें किसी बात से बहुत ही दुःख हुआ है। मगर तुम मुझे भी उस दुःख का भागी बनाओ और मुझे बताओ कि क्या बात है। परस्पर की सहायता कर हम लोग एक दूसरे के दुःख को दूर करेंगे।"

इस स्नेह सम्भाषण से अमल एक दम विगलित हो गया। अनीता के चले जाने के बाद, इस चौबीस घंटे तक, उसने एक असहनीय यन्त्रणा भोगी थी जिससे उसका समस्त हृदय चूर्ण विचूर्ण हो गया था। और वह भी क्या सामान्य दुःख था! अपनी प्राणों से प्यारी भगिनी अनीता को अपराधी की तरह से उसने घर से निकाल दिया था। इन्द्र, उसके भाई से बढ कर प्यारे इन्द्र ने उसके हृदय में ऐसी भीषण छुरी मारी थी! बार बार, उठते बैठते, सोते जागते, वह इसी को सोचा करता था। परन्तु फिर साथ ही साथ, जाने के समय का इन्द्र का "नहीं, कोई बात नही है!" कह कर वेदना-कातर मुंह से विदा होना भी उसे बार बार याद आता था। उसे बार बार याद आता था अनीता का यह कहना—"देवता को भगा कर तुमने पाप को—" इसका क्या अर्थ है? उसे सब बात सुनना उचित था। इन्द्र ने क्या बात कहते कहते नहीं कही? अनीता

कौन सी बात उससे कह देने का आग्रह कर रही थी ? उसने सोचा—क्या मैंने गलती की ? पर फिर उस दृश्य की बात याद आई। वह चुम्बन, वह अङ्ग-स्पर्श, उसका सिर से पैर तक वृश्चिकदंशन से भर गया। नहीं! यहां भूल का कोई अवसर नहीं।

फिर भी एक बात उसे दु:ख दे ही रही थी। उसने क्यों मूर्ख के समान अनीता को इस तरह घर से निकाल बाहर कर दिया ? क्या यही उसका कर्त्तव्य था ? उसके माता-पिता अनीता को उसके हाथ में समर्पण कर गये थे। उसने क्या उनके विश्वास के योग्य काम किया ? उस रात को अनीता को न जाने देना ही उचित था। और नहीं तो अनीता का पीछा कर उसे घर लौटा ले आना ही उचित था।

अब अनीता कहां है ? क्या मालूम ? उसे कैसे खबर मिले ? क्या इन्द्रनाथ के पास है ? शायद हो, मगर वह कैसे वहां जाय ? अमल को कोई उपाय न मिला। अनीता को ढूंढ़ निकालने के लिये उसका मन व्याकुल हो गया। अनीता यदि एक बार लौट आती, यदि आकर एक बार भी कहती, "भैया, मैं लौट आई !" तो उसके सभी अपराधों को भूल अमल उसे अपने वक्ष में खींच लेता।

टन् टन् कर टेलिफोन की घंटी बज उठी। सुकुमार बाबू उसे कुछ कह रहे थे। मगर उनकी बात को सुन कर अमल का सारा क्रोध फिर जाग उठा। इतना घमंड! इतना तेज! उसका

घर छोड़ सुकुमार बाबू के पास जाके अनीता ने आश्रय लिया है! अपने कलङ्क की बात सुकुमार बाबू तक पहुँचा दिया है!!

अमल इन सुकुमार बाबू को ठंढी आंखों से नही देख सकता था। धर्म्म व्यवसायी मात्र ही उसकी आंखों में विष की भांति जान पड़ते थे। वह कहा करता था कि ये लोग अपने व्यवहार के द्वारा सज्जन पुरुषों का अपमान किया करते हैं। अत्यधिक धर्म्मनिष्ठा दिखा कर ऐसे लोग सब लोगों को समझाना चाहते कि दूसरे पापिष्ठ हैं और केवल ये ही पुण्यात्मा हैं। इसके अतिरिक्त धर्म धर्म कह के आत्म विस्मरण करने वालों को अमल दुर्बल और नारी-सुलभ चरित्र वाला भी समझा करता था। उसके समीप में दृढ़-चरित्र पुरुषों के लिये इस तरह ईश्वर पर निर्भर होना या ईश्वर के प्रेम में पिघल जाना असम्भव था। अमल सोलहो आना आत्म-निर्भर-शील व्यक्ति था। किसी से भय करना उसे जरा भी पसन्द न था—ईश्वर से भी नहीं। इसी लिये सुकुमार बाबू जैसे लोगों से वह सदा विद्रोह ही रक्खा करता था।

अनीता उन्ही सुकुमार बाबू के आश्रय में गई है, यह जान उसे क्रोध हुआ, पर एक विषय में उसका मन शान्त भी हो गया। अनीता निराश्रय नही हुई है। सुकुमार बाबू और जो कुछ भी हों, पर सम्पूर्ण विश्वास योग्य सदाचारी सज्जन पुरुष हैं यह उसे विश्वास था—और इसी लिये उसे इस ओर से छुटकारा मिला। पर साथ ही साथ यह खयाल भी उठा

कि जब उसने सुकुमार बाबू के पास आश्रय लिया है तब वह शीघ्र अमल के पास लौट आना नहीं चाहती—वह सचमुच में पराई हो गई, इसे सोच कर वह अपने आंसुओं की धारा को नहीं रोक सका।

इसी प्रकार की सम्पूर्ण परस्पर विरुद्ध हज़ार हज़ार चिन्ताओं में रह कर उसने वह रात काटी थी। दूसरे दिन जब उसने सालिसिटर को अनीता की सम्पत्ति के बारे में समझा दिया, उस समय उसे ऐसा मालूम हुआ मानों वह अपने हाथों से अपने हृदपिण्ड को बाहर निकाल रहा है।

इस समय टाम की सहानुभूति देख अमल विगलित हो गया। उसने अपनी सारी वेदना उस पर प्रकाश कर डाली और इस प्रकार एक विषम बोझ से छुटकारा पाया।

अमल की बातों को सुन टाम का मुंह कुछ सूख गया। उसने कहा, "अमल, मैं अब देख रहा हूं, कि अनीता से प्रेम कर मैंने केवल उसे दुःख ही दिया है। खैर, अब बैठ कर रोने से न चलेगा। मैं आशा करता हूं कि और चाहे जो कुछ भी हो, पर तुम मुझे अपने बन्धुत्व से वञ्चित न करोगे।"

अमल बोला, "कदापि नहीं! इस समय, जब कि मेरे सभी बन्धन टूट गये हैं, तुम्हें यदि मित्र रूप में रख सकूं तो भी जीवन में कुछ सहारा तो मुझे रहेगा।"

"तब तुम मुझे बन्धुत्व का अधिकार भी दो। यदि अपने प्रयत्न से मैं कभी तुम भाई बहन को एकत्र कर सकूं, तो मेरे

पास शपथ करो अमल कि तुम अनीता को सम्पूर्ण रूप से क्षमा कर ग्रहण करोगे ?"

अमल चुपचाप बैठा रहा। टाम बोला, "नानसेन्स अमल, तुम अपनी बहन को क्षमा नहीं कर सकोगे !! जिससे तुमने सर्वदा अपने प्राणों से अधिक स्नेह किया है, जिससे तुम्हें अब भी स्नेह है, उसके एक साधारण अपराध को तुम क्षमा न कर सकोगे !!"

कुछ देर तक चुप रहने बाद अमल ने कहा, "टाम, तुम सच कहते हो। मुझे अब भी अनीता से बहुत प्रेम है—मगर प्रेम है, इसी लिए मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता हूं !"

बहुत कुछ कह सुन कर टाम ने अमल को शान्त किया। वह टाम की बात पर सम्मत हो गया।

इक्कीसवां परिच्छेद

अनीता ने सुकुमार बाबू के घर पहुंच कर सचमुच ही बहुत कुछ शान्ति लाभ किया। भगवत् साधना में उसे अपार आनंद मिला। सुकुमार बाबू के साथ धर्म्मालोचना कर उसने अपने क्षुब्ध तृषित चित्त को नियत और शान्त किया।

पर वह शान्ति थोड़े दिनों की थी। अचानक एक दिन टाम लिण्डले उसके साथ भेंट करने के लिये आ पहुंचा। सामना होते ही वह बोला, "अनीता, मैं अपना प्रेम प्रगट करने तुम्हारे पास नही आया हूँ। मेरे उस प्रेम की मृत्यु हो चुकी है। इस समय मैं बिलकुल दूसरे ही मतलब से आया हूँ।"

अनीता चुप रही।

टाम ने फिर कहा, "अपनी बात मैं तुमसे कुछ भी न कहूंगा, तो भी यह जरूर पूछूंगा कि अपने भाई के लिये भी क्या तुम्हारे मन में कोई स्थान नहीं रह गया है? अमल तो तुम्हारा ऐसा वैसा भाई नहीं है,—उसके स्नेह ने तो तुम्हें शैशव से ही घेर रखा है! और तुम उसी को, एक बात तक न बोल कर, अकेला छोड़ कर, चली आई हो! क्या तुम जानती हो कि अमल को इससे कितना दुःख हुआ है? इन कई दिनों में ही उसका शरीर इतना खराब हो गया है कि उसे पहचानना मुश्किल हो उठा है। उससे क्या अपराध हो गया है जिससे तुम उसे ऐसा भीषण दंड दे रही हो? उसका अगर कोई भी कसूर है। तो बस इतना ही न कि उसने एक बदमाश को जो सज्जनता की रक्षा नही कर सका है, जिसने तुम्हारा अपमान किया है, तुम्हारे भाई का अपमान किया है, ऐसे एक व्यक्ति को उसने घर से निकाल दिया। यही न, बस यही न उसका कसूर है?"

अनीता की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने

लगीं। उसने क्रोध से कहा, "लिएडले, तुम जिसके जूते का फीता खोलने के लायक भी नहीं हो, उसे हो दोषी कहते हो!! इन्द्रनाथ बदमाश है! उसके समान देवता का यदि एक अंश मात्र भी तुममें रहता तो तुम्हें मेरे पास प्रार्थी हो कर आना न पड़ता, उलटा मैं ही तुम्हारे पैरों पर गिर जाती!!

"वास्तव में, उस दिन क्या हुआ था, तुम भी नहीं जानते और मेरे भाई को भी मालूम नहीं है। मेरे सिवाय यदि किसी और को मालूम है तो वह केवल इन्द्रनाथ को। पर वह देवता प्राण रहते कदापि इस बात को कभी किसी से न कहेगा। इस लिये मुझे ही अपनी लज्जा को छोड़ कर इस बात का प्रचार करना होगा। अच्छा सुनो।

"उस दिन इन्द्रनाथ तुम्हारा पक्ष ले कर मेरे साथ बात करने आए थे। मैंने कहा था कि मैं तुमसे, लिएडले से, प्रेम नहीं कर सकती। और इस लिये इन्द्रनाथ ने मुझे तिरस्कार किया था, तुम्हारे सद्गुणों की प्रशंसा की थी, तुम्हारे प्रेम की व्याख्या कर के मुझे सुना रहे थे। पर मैं उनके मुंह से इन सब बातों को सुन कर आत्मसंवरण न कर सकी। मैंने एक वर्ष तक जिस बात को अपने प्राणों के अंदर छिपा रक्खा था उसे और छिपा न सकी, मैंने अपना प्रेम प्रगट कर दिया।

"इन्द्रनाथ चौंक उठे, मेरे पास से जाने लगे, पर मैंने उन्हें शान्त कर के कहा, "इन्द्रनाथ, तुम्हारे साथ मेरी यह शेष मुलाकात है, अब मैं तुम्हारे सामने फिर न आऊंगी, पर मुझे मेरे

जीवन के लिये एक आधार तो दो। एक बार कह दो कि तुम भी मुझसे प्रेम करते हो।" देवता के समान इन्द्र ने उत्तर दिया, "नहीं।" उसके बाद वे जाने के लिये खड़े हो गये। मैं क्या करती। मेरा हृदय-सर्वस्व जन्म भर के लिये मुझे त्याग कर चला जा रहा है यह देख मैं अपनी बुद्धि खो बैठी। क्षुधित हो कर उसके हाथ को जोर से पकड़ा और उसको अपने वक्ष में धारण कर—हाय तुम्हारी बदौलत मुझे यह बात भी कहनी पड़ती है!!—मैंने उसी हाथ में दो बार चुम्बन किया। इन्द्रनाथ, निष्ठुर इन्द्रनाथ, पत्थर की मूर्त्ति के समान खड़े रहे—और उसके साथ साथ पीछे से भैया ने पुकारा। वे उनका हाथ पकड़ कर बाहर खींच ले गये। एक बार भैया ने पूछा भी "तुम्हें कुछ कहना है?" पर मेरे प्रति ममता होने के कारण उस देवता ने कुछ नहीं कह कर इस मिथ्या अपवाद का पूरा बोझ अपने सिर पर ले लिया और अपने प्रियतम बन्धु को त्याग कर चले गये—

"हाय लिण्डले—ऐसे देवता को तुम बदमाश कह रहे हो!!"

अनीता ने अश्रुपूर्ण नयनों से कहानी को समाप्त किया और इसके साथ ही कपड़े में मुंह छिपा फूट फूट कर रोने लगी। लिण्डले ने एक गंभीर निःश्वास त्याग किया, तब रूमाल से मुंह पोंछ जमीन की ओर देखने लगा।

कुछ देर के बाद अनीता फिर बोली, "टाम! मैंने तुम्हें कड़ी बात सुनाई है, पर मुझे क्षमा करो! मेरे समान दीन

नारी, मेरे समान निःस्व दरिद्र, इस जगत में दूसरा नहीं है। मैं तुम्हारे प्रेम के योग्य नहीं हूं, यह समझ कर तुम अपना प्रेम भूल जावो। और यदि मुझ पर दया करो, तो मेरी इस पाप की बात को सभों के सामने प्रकाश कर मेरे अभागे देवता इन्द्रनाथ को इस मिथ्या कलंक के बोझ से मुक्त करो !!"

लिण्डले ने और एक गंभीर दीर्घ नि:श्वास त्याग किया। वह अनुभव कर रहा था कि अनीता कैसी लज्जा और वेदना से कष्ट पा रही है—अपने हृदय को कितना पोढ़ा करके उसने इस अपने कलङ्क की बात को अपने मुंह से निकाला है यह वह खूब समझ रहा था। कोई नारी अपनी ऐसी बात सहज में नहीं कह सकती है—उसे यह मालूम था। इसी लिये उसने गंभीर सहानुभूति के साथ अनीता के प्राण की समस्त वेदना को अनुभव कर के कहा, "अनीता, बिना असली बात जाने मैंने इन्द्रनाथ के प्रति जो अपवाक्य कहे उसके लिये मुझे क्षमा करो। जाने दो. यदि तुम मुझसे प्रेम नहीं कर सकती हो तो जाने दो, पर अपने परिवार के एक मित्र के रूप में मुझे ग्रहण करने में शायद तुम्हें कोई आपत्ति न होगी। बोलो, अपने एक मित्र की बात तुम मानोगी ?"

अनीता ने अश्रुप्लावित मुंह को उठा कर कहा, "यदि सम्भव हो, शक्ति हो, तो तुम्हारे अनुरोध की रक्षा की चेष्टा अवश्य करूंगी।"

टाम०। तुम अपने घर लौट जावो, अनीता !

अनीता०। माफ करो, दाम, इतना बड़ा दंड तुम मुझे न दो! वह घर जो मेरे अपराध की लीला भूमि है,—जहां मेरे देवता मेरे लिये अपमानित हुए,—वहां मुझे न भेजो। वहां मैं किसी प्रकार नहीं लौट सकती हूं।

दाम०। अनीता तुम बुद्धिमती हो! जरा सोच कर देखो, तुम्हें समझने में भूल हुई है। तुम्हारे भाई ने भूल कर इन्द्रनाथ का अपमान किया है। तुम तीनों में मेल हो जाना कुछ भी कठिन नहीं है।

अनीता०। दाम, तुम जानते नहीं, मैंने इन्द्रनाथ से शपथ किया है कि फिर मैं उनके सामने न खड़ी हूंगी। हां, यदि भैया इन्द्रनाथ से क्षमा मांगें तो वह अवश्य क्षमा करेंगे, क्षमा ही नहीं करेंगे बल्कि आग्रह के साथ अपने पुराने मित्र के पास लौट आयेंगे। परन्तु यदि मैं उस घर में रहूंगी तो वे वहां कदापि नहीं आयेंगे।

दाम०। ऐसा मत सोचो अनीता! इन्द्रनाथ बहुत बुद्धिमान है। वह कभी तुम्हें चिन्ताजनक स्थिति में न डालेगा।

अनीता०। तब फिर मेरा प्रायश्चित्त ही क्या हुआ, कहो! नहीं नहीं लिण्डले, तुम लौट जाओ। भैया से सब बात खोल कर कह दो। वे इन्द्रनाथ से क्षमा मांग कर अपनी पुरानी मित्रता पुनः कायम करें, और अब तुम दोनों ही मेरी आशा त्याग कर दो। मैं अब उस जीवन के भीतर पुनः नहीं जा सकूंगी। मेरा पथ अब सम्पूर्ण स्वतन्त्र हो पड़ा है।

बहुत देर तक तर्क वितर्क करने के बाद भी जब कुछ फल न निकला तो टाम निराश हो कर उठ खड़ा हुआ। उस समय अनीता ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "मैं तुम्हें हज़ार वार धन्यवाद देती हूँ। मेरे समान पापिष्ठा के लिये जो तुम सोच रहे हो, प्रयत्न कर रहे हो, इस लिये तुम्हें धन्यवाद। पर यदि तुम भैया के साथ इन्द्रनाथ की मित्रता पुनः प्रतिष्ठित कर सको तो बस इतने ही के लिये मैं तुम्हारे पास चिरकृतज्ञ बनी रहूँगी।"

टाम ने कहा, "अनीता, जहां तक मुझसे हो सकेगा मैं प्रयत्न करूंगा, परन्तु यह मुझसे अधिक तुम्ही पर निर्भर करता है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे स्वयम् मध्यस्थ बने बिना यह विवाद कदापि न मिटेगा।"

अनीता०। मैं अपना यह कलंक से भरा हुआ मुंह ले कर इन्द्रनाथ के पास कैसे जा सकती हूं!!

टाम०। इन्द्रनाथ के पास नहीं सही पर अपने भाई के पास तो जा सकती हो?

अनीता सीधी हो कर खड़ी हो गई, तब बोली, "भैया ने अन्याय पूर्वक इन्द्रनाथ का अपमान किया है। भैया जब तक उस अपमान को मिटा न देंगे, तब तक मैं उनका मुंह नहीं देखूंगी।"

टाम के मुंह से निकला "बड़ी मुश्किल है!" कुछ देर तक सोचने के बाद उसने फिर कहा,—"एक उपाय और भी है

अनीता, पर उसे कहने का मुझे साहस नहीं होता है। तुम यदि ढाढ़स दो तो कहूँ।"

"क्या उपाय है?"

टाम ने जमीन की ओर देख कर कहा, "अनीता, यदि दया कर, मुझसे घृणा करना छोड़ कर, यदि तुम मेरे घर चली चलो, मेरे हृदय और शरीर की अधिष्ठात्री बन कर लौट चलो, तो हम लोगों के मिलन-मन्दिर में तुम्हारे भाई इन्द्रनाथ से जरूर मिल जायेंगे।"

गम्भीर हो कर अनीता ने कहा, "टाम, मैं हिन्दू की लड़की हूँ! असती कदापि नहीं बन सकती हूँ! तुम फिर कभी यह बात जबान से न निकालना!!"

टाम सिर नीचा कर चला गया।

बाईसवां परिच्छेद

टाम के मुंह से उस दिन की घटना का विवरण जैसा कि अनीता ने दिया था सुन कर अमल स्तम्भित हो गया। वह विवरण जो ठीक है, इसे मान लेने में उसे कोई भी बाधा

न हुई क्योंकि सारी अवस्था की आलोचना कर वह भी अब ठीक इसी सिद्धान्त पर पहुँचा था।

सब हाल कह कर टाम बोला, "अमल! अनीता को फिर से पाने के लिये तुम्हें इन्द्रनाथ के साथ पुनः मित्रता करनी ही होगी। नहीं तो वह वह किसी तरह भी यहां नहीं लौटेगी।"

बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद अमल ने कहा, "मैं अनीता से भेंट करूंगा।"

टाम ने कहा, "यदि तुम इन्द्रनाथ से क्षमा मांगे बिना उसके पास जाओगे तो वह तुम्हारा मुंह न देखेगी—उसने जोर दे कर मुझसे यह कहा था।"

अमल फिर चुप हो रहा। टाम ने कहा, "पर इससे तुम्हारे कुण्ठित होने की कोई बात नहीं है, अमल! इन्द्र ने जो महानुभवता दिखलाई है तुम्हें उसका सन्मान करना चाहिये। तुमने जो सोचा था, यदि वही सच होता, तब तुम्हारा व्यवहार अवश्य उचित होता। पर अब जब तुम्हें अपनी भूल मालूम हो गई है, तो एक सच्चे आदमी की तरह तुम्हें उससे क्षमा मांगना सम्पूर्णतया उचित है। इससे तुम्हारा अपमान नहीं होगा, बल्कि तुम्हारा सम्मान ही बढ़ेगा।"

अमल ने टाम लिण्डले के मुंह की ओर गंभीर दृष्टि से देख कर कहा, "लिण्डले, तुम क्या कह रहे हो? क्या तुम चाहते हो कि अनीता के सम्मान को नष्ट कर के मैं इन्द्रनाथ के साथ मेल करूं? प्राण रहते मैं ऐसा नहीं कर सकता!!"

लिण्डले ने बहुत संकोच के साथ कहा, "तब क्या एक भीषण मिथ्या की ही जय हो जायगी ?"

अमल ने कहा, "मैं सत्य मिथ्या नहीं जानता दास, धर्म्मा-धर्म्म नहीं समझता। अपना मान-अपमान, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, सब कुछ मैं अतल जल में डुबा सकता हूँ, परन्तु अपनी मातृ-हीन भगिनी के सन्मान को पण्य वस्तु के समान कैसे बेच सकता हूँ! उस अभागी ने अपने मान को अपने ही हाथों नष्ट कर डाला है। अपने हृदय को वश में न रखने के कारण वह एक दूसरे व्यक्ति से अपमानित हुई है। परन्तु यह बात क्या मेरे मुंह से निकल सकती है!! कदापि नहीं। तुम्हारे यह कर्म न हो सकेगा, दास !"

इस समस्या के समाधान करने में जो और भी एक बाधा है—लिण्डले ने अब तक उसे सोचा भी नहीं था, परन्तु अब वह स्पष्ट अनुभव करने लगा कि यह बाधा बहुत बड़ी है। अमल का विचार अन्याय नहीं है। अमल की यह धारणा जो शीघ्र बदल जायगी उसे ऐसी आशा भी न हुई। हताश हो वह अपने घर लौटा।

लिण्डले के चले जाने के बाद अमल जिस इजीचेयर पर बैठा हुआ था वहीं लेटे हुए वह दीवार पर टंगी अपनी माता के चित्र की ओर एकाग्र दृष्टि से देखने लगा।

उसे कितनी बातें याद आईं—अपने हृदय में क्या भीषण यन्त्रणा वह अनुभव करने लगा, कैसी एक कठोर वेदना से

उसका हृदय पीड़ित हो गया। लिण्डले ने जो कुछ कहा उससे उसे बड़ी लज्जा हुई। यह कैसा अपमान था! उस की भगिनी होकर अनीता ने अपने मान को इस तरह नष्ट कर दिया! स्वयं जाकर इन्द्रनाथ से प्रेम-भिक्षा की! कैसी लज्जा! कैसा भीषण मर्म्मभेदी अपमान! उसने जिस मिथ्या बात की कल्पना की थी वह भी तो इस अपमान से सौ गुना अच्छा था! अब वह क्या इस जन्म में कभी भी इन्द्रनाथ के सामने सिर ऊंचा कर खड़ा हो सकेगा!

टाम भी दुःखित अन्तर से घर लौटा। बहुत सोच विचार करने पर उसे मालूम हो गया कि अमल और अनीता दोनों में किसी के विचार को बदल देने की उसमें शक्ति नहीं है। परन्तु इस बात को सोच कर उसे बहुत अशान्ति मालूम हुई।

बहुत सोच समझ कर एक दिन उसने इन्द्र से इस बात को कहा। इन्द्रनाथ ने मनोयोग पूर्व्वक उसकी सारी बातों को सुना और सुनने बाद बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा।

टाम ने कहा, "तुमने बहुत महानुभवता दिखलाई है, इन्द्र, अब अपने महत्व को पूर्ण कर तुम इन भाई-बहन को मिला दो!"

एक लंबी सांस खींचकर इन्द्रनाथ ने कहा, "मैं क्या कर सकूंगा?"

टाम०। अमल को अब समझ में आ गया है कि दोष वास्तव में अनोता का ही है, अस्तु, तुम यदि अग्रसर हो

कर उसके साथ पुनः मित्रता करना चाहोगे तो अमल को तुम से मेल करने में कोई आपत्ति न होगी। और अनीता तुम पर जिस तरह श्रद्धा करती है इससे यदि तुम उससे कहोगे, तो वह भी अपने भाई के पास अवश्य लौट जायगी।"

इन्द्र बहुत देर तक चुप रह कर बोला, "अमल से क्षमा प्रार्थना कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु अनीता को मैं अपना मुंह नहीं दिखा सकूंगा।"

"क्यों ?"

"क्यों ? तब सुनो, लिण्डले ! अनीता ने जो कुछ कहा वह सम्पूर्ण सच नहीं है। असल में मैं ही पापिष्ठ हूं !"

लिण्डले चौंक उठा ! इन्द्रनाथ ने एक बार उसके मुंह की ओर देखा। फिर दृष्टि नीची कर ज़मीन की ओर देखते हुए धीरे धीरे उसने कहा, "उस दिन जो क्या हुआ था, उसे मैं अब तक ठीक समझ नहीं सका। एक क्षण ही में बहुत सी घटनाएं विद्युत-वेग से हो गईं—मेरी अवस्था उस समय अर्द्ध-चेतन सी हो रही थी—मैंने क्या किया यह ठीक से मुझे ही नहीं मालूम है। लेकिन यह सच है कि एक क्षण के लिये मैंने भी अपनी सद्बुद्धि खो दी थी। जब अनीता एक मुहूर्त्त के लिये मेरे वक्ष से लिपट गई थी, उस समय मैं मानो एक स्वप्न देखने लगा था, मेरे सारे शरीर से एक तीव्र विद्युत-प्रवाह बह गया था। मैं उसे अपने वक्ष में लगा हुआ या मानो स्वर्ग के पथ में चला गया था !"

टाम गुस्से से लाल होकर बोला, "यथेष्ट हुआ! समझ गया! जो कुछ मामला हुआ सो मैं जान गया—अब क्या तुम सुनना चाहते हो कि तुम्हारे सम्बन्ध में मेरी क्या धारणा है?—तुम एक कुत्ते से भी अधम हो, तुम्हें ठीक कुत्ते के समान ही दण्ड मिलना चाहिये। अब बताओ सज्जन पुरुष के समान लड़ना चाहते हो या कुत्ते के समान मार खाना चाहते हो?"

कह कर लिण्डले लड़ने के लिये आस्तीन उठाने लगा, मगर इन्द्रनाथ ने उसकी ओर देख कर कहा, "मैं तुम्हारे साथ न लड़ूंगा।"

लिण्डले क्रोध से कांपते कांपते बोला, "तब यह लो—यह लो—!!" कह कर उसके नाक और कान पर बहुत ज़ोर से दो घूसा मारा। इन्द्रनाथ के नाक से खून निकलने लगा, एक क्षण के लिये वह बेहोश सा हो गया।

कालेज के प्रोफेसरों के बैठने के कमरे में यह घटना हुई थी। उस समय वहां और कोई उपस्थित न था, किन्तु शब्द सुन कर बगल के कमरे से एक अंगरेज़ प्रोफेसर आ पहुँचे, इसके बाद खबर पाकर प्रिन्सिपल इत्यादि और भी बहुत से लोग आ गये। इसी समय इन्द्रनाथ ने होश में आकर लिण्डले से कहा, "लिण्डले, शायद अब तुम मुझे क्षमा कर सको?"

लिण्डले अवाक् हो गया! क्रोध के वशीभूत हो यकायक घूसा चला देने के लिये अब उसे पश्चाताप हो रहा था।

इन्द्रनाथ ने जो आत्मरक्षा की चेष्टा तक न कर उससे अत्यन्त दीन भाव से मार खा ली इससे उसे बहुत अनुताप भी हुआ क्योंकि वह जानता था कि इन्द्रनाथ कापुरुष नहीं है और मुष्टि युद्ध में भी अक्षम नहीं। एक बार कालेज के लड़कों के फुटबाल के खेल में एक अंगरेज़ के साथ झगड़ा हो गया था। गोरों के एक दल ने कालेज के लड़कों पर आक्रमण किया था। उस समय इन्द्रनाथ के हाथ से कई अंगरेजों ने जो कैसी मार खाई थी यह उसने देखा था। यह वही इन्द्रनाथ था जिसने अवश्य अपने को दोषी जान के ही आत्म-रक्षा की चेष्टा तक न की थी, इसे मार देने का उसे अपने मन में बहुत दुःख हुआ। उसने अनुभव किया कि इस युद्ध में इन्द्रनाथ को मार कर भी वह उससे पराजित हो गया। जब सब लोग मिल कर इन्द्रनाथ को होश में लाने की चेष्टा कर रहे थे, तब वह लज्जा से मरा हुआ एक कोने में बैठ कर अपने नैतिक पराजय का स्वरूप हृदयङ्गम कर रहा था। इस समय वह इन्द्रनाथ की बात को सुन कर एक दम ही विगलित हो गया। उसने इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर आवेगपूर्ण स्वर से कहा, "अनीता ने ठीक कहा था—तुम मनुष्य नहीं हो, देवता हो—तुम मुझे क्षमा करो !!"

तेईसवां परिच्छेद

यह बात चारो ओर फैल गई। घटना का विवरण सब अख़बारों में छपा। व्यवस्थापक सभा में भी प्रश्न हुआ। डिरेक्टर साहब ने लिएडले को बुला कर खूब डांटा तब प्रेसिडेंसी कालेज से बदल कर चट्टग्राम में असिस्टेंट इन्सपेक्टर बना कर भेज दिया। भारतीय प्रोफेसरों ने भी बड़ी धूम मचाई। लड़कों ने जमा होकर लिएडले के क्लास में जाना छोड़ दिया। छात्र लोग इतने क्रोधित हो गये थे कि लोगों को यह डर होने लगा कि कहीं सब लिएडले को मारें नहीं।

इन सब बातों को देख और सुन कर अमल को बहुत आश्चर्य हुआ। लिएडले ने उससे जो कुछ कहा था उसको देखते हुए तो इन्द्र पर उसके क्रोधित होने का कोई भी कारण न था। तब फिर लिएडले ने इन्द्र पर इस प्रकार आक्रमण क्यों किया? इसका कारण क्या?

इन्द्रनाथ उसे लज्जावशतः अमल के पास फिर नहीं गया दीन में अमल ने चार पांच दिन चेष्टा कर आखिर लिण्डले क्यों ढूंढ़ ही निकाला और तब उससे पूछा, "बात क्या है?"

लिंडले ने कहा, "मुझसे कुछ न पूछो भाई, मैंने एक पशु के समान व्यवहार किया है, पर इससे मेरा ही उपकार हुआ है। अमल, ईसामसीह का बात पुस्तकों में पढ़ा था। उस दिन मैंने सचमुच ईसामसीह के समान ही एक क्षमा की मूर्त्ति देखी। इन्द्रनाथ सचमुच में देवता है!"

अमल ने कहा, "पर तुम उसे मारने क्यों गये?" टाम बोला, "इन्द्र ने जो बातें कही थीं उससे मुझे उस समय बहुत क्रोध हुआ था पर अब मुझे मालूम हो गया है कि वह सत्य ही कह रहा था।"

अमल०। आखिर उसने तुमसे क्या कहा था?

टाम०। उसने कहा कि अनीता ने जो कुछ कहा है वह सच नहीं है, वास्तव में वह स्वयं दोषी है!

अमल चौंक उठा। बोला, "हैं! उसने ऐसी बात कही है?"

टाम०। हां!

अमल०। तब जरूर यह बात सच्ची है। टाम, इन्द्रनाथ और जो कुछ क्यों न करे पर वह झूठ कदापि नहीं बोल सकता।

टाम०। पर अनीता! अनीता ही क्या झूठ बोल कर मिथ्या कलङ्क का बोझ अपने सिर पर ले सकती है!

अमल०। कह नहीं सकता। न जाने क्या पहेली है!!

दोनों बहुत देर तक चुप रहे।

उनकी बातचीत लिंडले के घर में हो रही थी। लिंडले अन्यमनस्क सा होकर अनीता के एक फोटो को लेकर इधर उधर करता हुआ ये बातें कर रहा था।

बहुत देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा, "अमल, यह क्या बड़े दुःख की बात नहीं है कि ये दोनों परस्पर इतना प्रेम करते हैं तो भी इनमें मेल होने का कोई उपाय नहीं है! इनके बीच में आकर और एक स्त्री ने एक दीवार खड़ी कर दी है!!"

अमल अवाक् होकर बोला, "यह तुम क्या कह रहे हो, टाम? तुम इसे प्रेम कहते हो! मैं कहता हूं कि यह केवल काम है! तुम इन्द्र की स्त्री को नहीं जानते हो पर मैं जानता हूं। वह एक रत्न है! एक देवी है!!"

टाम० ...र! तुम्हारे लिये! यदि तुम्हारे साथ इन्द्र को ...ता और इन्द्र अनीता को पा लेता तब ...आ होता!!

... ठहरो, इतनी जल्दी न करो! सुनो, इन्द्र की ...ना प्रेम करती है इसकी तुम कल्पना भी न कर ...क देवता के समान इन्द्र की पूजा करती है, और इन्... ो ठीक उसी तरह प्रेम करता है। यदि सचमुच ही इन्द्र ने कभी किसी से पवित्र प्रेम का अनुभव किया है तो वह प्रेम सरयू के प्रति ही उत्पन्न हुआ था।

टाम० । प्रेम करता था यह सच होगा ! परन्तु वह प्रेम सदा ही बना रहेगा यह तो कोई जरूरी नहीं है !

अमल० । ओह, यही बात है ! इन्द्र का प्रेम अपनी स्त्री पर अब तक वैसा ही बना हुआ है ।

टाम० । यह सब काव्य की बातें हैं—तुमने कहीं ऐसा प्रेम देखा है ?

अमल० । देखा है ! प्रत्यह देख रहा हूँ ! यदि इसका एक जीवन्त दृष्टान्त देखना चाहो तो इन्द्र की भगिनी को देखो ! आज आठ वर्ष हुए वह विधवा हो गई है, पर अबतक एक दिन के लिये भी उसका प्रेम अपने स्वर्गीय स्वामी की स्मृति से एक बाल भर भी नहीं हटा है !

लिण्डले ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया । बेयरा ने अचानक घर में आकर लिण्डले को एक कार्ड दिया जिसे देखते ही वह कुरसी से कूद कर उठ खड़ा हुआ और झट दरवाज़े के पास जाकर द्वार खोल उसने किसी को नमस्कार किया । अमल ने द्वार की ओर देखा—अनीता वहां खड़ी थी ।

चौबीसवां परिच्छेद

अमल के साथ इन्द्रनाथ की किस लिये अनबन हो गई है यह मनोरमा को नहीं मालूम था। उसने अपने भाई से इस बारे में नहीं पूछा। भौजाई के पास पूछा था, पर उससे भी कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला था। सरयू ने केवल अनीता और अमल को गालियां दीं, जिससे मनोरमा अवाक् हो गई। उसके बाद उसने इसके बारे में और न पूछा पर अपने मन में नाना प्रकार की सम्भव असम्भव कल्पनाएं वह अवश्य करने लगी।

एक बात उसके मन में विद्युत् के समान बह गई जिसने एक क्षण के लिये उसका समस्त शरीर अवश कर दिया। इस विच्छेद का कारण कहीं मनोरमा स्वयं तो नहीं है? भैया को कहीं ऐसा कोई सन्देह तो नहीं हो गया था कि वह और अमल परस्पर के प्रति आकृष्ट हो रहे हैं? क्या वह अमल से बहुत खुल कर बातें नहीं करने लगी थी? क्या उससे बात

करने की एक तीव्र आकांक्षा उसके मन में बराबर नहीं उठती रहती थी ? कहीं उसी का यह फल तो नहीं है। सोच कर वह लज्जा से भर गई।

अचानक क्यों इन्द्रनाथ और एक साहेब के साथ कालेज में मारपीट हो गई इसे भी वह कुछ समझ नहीं सकी। जिस दिन इन्द्रनाथ नाक मुंह फुला कर कालेज से अपने घर लौटा उस दिन मनोरमा और सरयू ने उससे बहुत से प्रश्न किये थे, पर इन्द्रनाथ ने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल यही कहा कि एक साहब के साथ लड़ाई हो गई है। उसे यह सब बातें पहेली की समान मालूम हुईं। उसके अपने मन की अवस्था भी बहुत खराब थी, इसी लिये वह इस सब में नाना प्रकार की विभीषिका देखने लगी।

अचानक चार पांच दिन में ऐसा क्यों हो गया ? क्यों अचानक उनके जीवन में ऐसी जटिलता आ गई, यह सोच मनोरमा बहुत ही अस्थिर हो गई। साथ साथ उसके पहले के सुख के दिनों का चित्र उसके मानसपट में खिंच गया।

बहुत दिनों से आचार्य सुकुमार बाबू की प्रार्थना में सम्मिलित होने की बात वह सोच रही थी। इधर मन बहुत उद्विग्न हो उठने के कारण और जप तप माला ब्रह्म-चिन्ता किसी में भी शान्ति न पाने के कारण, आखिर एक दिन वह अपने एक मौसेरे भाई को साथ ले कर नवविधान समाज में गई। उस दिन सुकुमार बाबू ही वहां उपासना करायेंगे यह बात उसने

सुनी थी। समाज में जा कर देखा—उस दिन की गायिका अनीता ही है। उसका समस्त शरीर चञ्चल हो उठा। दौड़ कर अनीता के गले लग जाने के लिये वह व्याकुल हो उठी। परन्तु अनीता बहुत दूर थी, और उसका गाना भी शुरू हो गया था, इस लिये मनोरमा बहुत कष्ट से आत्मसंवरण कर बैठी रही।

सुकुमार बाबू ने गंभीर, प्राणस्पर्शी भाषा में, प्रार्थना की। पापियों की ओर से, शोकातुरों की ओर से, उन्हों ने भगवान के पास करुण निवेदन किया। उनके दया और क्षमा की भिक्षा की।

पर मनोरमा का मन उपासना की ओर न था। उसकी दोनों आंखें अनीता पर ही निबद्ध थीं। उसने देखा,—अनीता आंखें बंद कर एकाग्र चित्त से उपासना कर रही है। उसकी दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है। यह देख कर उसे अपने मन में अपने प्रति धिक्कार हुआ। उपासना करने के लिये आकर उसका चित्त इतना विक्षिप्त हो रहा है देख कर उसे अपने पर क्रोध भी हुआ। तब उसने सुकुमार बाबू के मुंह की ओर देखा। दोनों हाथों को उठा कर ऊर्द्ध दृष्टि से वे कह रहे थे, "हे मेरे सर्वदर्शी पिता! मैं तुमसे क्या छिपाऊं! मैं स्वयं जो नहीं जानता हूं उसे भी तुम जानते हो, भगवान। मेरे मन के भीतर गुप्त रूप से जो पाप छिपा हुआ है वह तुम्हारे सामने तो दिन के समान प्रकाशित है! तुम तो उसको

जानते हो! फिर, ईश, उसे क्यों नहीं दूर कर देते! हे दयालु! तुम जानते हो कि हम सब कोई कितने बड़े पापी हैं—तब तुम अपने मङ्गल-अंगुलि-स्पर्श से हमारे धर्म जीवन को क्यों नहीं उज्वल कर डालते! अपनी अपार करुणा की स्निग्धधारा से क्यों नहीं हमारे पाप का सब क्षोभ सब गंदगी धो डालते! क्यों नहीं अपनी अपार शान्ति के प्रलेप से जीवन को शीतल कर देते!!"

सुकुमार बाबू का उपासना का ढंग, उनका आवेग, और ऐकान्तिकता, तथा उनके सुकंठ ने इन बातों को मानो एक अपूर्व प्राणशक्ति से पूर्ण कर दिया। अचानक मनोरमा उत्तेजित हो गई। सुकुमार बाबू ने कैसे उसके मन की ही बात को यहां पर कह दिया, यही सोच कर वह अवाक् हो गई। उसने एकान्त मन से उपासक के साथ समस्त हृदय से प्रार्थना में योगदान किया। प्रार्थना के बाद सुकुमार बाबू ने अपनी ओजस्विनी भक्तिमयी भाषा से उपदेश दिया। उन्होंने साधना के क्रम, साधना के उपाय, और आनुसंगिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में अनेक बातें ऐसी सरल सहज और प्राणस्पर्शी भाषा में वर्णन कीं कि उसमें मनोरमा ने एक नई ज्योति का प्रकाश देखा।

साधना के मार्ग के नाना प्रकार के सहज सन्धान बता कर उन्होंने अपने श्रोतृवर्ग के मन को आकृष्ट कर दिया। सुकुमार बाबू के उपदेश की यही विशेषता थी कि उनके मुंह से साधन बहुत सहज हो जाता था। वे उपासक को किसी कठिन

परीक्षा से पीड़ित नहीं करते थे। उनके श्रोतागण उनकी बातों को सुन कर आनन्द के साथ अनुभव करते थे, कि साधन कोई कठिन वस्तु नहीं है, प्रत्येक साधना बहुत सहज में हो सकती है, यहां तक कि सिद्धि लाभ करना भी कोई कठिन कार्य नहीं है। उनकी बातों से सब लोग उत्साहित होकर उनके उपदेशों को कार्य्य में परिणत करने के लिये व्याकुल हो उठते थे।

मनोरमा को भी आज यही मालूम हुआ। उसे ज्ञात पड़ा कि वह वेदान्त और उपनिषद् के परस्पर विरोध में, पथ खो कर घूम रही है। उसने ठीक किया कि सुकुमार बाबू के आधार पर ही अब आगे वह साधन करेगी।

उपासना समाप्त हो जाने के बाद वह दौड़ कर अनीता के पास पहुंची। उसे देख कर अनीता चौंक उठी। उसका गुलाब के समान आरक्त मुंह एक दम विवर्ण हो गया, पर तुरन्त ही फिर लाल हो गया। वह कुछ कह न सकी।

अनीता को देख कर मनोरमा का अन्तर रोने लगा। सारे जगत का कष्ट उसके हृदय में आ जमा। वह बहुत देर तक कुछ कह न सकी। दोनों चुपचाप खड़े रहे।

सुकुमार बाबू की लड़की सुलता वहां पहुँच कर अनीता से बोली, "अनीता, चलो, गाड़ी आ गई है, पिता जी खड़े हैं।"

अब अनीता बोली, "आती हूं, जरा मनो के साथ दो एक बात कह लूं।" सुलता के चले जाने के बाद अनीता बोली, "तुम लोग कैसे हो, मनो?"

मनोरमा को बहुत आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद अनीता ने अश्रुरुद्ध कण्ठ से कहा, "अब वे कैसे हैं?"

"अब कुछ अच्छे हैं, अब यन्त्रणा नहीं है, और बुखार भी नहीं है। शायद कल भोजन करेंगे। अच्छा अनीता बहन, तू रो क्यों रही है? और तू हम लोगों के घर अब क्यों नहीं आती है? क्या हुआ है, मुझसे न बोलेगी?"

"नहीं, मनो, जब तुम्हारे भाई ने नहीं कहा है तो मैं भी न बताऊंगी। केवल इतना ही कहती हूं कि मेरे समान दुःखी और कोई नहीं है! मनो, तुम लोग मुझसे प्रेम न रक्खो! मुझ से घृणा करो! मेरे ही पाप के कारण तुम्हारे भाई को इतना कष्ट हुआ है! अब जाती हूं—अब तुमसे मेरी मुलाकात न होगी—याद रखना।" कह कर अनीता जाने के लिये तैयार हो गई, पर मनोरमा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "यह कैसी बात अनीता बहिन! अब मुलाकात क्यों नहीं होगी? मुझे खोल कर क्यों नहीं कहती है?"

सुलता ने फिर दूर से पुकारा, "चलो, अनीता! पिताजी जल्दी कर रहे हैं!! मनोरमा ने पूछा, यह कौन है?"

"सुकुमार बाबू की लड़की।"

मनोरमा ने आंखें फाड़ कर सुलता की ओर देखा। वह कितनी सौभाग्यवती है! रात दिन सुकुमार बाबू के चरणों के पास बैठ कर शिक्षा लाभ करती है! अन्त में उसने कहा, "तुम्हारा भाई कहां है?"

अनीता अचानक क्रोधित होकर बोली, "भाई ? मनो, मेरा कोई भाई नहीं है ! अमल के साथ अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा ! वह मेरा शत्रु है ! अच्छा अब चलती हूँ, क्षमा करना, याद रखना।"

कह कर अनीता झट सुलता के साथ चली गई। मनोरमा की समझ में कुछ न आया। घर लौटते समय तरह तरह की बातें बार बार उसके मन में उठने लगीं। जरूर कुछ न कुछ हुआ है इन सभों में, पर क्या हुआ है यह जानने के लिये उसका मन व्याकुल हो उठा। आखिर उसने स्थिर किया कि वह किसी दिन सुकुमार बाबू के घर में जा कर अनीता से पुनः मुलाकात करेगी। वहां जा कर सुकुमार बाबू से उपदेश ले वह साधना में भी मनोयोग देगी ऐसा भी उसने निश्चय कर लिया।

पचीसवां परिच्छेद

लिण्डले और इन्द्रनाथ के झगड़े का हाल अखबार में पढ़ कर अनीता ने लिण्डले को पत्र लिखा था और उसे तुरंत मिलने के लिये कहा था। लिण्डले ने उत्तर दिया था कि अनीता के साथ मिलने में वह एक दम अक्षम है। इस जन्म में वह फिर कभी उसको अपना मुंह न दिखलायगा।

बहुत चेष्टा कर भी जब वह लिएडले से मिलने के लिये कोई उपाय न कर सकी तो उसने सोचा कि एक बार लिडले के घर जाकर ही उससे भेंट करे। अविवाहित पुरुष के घर में अकेले जाकर मिलना कलङ्क की बात हो सकती है—यह सोच वह संकुचित हुई, परन्तु इस मुलाकात में किसी साथी को ले जाना भी तो उचित नहीं था। आखिर उसने स्वयम् जाना ही स्थिर किया। मनोरमा से इन्द्रनाथ की अवस्था के बारे में सुन कर वह एक दम पागल हो गई थी, और इन्द्रनाथ की रोग-शय्यागत मूर्त्ति की कल्पना कर अपना हिताहित ज्ञान खो बैठी थी। अस्तु दूसरे ही दिन शाम को वह लिएडले के घर पहुंची।

जब लिएडले द्वार के पास आकर खड़ा हुआ तब उत्तेजना से उसका सारा शरीर कांप रहा था और हृदय आवेग से पूर्ण था, परंतु अमल को भी वहां मौजूद देख अनीता चमक कर दरवाज़े के पास ही खड़ी हो गई। अमल भी अनीता को देख कर चौंक उठा।

अनीता ने जिस तीव्र दृष्टि से अमल की ओर देखा उस दृष्टि से आग की चिनगारियां निकल रही थीं। लिएडले ने एक कुर्सी उसे बैठने के लिये बढ़ा दी, पर अनीता बैठी नहीं बल्कि द्वार के पास ही खड़ी रह कर बोली, "मैं बैठने के लिये नहीं आई हूं लिएडले, केवल एक बात तुम्हारे अपने मुंह से सुनने के लिये आई हूँ। तुमने जो इन्द्रनाथ को मारा है—यह बात क्या सच है?"

लिण्डले सिर नीचा करके बोला, "अत्यन्त दुःख के साथ मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि यह सच है।"

अनीता०। क्यों? इन्द्रनाथ ने क्या तुम्हारा किसी तरह अपमान किया था?

लिण्डले०। नहीं—मगर—

अनीता०। बस, यही यथेष्ट है! मैं चली. अब जन्मभर तुमसे कभी न मिलूंगी! और भैया, तुम—तुम क्या इतने मनुष्यत्व-हीन हो गये कि जिसने तुम्हारे बाल्य-बन्धु का अपमान किया, मार कर शय्यागत कर दिया, उसी के साथ बैठ कर निर्विवाद आमोद प्रमोद कर रहे हो! धिक्कार है तुम्हें!"

कह कर वह झट घूम पड़ी, पर लिंडले ने उसे रोक कर कहा:—

"अनीता—तुम मेरी सब बातों को तो पहिले सुन लो!!"

"सुनाओ तुम अपने इस मित्र को! मैं तुम्हारी कुछ सुनना नहीं चाहती। उससे पूछो कि उसने क्या इन्द्रनाथ की सब बातों को सुना था? या मेरी ही सब बातों का सुना था? तुमने ही क्या स्वयं इन्द्रनाथ की सब बातों को सुना था? तुम्हें उत्तर देने का प्रयोजन नहीं। अखबार में पढ़ कर इस बात का विश्वास न कर सकी थी, इसलिये सच बात को जानने के लिये तुम्हारे पास आई थी। सुन कर सन्तुष्ट हो गई। मैं अब तुम दोनों को अनन्त अटल घृणा के साथ त्याग कर जन्म भर के लिये चली।"

कह कर अनीता बहुत वेग से नीचे उतर कर एक दम टैक्सी पर जाकर बैठ गई। अमल और लिण्डले परस्पर की ओर देखते रह गये। उनके मुंह से एक बात न निकली।

घर लौट कर अनीता दरवाज़ा बन्द कर बहुत देर तक रोती रही। अपने सकल रुद्ध आवेग को उसने अशेष अश्रु-धारा में प्रवाहित कर दिया।

× × ×

इस घर में आकर अनीता ने सुकुमार बाबू के पास धर्म्म-ग्रन्थ पाठ, धर्म्मालोचना, और उपासना कर एक नये राज्य को प्राप्त किया था। परन्तु प्रथम मोह के दूर हो जाने के बाद उसके मन में पुनः अतृप्ति की छाया जाग उठी। उसने देखा कि व्याकुल हो यहां आकर उसे जो कुछ मिला है उससे तृष्णा कुछ दूर होती है सच परन्तु प्राणों में मादकता नहीं भर जाती है।

ऐसे समय सुकुमार बाबू की कन्या सुलता ने उसे अपना अन्तरंग बना लिया। उसकी आयु प्रायः अनीता की आयु के समान ही थी और उसने कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु सुकुमार बाबू की कन्या को जैसा होना चाहिये था ठीक वैसी न थी। वह प्रत्यह मन्दिर में जाती थी, गान और उपासना में योग देती थी, अपने पिता की उपासना और वक्तृता पर बहुत ही अधिक श्रद्धा रखती ऐसा दिखलाने की भी वह चेष्टा करती थी, परन्तु धर्म्म ही उसके प्राण की सब से बड़ी वस्तु न थी। उसका हृदय जिस रस से परिपूर्ण हो रहा था वह भगवत् प्रेम न

था। वास्तव में, वह युवती थी—और यौवन सुलभ सहज प्रेम-लालसा से ही उसका हृदय पूर्ण था।

उसे इस प्रेम लालसा को परितृप्त करने का अवसर न मिला था। लुब्ध भ्रमर के समान युवकों का दल उसकी ओर दौड़ कर न आता था। क्योंकि सुकुमार बाबू लड़कियों की अबाध स्वतंत्रता के विरुद्ध थे अतः सुलता को युवकों के साथ मिलने का बहुत कुछ सुयोग नहीं मिलता था। इसी कारण सुलता को वास्तव जीवन में जो वस्तु न मिली, कल्पना के राज्य में उसने उस पर अधिकार किया। उसकी आलमारी प्रेम की कविता और कहानियों से भर गई। सखियों के साथ सत्य और कल्पित प्रेम-कथा के बारे में आलोचना करना उसका एक प्रधान काम हो गया।

अनीता को घर में आया देख सुलता को बड़ी प्रसन्नता हुई। रस की बातें कहने योग्य कोई मिला तो सही यह सोच वह बहुत ही आनन्दित हो गई, इसी से उसने बहुत जल्दी उससे घनिष्ठता भी कर ली। पर अनीता जो सुकुमार बाबू के पास इतना देर तक रहा करती यह उसे अच्छा नहीं लगता था। सुयोग पाते ही वह उसे लेकर रस-चर्चा करना शुरू कर देती थी। अनीता को भी यह रस-चर्चा अप्रीतिकर नहीं मालूम होती थी,—क्योंकि उस समय उसका जीवन भी इसी रस से पूर्ण हो रहा था। परन्तु अनीता और सुलता में एक बहुत बड़ा प्रभेद था। सुलता के लिये प्रेम एक सुन्दर कल्पना थी पर अनीता के

लिये प्रेम एक अनुभूत वेदना थी। इसी लिये वह उसकी ठीक एक रस के रूप में आलोचना नहीं करती थी, प्रायः रो कर वेदना पूर्ण हृदय से दुःख भरी भाषा में उसकी आलोचना करती थी।

एक दिन बाहर से आकर सुकुमार बाबू ने अनीता के हाथ में मीराबाई का 'गीत-संग्रह' देख कर कहा, "क्या पढ़ रही हो ? मीराबाई ? तुम्हें भी क्या अपने रणधीर को लेकर भागने की इच्छा हो रही है ?"

इस बात से अनीता का समस्त मुंह लज्जा से लाल हो गया। उसने अपने को संयत कर कहा, "देखिये, मैं सोच रही थी कि साधना के इस प्रेम-मय मार्ग को हम लोग एक दम अग्राह्य कर रहे हैं। मुझे मालूम होता है कि यह साधन अन्य प्रकार की साधनाओं से श्रेष्ठ है। हम लोग भगवान को पिता के रूप में, माता रूप में, तो देखते हैं पर 'प्रेमिक' के रूप में क्यों नहीं देखते !" सुकुमार बाबू बोले, "इसमें कोई बाधा नहीं है, भगवान को जिस रूप में देख कर हम लोगों की आत्मा तृप्त हो ठीक उसी रूप से इन्हें देखना उचित है।"

अनीता०। परन्तु क्या यही वह सब से श्रेष्ठ भाव नहीं है जिसे वैष्णव गण मधुर रस कहते हैं ?

सुकुमार बाबू हंस कर बोले, "वैष्णवों का मधुर रस ठीक वही वस्तु नहीं है, अनीता—वह तो मनुष्य के हृदय की एक निकृष्ट वृत्ति की छाया मात्र है।"

इस बात को सुन अनीता के मन में कष्ट हुआ। उसे ऐसा मालूम हुआ कि सुकुमार बाबू उसके प्रेम का अपमान कर रहे हैं।

सुकुमार बाबू कहने लगे, "भगवान ने हमारी समस्त सत्ता को परिव्याप्त किया हुआ है। हम उन्हें चाहे जिस किसी तरफ से ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु उनको इन अनगिनती रूप-कल्पनाओं में सब से श्रेष्ठ कौन है? वही जो हमारी सब से उच्च प्रवृत्ति को परितृप्त करे। मधुर रस में भगवान को बहुत छोटे रूप में देखा जाता है, उनकी महिमा कम हो जाती है।"

अनीता सुकुमार बाबू का आशय ठीक समझ न सकी। उसे समझने की इच्छा भी न हुई। उसे केवल यही समझ में आया कि वे प्रेम का अपमान कर रहे हैं। देवता के प्रेम की बात तो वह जानती नहीं, पर उसे मालूम हुआ कि जब वह अपने प्रेम के आराध्य देवता इन्द्रनाथ का ध्यान करती है, उस समय उसके हृदय में जो एक अपूर्व रस का सञ्चार होता है वह क्षुद्र नहीं है, नीच नहीं है, वह किसी से भी निकृष्ट नहीं है। उस प्रेम के लिये वह अपना क्या सर्वस्व तक अनायास ही बलिदान कर सकती है, हंसते हंसते प्राण विसर्जन कर सकती है। जो मन को इतना उच्च कर सकता है उसी को सुकुमार बाबू नीच कहते हैं! अनीता का मन सुकुमार बाबू पर विरक्त हो गया।

इसके बाद क्रमशः सुकुमार बाबू पर उसकी श्रद्धा कमती ही होती गई। दूर से अनीता ने देखा था कि सुकुमार बाबू

देवता हैं। निकट आकर देखा कि वे मनुष्य हैं। उन्हें भी खाना पहनना सोना इत्यादि सभी काम करने पड़ते हैं, और उनमें मनुष्य की साधारण सब दुर्बलताएं भी मौजूद हैं। उसने और एक बात का आविष्कार किया कि सुकुमार बाबू में आत्माभिमान का अभाव नहीं है। किसी पत्र में उनकी कोई सुख्याति निकलने से या किसी भक्त उपासक के आकर उनकी स्तुति करने से वे उसे ठीक देवता के समान ग्रहण नहीं करते हैं, बल्कि अपने परिवार में पुलकित चित्त से उसकी खूब आलोचना करते हैं। किसी विलायती पत्र में उसकी किसी पुस्तक की सुख्याति निकले तो इस बात को अपने देश के लोगों के पास प्रकाश किये बिना उन्हें तृप्ति ही नहीं होती है। कभी कभी वे अपने भक्तों के द्वारा या स्वयं भी ऐसी समालोचनाएं लिख कर समाचार पत्रों में भेज देते हैं। इसके अतिरिक्त, उनके भक्तों में जो लोग उनके विचारों को सम्पूर्ण निर्विवाद होकर वेद वाक्य के समान मान लेते हैं, उनका पक्ष लेने में वे सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं, पर जो लोग खूब विनीत होकर भी उनके विचार और धारणा की समालोचना करते हैं उनके वे शिष्य उनके बहुत अन्तरङ्ग नहीं हो सकते हैं।

अनीता ने आरंभ ही में इन बातों को लक्ष्य किया था पर इनमें जो हीनता और दुर्बलता थी अब वह बहुत बढ़ कर दिखाई देने लगी। इसके अलावा उनके विचारों के साथ भी अनीता का घोर विरोध होने लगा। सुकुमार बाबू केशवचन्द्र

क परम भक्त शिष्य थे। भारतवर्षीय ब्रह्म-मन्दिर में स्त्रियों को पुरुषों के साथ बैठाने में वे एक दम असम्मत थे। स्त्रियों का अबाध रूप से अन्य पुरुषों के साथ मिलना उन्हें पसन्द न था। आजकल के विलायत से लौटे हुए समाज में जो अबाध स्वाधीनता प्रचलित है, उसे वे स्वेच्छाचार समझते थे। इधर अनीता के संस्कार और शिक्षा ने इन सब विषयों में उसे सुकुमार बाबू के विरुद्ध खड़ा कर दिया था। वह सुकुमार बाबू को पुराने खयाल का और ज़िद्दी समझ कर उनसे अवज्ञा करने लगी थी।

जिस दिन अनीता लिएडले और अमल का तिरस्कार कर अप्रसन्न चित्त से घर लौटी, उसने देखा कि सुकुमार बाबू उसकी ओर अप्रसन्नता से देख रहे हैं। उनके मुंह की जिज्ञासु, अप्रसन्न और कौतूहल-पूर्ण अवस्था को देख वह और भी पागल बन गई। उसने समझ लिया कि यह वृद्ध मेरे अकेली यहां वहां जाने को सन्देहजनक आंखों से देखता है। इस बात से अनीता को और भी रोष हुआ, कारण वह कोई छोटी बच्ची नहीं है। अपने सम्मान की रक्षा करना जानती है, और इसके लिये किसी बुड्ढे की सहायता की आवश्यकता उसे नहीं है।

संध्या को नित्य नियमानुसार सुकुमार बाबू ने जो उपदेश दिया उसके अंदर भी अनीता को उनके इस भाव की कुछ गंध मिली। वह चुपचाप सब बातों को सुन कर उठ कर चली गई, पर उसका अन्तर पागल हो गया। उसके अन्तःकरण ने कहा,

अब यहां रहना ठीक नहीं। वह दूसरी जगह जाने के लिये स्थान का सन्धान करने लगी, परन्तु बहुत कुछ सोच विचार कर अन्त में कम से कम कुछ दिन के लिये यहीं रह जाना ही ठीक किया।

इसके दो तीन दिन बाद सवेरे वह अपने कमरे में बैठी सजल नयनों से पद कल्पतरु पढ़ रही थी, जब बगल के कमरे में एक परिचित कण्ठ शब्द सुन कर अचानक चमक उठी। नहीं, उसकी भूल नहीं हुई है। ये मनोरमा ही के शब्द थे। उसका समस्त हृदय आनन्द से नाच उठा—मनोरमा से गले लगने के लिये उसका प्राण व्याकुल हो गया। बगल का कमरा सुकुमार बाबू के पढ़ने का कमरा था। वह सुकुमार बाबू के कमरे की ओर बढ़ी।

परदा उठाते ही अनीता ने मनोरमा को देखा। चार आंखें हुईं। दोनों के मुंह आनन्द से पूर्ण हो गये। अनीता मनोरमा की ओर दो कदम आगे बढ़ी। पर हैं, यह क्या! मनोरमा के बगल में वह कौन खड़ा था? रोगी शान्त सौम्य मूर्त्ति वह कौन है! अनीता चौंक कर खड़ी हो गई। किसी ने मानो उस के पैरों में बेड़ी पहना दी। वह ज़मीन की ओर देखती हुई स्थिर निश्चल हो कर खड़ी रह गई। पर उसके हृदय में कल्पना का स्रोत बहने लगा। यही तो उसके अपराधी का स्वर्ग सशरीर उसके सामने खड़ा है—यही तो उसका देवता सामने मौजूद है—पर वह कैसी अभागी है, उसे शक्ति नहीं कि वह दौड़ कर

उसके चरणों पर पड़ जाय. शक्ति नहीं कि उसके वक्ष से लिपट जाय ; उसके मन में उस एक क्षण का प्रिय स्पर्श उज्वल हो उठा जब वह अपने दोनों हाथों से बलपूर्वक इन्द्रनाथ से लिपट गई थी—उसी आलिङ्गन का स्पर्श उसके मन में जाग उठा। इस प्रिय स्मृति से उसका समस्त शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

इन्द्रनाथ का मुंह भी एकदम विवर्ण हो गया। यह क्या ! क्या यही वह महिममयी अनीता है ! यही पतली दुबली अश्रुप्लाविता मलिनमुखी दीनवेशा नारी क्या वह अनीता है ! उसका हृदय जो एक बार आनन्द से नाच उठा था क्षण भर के बाद ही पुनः भीषण वेदना से चूर्ण विचूर्ण हो गया। वह भी चुपचाप जमीन की ओर देखता खड़ा रह गया।

एक क्षण के लिये अनीता का सिर चक्कर खाने लगा, एक पल के लिये उसकी आंखों के सामने सारी पृथ्वी में अन्धकार छा गया। इसके बाद उसने बड़ी कठिनता से अपना चित्त स्थिर कर शान्त होकर मनोरमा के पास जाकर कहा, "क्या मनो, तुम यहां किस लिये आ गई ?"

मनोरमा भी इन दोनों के भावान्तर को लक्ष्य कर अन्य-मनस्क सी हो कर कुछ सोच रही थी। अनीता की बात सुन उसने कहा, "तुम बताओ कैसी हो ?

सुकुमार बाबू ने कुछ लक्ष्य नहीं किया—क्योंकि साधारणतः बहुत लक्ष्य करने का उन्हें अभ्यास ही न था और फिर

वे उस समय अनीता की ओर पीठ किये बैठे थे। उन्होंने अनीता के प्रश्न का उत्तर दिया, "मेरे उस दिन के उपदेश को सुन कर आलोचना करने ये आई हैं। अनीता, इन्हें बहुत आश्चर्य हो रहा है कि साधन क्या सचमुच इतना सहज है।"

मनोरमा ने कहा, "उस दिन आपकी बातों को सुन कर उतना आश्चर्य नहीं हुआ था, क्योंकि आपके मुंह से कोई बात सुनने से यही जान पड़ता है कि हां यही तो सच है, इसमें आश्चर्य की क्या बात है? परन्तु जब मैंने आपके उपदेशों को कार्य में परिणत करने की चेष्टा की और देखा कि आपकी बात का फल हो रहा है, जब मैं उपासना के समय वास्तव में भगवान को बहुत निकट पाने लगी, तब मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और इसीलिये मैं आपके पास दौड़ कर आई।"

सुकुमार बाबू का मुंह कृतज्ञता से भर गया। एक स्निग्ध हंसी हंस कर वे बोले, "बहुत आश्चर्य की बात है न? कुंजी को खोकर सारा घर खोज लेने बाद अंत अपने ही आंचल में उसे बंधा देख कर जैसा मालूम होता है वैसा ही मालूम होता है न?"

मनोरमा ने कहा, "मैंने आपको गुरू के रूप में वरण कर लिया है,—इतने दिनों के बाद आपने ही मुझे सत्य का मार्ग दिखलाया है, आप ही अब मेरा हाथ पकड़ कर ले चलिये।"

अनीता उठ कर खड़ी हो गई,- ये सब बातें उसे अच्छी न लगीं। मनोरमा ने जो सुकुमार बाबू को इतनी श्रद्धा के साथ

गुरू के रूप में वरण कर लिया, यह बात भी उसे अच्छी नहीं लगी। उसे साफ कह देने की इच्छा हुई,—यह गुरू कृत्रिम है, नकली है, बनावटी है, इसे असल सत्य की कोई खबर नहीं है। इसके अलावे उसे यह भी बड़ा खराब लगा कि मनोरमा उसको एक दम छोड़ कर सुकुमार बाबू से बातें क्यों करने लगी।

इस कमरे में आने के बाद ही से उसके हृदय में जो एक आंधी सी बहने लग पड़ी थी, अब वह एक दम असहनीय हो गई। वह उठ कर बोली, "जाने के पहले एक बार भीतर आना मनो!" इतना कह वह दौड़ कर वहां से चली गई। उसे ऐसा ज्ञान पड़ा मानों इन्द्रनाथ की दोनों आंखें उसके पैरों के तले पड़ जाने के लिये व्याकुल हो रही हैं। परन्तु उसने एक बार भी इन्द्रनाथ की ओर सिर उठा कर नहीं देखा।

मनोरमा जाने के समय द्वार के पास खड़ी होकर कह गई, "अनीता, मैं जाती हूं, परसों फिर आऊंगी।" और कोई बात न कह केवल इतना ही कह वह चली गई।

छब्बीसवां परिच्छेद

घर लौटते समय मनोरमा एक दम चुपचाप थी। कुछ ही देर पहिले जो घटना हो गई थी, वही वह सोचने लगी। उसे

याद आया कि उसकी भाभी ने एक दिन अनीता के बारे में कहा था, "उसको घमण्ड कितना है! अनीता हम लोगों को मनुष्य ही नहीं समझती है!!" उस समय इस बात ने मनोरमा को बहुत कष्ट पहुँचाया था, पर आज उसे वह बात बार बार याद पड़ने लगी। अन्त में वह बोल ही तो उठी, "देखा न, कैसा घमण्ड है!"

इन्द्र०। मैं तो सदा ही कहता आ रहा हूँ कि जहां साधुता का बड़ा आडम्बर है वहीं कहीं न कहीं घमण्ड भी छिपा हुआ रहता है।

मनो०। सच है! उस दिन भाभी के कहने पर मुझे क्रोध हुआ था, पर आज देख रही हूँ भाभी ने उचित ही समझा था।

इन्द्र०। उसने क्या कहा था?

मनो०। उन्होंने कहा था कि घमण्ड के मारे अनीता हम लोगों को मनुष्य ही नहीं समझती।

इन्द्रनाथ अवाक् हो गया। अब तक वह सोच रहा था कि यह सुकुमार बाबू की बात हो रही है। यह बात जो मनोरमा अनीता के संबंध में कह रही है, यह वह जान बहुत विव्रत हो गया। बड़ी कठिनता से उसने कहा, "ओह, तुम अनीता की बात कह रही हो!"

मनो०। तब तुम क्या समझ रहे थे?

इन्द्र०। मैं कुछ और ही समझ रहा था। अच्छा मनो, तूने अनीता में कौन सी घमण्ड की बात देखी?

मनो०। घमण्ड नहीं है ! तुमको देख कर उसने एक बार हाथ उठा कर नमस्कार तक न किया, कुछ बोली तक नहीं !

इन्द्रनाथ ने शान्त हो कर कहा, "मनोरमा, तू भूल रही है। वह घमण्डी नहीं है। अनीता शायद तेरे भाई को तुझसे भी बहुत बड़ा समझती है।" इन्द्रनाथ का कण्ठ रुद्ध हो गया, वह और कुछ बोल न सका।

मनोरमा और भी आश्चर्य में पड़ चुप हो रही। अगर यह घमण्ड नहीं है तो फिर क्या है? अनीता अब तक इन्द्र-नाथ की अन्ध भक्त थी इस बात को मनोरमा अच्छी तरह जानती थी। तब आज के उसके इस आचरण का क्या अर्थ था?

बहुत देर तक सोचने के बाद इन्द्रनाथ ने कहा, "मनो, अब तू जिस दिन जाइयो अकेली जाना—तब तू देखेगी कि अब वह वही पहिले वाली अनीता नहीं है, कुछ और ही हो गई है!"

मनोरमा को एक बार बोलने की इच्छा हुई, "तब क्या मामला है? मुझे साफ साफ बतला न दो। मैं इस पहेली को नहीं समझ सकती।" परन्तु इन्द्रनाथ का मुंह वर्षा के जलमय के समान हुआ देख उसे कुछ पूछने का साहस न हुआ।

मनोरमा जो इतने संक्षिप्त रूप से विदा हो गई, अनीता ने इसे लक्ष्य नहीं किया। वह स्वयं इतना व्याकुल हो उठी थी कि मनोरमा के कार्य या वाक्य में क्रोध या अभिमान का सन्धान करने का उसे अवसर ही न था।

बहुत सोच समझ कर उसने यही ठीक किया कि इस घर

में उसका रहना अब उचित नहीं। जब मनोरमा ने सुकुमार बाबू का शिष्यत्व ग्रहण किया है, तब वह प्रायः ही यहां आया आया करेगी। मनोरमा के आने पर उसके साथ साथ इन्द्रनाथ भी जरूर आयगा, क्योंकि मनोरमा विधवा होने के कारण अकेली रास्ते में नहीं निकल सकती है, अतः अब अनीता न्यायतः और धर्म्मतः सुकुमार बाबू के घर में नहीं रह सकती है। इन्द्रनाथ की आंखों के सामने पड़ जाना उसके लिये ठीक नहीं है, और इन्द्रनाथ के लिये भी ठीक नहीं।

यह सोच कर उसका दिल टूट गया। एक बार उसने सोचा—वह जब छोड़ कर जा ही रही है, तो एक बार फिर देख कर, जन्म भर के लिये उससे और एक बार बातें कर, अच्छी तरह क्यों न विदा हो? सोचते ही कल्पना का चित्र नाना रंगों में उसके मानस पट में चित्रित हो गया—परन्तु अपनी कल्पना को संयत कर उसने सोचा—"नहीं, अपने मन का विश्वास करने का और उपाय नहीं है। इस अविश्वासी चित्त को लेकर फिर इन्द्रनाथ से मिलने से मैं जो क्या कर डालूंगी, कुछ ठिकाना नहीं।" अतः उसने इन्द्रनाथ से पुनः मिलने की आकांक्षा का त्याग किया।

अब वह सोचने लगी कि कहां जाय, क्या करे? बहुत देर तक सोचती रही। अंत में स्थिर किया, कलकत्ता छोड़ कहीं चली जाय और किसी दूर स्थान में लड़कियों के किसी स्कूल में सङ्गीत-शिक्षयित्री बन कर जीवन यापन करे।

पर नौकरी लगने में तो देर होगी। इधर परसों ही मनोरमा आ जायगी। इसी बीच में उसे किसी दूसरी जगह चले जाना चाहिये। उसके पार्क स्ट्रीट वाले मकान में किरायेदार लोग हैं, उनको हटाने में भी समय लगेगा। किसी होटल में जाने की उसकी इच्छा न हुई—भीड़ भाड़ में वह जाना नहीं चाहती थी। बहुत सोच कर उसने स्थिर किया कि अपनी मौसी श्यामासुन्दरी के पास चली जाय।

श्यामासुन्दरी उसकी अपनी मौसी नहीं उसकी माता की चचेरी बहन थी। परन्तु उसकी माता जब जीवित थीं तो श्यामासुन्दरी के साथ उनका बहुत मेल जोल था और अक्सर उनके घर जाना आना होता रहता था। उस समय अनीता भी कई बार उनके घर गई थी। उसकी मौसी का घर बागबाज़ार में था। बहुत बड़ा मकान था। श्यामासुन्दरी के स्वामी के पिता ने बड़ी नौकरी कर बहुत रुपये संग्रह किये थे, पर शायद इसी कारण अंत समय में धर्म की ओर उनकी रुचि बहुत जागृत हो उठी थी। उन्होंने अपने घर का अधिकांश भाग पूजा गृह और देवालय में परिणत कर दिया था और केवल एक सामान्य भाग में अपना वास-गृह रक्खा था। उन्होंने वृन्दावन से लाकर बाल-कृष्ण और लक्ष्मीनारायण की दो मूर्तियों की स्थापना की थी, उसके बाद उनके आस पास छोटी बड़ी बहुत सी अन्य मूर्तियां सजाई थीं। अपना यथा-सर्वस्व उन्होंने इन्हीं मूर्तियों की पूजा और सेवा लिये देवोत्तर बनाकर छोड़ दिया था।

पर श्यामासुन्दरी के स्वामी इतने बड़े भक्त नहीं थे और उन्होंने तरुण यौवन में केवल दो ही एक अनाचार किये हों, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। तथापि परिणत आयु में उन्होंने इन सब अनाचारों को त्याग दिया था और शायद इस पाप के दण्ड स्वरूप अपनी विधवा स्त्री के पास और एक विधवा पुत्र-वधु को छोड़ कर वे इस संसार से चल बसे थे। दस वर्ष से विधवा श्यामासुन्दरी अपनी विधवा पुत्र-वधु सुरमा को लेकर संसार में अकेली हैं, और अपेक्षा कृत शान्त चित्त से ही देवता की पूजा और सेवा में अपने दिन व्यतीत कर रही हैं। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। पिता और पुत्र ने मिल कर पैतृक सम्पत्ति को बहुत कुछ नष्ट कर डाला था केवल सो ही नहीं, देवोत्तर सम्पत्ति का अधिकांश भाग भी हस्तगत कर नष्ट कर डाला था।

श्यामासुन्दरी अपने अल्प आय के द्वारा ही संसार यात्रा निर्वाह करती थीं। देवता की सेवा और पूजा में किसी दिन भी कोई त्रुटि नहीं होती थी। दो विधवाओं के लिये और खर्च ही कितना होता! देवता का प्रसाद खाती थीं, और साधारण कपड़े पहन कर बिना आडम्बर का जीवन यापन करती थीं। परन्तु देवता के प्रसाद से पड़ोस के अनेक अनाथ विधवा और दरिद्रों का भी अन्न-संस्थान होता था, तथा होली झूलन इत्यादि के उत्सव में यथाविहित आडम्बर की भी त्रुटि नहीं होती थी। दल के दल कीर्त्तन वाले और कीर्त्तनवालियां आकर प्रत्येक उत्सव में भाग लेती थीं। झूलन के समय महो-

बक्स से रुपया निकालना शुरू भी किया। उनके पुत्र राजलो-चन के कपड़े की दूकान प्रवन्ध बहुत खराब रहने पर भी क्रमशः उन्नति करने लगी।

अनीता ने इन्हीं श्यामासुन्दरी के आश्रय में जाना ठीक किया और उसी दिन सुकुमार बाबू से विदा हो कर चली गई। सुकुमार बाबू ने बहुत कुछ आपत्ति की पर उसने एक न सुनी।

सत्ताईसवां परिच्छेद

अनीता जब कभी श्यामासुन्दरी के पास गई उसे सर्वदा ही यथेष्ट समादर मिला था। आज भी श्यामासुन्दरी और सरमा ने उससे परम समादर से सम्भाषण किया। परंतु अनीता जो अपनी मोटर पर न आकर एक किराये की टैक्सी पर आई है इससे उन्हें आश्चर्य परम हुआ। इसके सिवाय गाड़ी पर से उतरते हुए बक्स और बेडिंग का तात्पर्य्य भी वे न समझ सकीं।

अनीता ने हंस कर कहा, "मौसी, मैं आपके पास रहने के लिये आई हूं।" श्यामासुन्दरी बोलीं, "अच्छी बात है, तो आवो न! यह तो तुम्हारा ही घर न है।"

परन्तु अनीता ने स्पष्ट देखा कि वे दोनों कुछ विमत सी हो उठी हैं। धर्म्म के घर में इस ईसाई लड़की को कहां रक्खा जाय यही वे दोनों सास बधु इस समय सोच रही थीं।

अनीता हिन्दूगृह की कोई खबर नहीं रखती थी। कहां क्या करने से जो अशुद्धि हो जा सकती है, यह उसे बिलकुल नहीं मालूम था। पहले वह आती थी और एक दो घंटे के बाद चली जाती थी, इससे कोई हानि न होती थी। पर अब वह दिन रात यहां रहेगी, चारो ओर घूमती फिरेगी, कब कहां किसको स्पर्श कर अशुद्ध बना डालेगी, यही सोच वे दोनों सास बधू महा अशान्ति बोध कर रही थीं। अनीता को बाधा देने से वह इसे अपना अपमान समझेगी, अतः उनका कुछ विमत सा हो उठना भी स्वाभाविक ही था।

कदाचित इस बात को समझ गई, इस लिये अनीता ने कहा, "माताजी, मैं आपकी इसी कोनेवाली कोठरी में रहूंगी, कोई छूवा-छूत नहीं करूंगी।"

श्यामासुन्दरी को कुछ जान आई। घर में का यही कमरा सब से खराब था, अनीता के समान धनी लड़की को इस कमरे में स्थान देने से ठीक न होता, परन्तु जब वह स्वयं ही ऐसा प्रबन्ध करने लगी तो उन्होंने कोई आपत्ति भी न की।

दोपहर को स्नान करने से पहले सरमाने कहा, "एक गीत गाओ न, सुनूं।"

अनीता गाने लगी—

सखि कहत कौन श्याम नाम ।
व्याकुल होत मोर प्राण ।
सखि, कहत कौन श्याम नाम ।

हरिनाम सुनत हूं जब,
प्रेम से उठत नाच प्राण तब,

दरशन मिलत श्याम के कब,
सफल होत सब गात ।
सखि, कहत कौन श्याम नाम ।

सरमा अवाक् हो कर देखती रही । अनीता के मधुर कण्ठ से कृष्णनाम का गान सुन कर उसका समस्त अन्तर स्निग्ध हो गया । गान के शब्द सुन कर श्यामासुन्दरी भी आ पहुंचीं । सरमा ने प्रसन्न चित्त से कहा, "माता जी, सुनिये, अनीता बहन कैसा अच्छा गाना गा रही हैं ! अनीता और एक गाना गाओ न ।"

अनीता फिर गाने लगी,—

"श्याम प्रेम जागत मम मन में,
विरह ज्वाल दाहत सब तन में,
सखि श्याम प्रेम—।"

इस गाने को सुन कर दोनों विधवाएं रोने लगीं । उनको यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ कि अनीता की आंखों से भी आंसू की धारा बह रही है ।

श्यामासुन्दरी और सरमा दोनों स्नान करने के लिये चली गईं। वे पानी के कल पर जा कर, स्नान कर, कपड़ा धो कर चली आईं। अनीता ने देखा कि कल के पास कोई न था। उसे भी स्नान करने की इच्छा हुई, परन्तु कहां स्नान करे यह उसकी समझ में न आया। घर में कोई बाथरूम या इस तरह का कोई सामान न था, अथच श्यामा-सुन्दरी और सरमा ने जिस प्रकार स्नान किया उसे सोच कर भी उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। एकदम खुले आकाश के नीचे कपड़े खोल कर वह कैसे स्नान कर सकती है। इसके सिवाय, उसके वहां जाने से शायद कल में कोई छूत लग जाय!

बहुत सोच कर उसने सरमा से पूछा, "बहन, मैं कहां जा कर स्नान करूं!" सरमा ने कहा, "कल में जा कर नहा लो न। वहां जाने से कुछ नहीं होगा।" मानों उन लोगों की शुद्धता ही यहां एक मात्र विवेचना का विषय था। अनीता की ओर से खुली कल पर स्नान करने में जो कोई आपत्ति हो सकती है यह उनकी धारणा में ही न समाया था। बहुत सोच विचार कर अनीता अपना साबुन और तौलिया ले कर कल के नीचे गई और मुंह हाथ धो कर चली आई। वह सोचने लगी कि दूसरे दिन भी उसे उसी कल पर ही स्नान करना होगा।

कपड़े बदल कर वह इधर उधर घूमती फिरती अचानक पूजा-गृह की ओर चली गई। पद्मलोचन महाशय वहां बैठ

कर हुक्का पी रहे थे। अनीता को देख "हां, हां, उधर न जाना, उधर पूजा गृह है!" इत्यादि कह कर चिल्लाने लगे।

अनीता संकुचित हो कर जूता खोल कर अग्रसर होने लगी। पद्मलोचन महाशय ने चिल्ला कर कहा, "यह क्या! कहां जा रही हो, तुम्हारे जाने से सब नष्ट हो जायगा, मत जाओ!"

अपमान से अनीता मुंह नीचा किये हुए लौट कर अपने कमरे में चली आई। वहां बैठ कर वह रोने लगी।

पीछे ही पीछे सरमा आकर वहां पहुँची। पद्मलोचन महाशय के साथ जो घटना हुई थी वह सरमा को मालूम हो गई थी। वह पूजा के लिये आरती का प्रबन्ध कर रही थी। ऐसे समय उसने पद्मलोचन की चिल्लाहट सुनी। उस समय वह न उठी, समझी कि कोई अशुद्ध भिखारी पूजा-गृह की ओर जा रहा होगा। पर अपना काम समाप्त कर जब वह बाहर आई, उस समय उसने अनीता के लौटकर जाते देखा। वह झट हाथ धोकर दौड़ी और पद्मलोचन महाराज से बोली, "आप जो किससे क्या कह दिया करते हैं उसका ठिकाना नहीं रहता!"

सरमा ने अनीता के पास जाकर उससे बहुत कह सुन कर उसके आहत हृदय को शान्त किया। उसने स्वयं अनीता को ले जाकर सामने बिठा कर पूजा-गृह में आरती किया। पर अनीता के हृदय पर जो चोट लग चुकी थी उसका पूरा प्रतीकार नहीं हुआ। सरमा ने लक्ष्य किया कि अनीता उस

रात स्नान कर चुपचाप बिना किसी से बोले चाले अपनी कोठरी में चली गई।

उस दिन की शिक्षा से अनीता ने अपने को सम्हाल लिया। फिर उससे कभी ऐसी भूल नहीं हुई और इसी लिये अपमान का कोई कारण भी नहीं हुआ। इसके बाद उसके दिन एक प्रकार सुख ही से व्यतीत होने लगे।

श्यामासुन्दरी और सरमा सारा दिन केवल देवता की पूजा में ही लगी रहती थीं। अनीता को दूर ही से उनकी कार्य-प्रणाली देखने के सिवाय और कोई उपाय न था। अवसर पाकर वे कभी कभी उससे बातचीत करती थीं, और अनीता के मुह से विद्यापति की पदावली सुनकर चरितार्थ भी हो जाती थीं। यहां यह कह देना भी ठीक है कि शुरू हो से वे अनीता के यहां आने का कारण जानने की चेष्टा कर रही थीं परन्तु अनीता इधर उधर की बातें कर उस प्रश्न को उड़ा दिया करती, ठीक उत्तर कभी नहीं देती थी।

इन दो नारियों के दैनिक जीवन की आलोचना कर अनीता को एक विषय को लक्ष्य कर आश्चर्य्य हुआ कि प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक यद्यपि उनके कार्य का अन्त नही था तथापि वे अपने लिये कोई काम न करती थीं। सब काम उनके देवता के लिये, उनकी कृष्ण-मूर्त्ति के लिये थे। वह प्रत्यह देखा करती कि वे किसी दिन भी ऐसा एक काम भी नहीं करतीं हैं जो इस कृष्ण मूर्त्ति को लक्ष्य कर न किया जाता हो।

नई माता जिस प्रकार अपने शिशु को लेकर एक दम तन्मय हो जाती है—खाते पीते उठते बैठते सोते जागते इस सन्तान के अतिरिक्त और किसी बात का सोच उसे नहीं रहता है, श्यामासुन्दरी और सरमा को अपनी देव-मूर्त्ति के प्रति भी ठीक उसी प्रकार का सोच था। किसी अच्छे खाद्य पदार्थ को देखने से कृष्ण-मूर्त्ति के लिये उसे संग्रह करने के लिये उनका मन चञ्चल हो जाता था। अनीता के वस्त्र और अलङ्कार पर उनकी लुब्ध दृष्टि लगी रहती थी। वे अनीता की प्रत्येक वस्तु का मूल्य पूछा करती थीं, और मूल्य सुन कर एक दीर्घ निःश्वास त्याग करती थीं। एक दिन अनीता की एक साड़ी को देख कर सरमा को बहुत लोभ हुआ, मगर उसका दाम सुन कर वह चुप हो गई। उसके बाद वह पद्म-लोचन महाशय के पास खुशामद करने लगी—"इस बार पूजा के उत्सव में उसे सत्तर रुपये देने ही पड़ेंगे।" शुरू शुरू में पद्मलोचन महाशय ने बहुत आपत्ति की, परन्तु अन्त में उन्हें सत्तर रुपये देने ही पड़े। सरमा दौड़ कर अनीता के पास आकर बोली, "बहन, यह साड़ी कहां मिलती है? मुझे एक ला दे सकती हो?" अनीता राज़ी हो गई। सरमा ने रुपये निकाल कर उसे दिये। अनीता ने साड़ी की दूकान पर लिख भेजा, दूसरे दिन साड़ी आ पहुँची।

सरमा आनन्द से नाच उठी। वह साड़ी लेकर पद्मलोचन महाशय के पास गई। वे घर में न थे। उसने अपने छोटे बच्चे

ने राधिका जी की मूर्ति को वह साड़ी पहनवाई, और आनन्द-विह्वल दृष्टि से देर तक उस मूर्ति की ओर देखती रही। अनीता अपने कमरे में खड़ी होकर यह दृश्य देख रही थी। सरसा उसके पास दौड़ आकर बोली, "बहन, कैसा सुन्दर मालूम होता है? राधिका जी कैसी सुन्दर दिख रही हैं। क्यों? कृष्ण जी भी मानो हंस रहे हैं। क्यों न हंसें?"

एक मास पहले अनीता इस प्रकार की धारणा को एक बचपन मान कर हंसी में उड़ा देती, परन्तु आज इसके लिये उसे सरसा के प्रति श्रद्धा हुई।

घर लौट कर उसे एक बात सूझी। उसके गले के हीरे के नेकलेस को देख कर भी एक दिन सरसा को ऐसा ही लोभ हुआ था—परन्तु पांच सौ रुपये दाम जान कर वह चुप हो गई थी। दो दिन के बाद उसने सरसा को अपने घर में बुला कर कहा, "मैं तुम्हारी राधिका को एक उपहार देना चाहती हूं, वे क्या ग्रहण करेंगी? इस साड़ी के साथ वह चीज़ उनकी शोभा दस गुण बढ़ा देगी।"

प्रसन्न होकर सरसा ने पूछा, "क्या?" अनीता ने एक नया नेकलेस निकालकर कहा, "यही! मैंने आज ही इसे दूकान से मंगवाया है। कहो, दूं?" आनन्द से अवाक् होकर सरसा इस सुन्दर अलङ्कार की ओर देखती रही—अपनी सुदूर दुराशा की इस अपूर्व सफलता से उसका हृदय नाच उठा। वह बोली, "बहन, इसका मूल्य जो बहुत है!"

"इससे क्या ? मैं क्या यह दे नहीं सकती हूं ? मेरा और है कौन ?" कहते कहते अनीता की आंखें सजल हो गईं, गले से स्पष्ट स्वर न निकला।

सरमा आनन्द से अधीर हो गई। इस अलङ्कार को लेने के लिये उसका प्राण अस्थिर हो गया, पर उसने आत्म संवरण कर कहा, "नहीं बहन, मां से कहे बिना न ले सकूंगी।"

श्यामासुन्दरी ने कोई आपत्ति न की। राधा जी की मूर्त्ति के गले में यह हीरे का अलङ्कार देख कर सरमा और श्यामासुन्दरी तथा साथ साथ अनीता भी मुग्ध हो गईं।

सरमा ने अनीता से धीरे से कहा, "नारायण तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हो गये हैं, जानती हो! तुम पर उनकी कृपा सर्व्वदा बनी रहेगी।" अनीता भी तो यही चाहती है! उसे भी क्या वह विश्वास मिल सकेगा जिससे वह भगवान को अपने प्रेमास्पद के रूप में देख सके!

एक दिन उसने सरमा से कहा, "बहन, मैं किस तरह तुम लोगों के ऐसा बन सकती हूं? ठीक क्या करने से मैं तुम लोगों के समान देव पूजा कर सकती हूं? कह सकती हो? तुम लोग मुझसे वैसा ही करा लो।" सरमा ने आनन्दित होकर श्यामासुन्दरी से कहा। श्यामासुन्दरी ने सिर हिला कर कहा, "आह, ईसाई लड़की, जिसके जात पात का ठिकाना नहीं, वह कैसे देव पूजा कर सकती है?" अन्त में कहा, "अच्छा, पद्मलोचन महाशय को आने दो, पूछ कर देखूंगी।"

इसके कुछ दिन के बाद झूलन-पूर्णिमा के समय वहां महोत्सव हुआ। देश देशान्तर से वैरागियों का दल आकर महासमारोह के साथ वहां इकट्ठा हुआ। श्यामासुन्दरी उनकी सेवा करने के लिये इधर से उधर घूमने लगीं। जब सारे बाराण्डे में वैरागियों का दल खाने के लिये बैठा तो सरमा ने खिड़की से झांक कर देखा। उस दृश्य को देख कर उसका मुंह आनन्द से पूर्ण हो गया, अनीता भी मुग्ध हो गई।

रात को एक कीर्त्तन वाली का गाना हुआ। कीर्त्तन वाली बहुत अच्छा गाती थी—उसका जैसा सुकण्ठ था, वैसी ही वह स्वाभाविक संगीतरसज्ञ भी थी। अनीता तन्मय होकर उसके मुंह से कृष्ण की प्रेम लीला मुग्ध होकर सुनने लगी। प्राय: सारी रात कीर्त्तन हुआ। अनीता सारी रात कीर्त्तन सुनती रही।

गाना समाप्त होने के बाद अनीता ने कीर्त्तन वाली को बुला कर कहा, "तुम धन्य हो कि ऐसा गा सकती हो। बहन, तुमने किससे गाना सीखा!"

गायिका ने कहा, "मेरे गुरु राधागोविन्द गोस्वामी जी हैं।"

अनीता ने सुना था कि गोस्वामी राधागोविन्दजी प्रसिद्ध गायक और कवि हैं, वे महाधार्मिक पुरुष हैं और उनका निवासस्थान नवद्वीप में है।

अनीता पद्मलोचन महाशय से ज़िद कर बैठी कि वह राधागोविन्द गोस्वामी से कीर्त्तन सीखेगी। पद्मलोचन महा-

शय ने भी उत्साहित होकर सम्मति दे दी। उनके उद्योग से दूसरे सप्ताह ही राधागोविन्द गोस्वामी जी आ पहुँचे और लक्ष्मीनारायण को अपना कीर्त्तन और भजन सुनाने लगे।

अनीता के बहुत जिद करने पर गोस्वामी जी ने उसे शिक्षा देना भी स्वीकार कर लिया।

उन्तीसवां परिच्छेद

मनोरमा ने कहा, "भैया, मैं दीक्षा लूंगी।"

इन्द्रनाथ बैठ कर एकाग्र मन से एक दर्शन की किताब पढ़ रहा था। सामने मनोरमा बैठी बहुत देर से एक किताब को इधर उधर कर रही थी परन्तु पढ़ नही रही थी।

इस बात को सुनकर इन्द्रनाथ चौंक उठा। बोला, "दीक्षा लेगी? कैसी दीक्षा?"

मनोरमा ने मुंह नीचा कर मृदुस्वर से कहा, "सुकुमार बाबू से दीक्षा लूंगी।"

"सुकुमार बाबू से दीक्षा? यह कैसी बात? क्या तू ब्राह्म धर्म ग्रहण करेगी?"

"हां।"

"तू ब्राह्म बनेगी, क्या?" मानो उसके सिर पर आकाश टूट पड़ा। एक महीने से भी अधिक हुआ कि मनोरमा सुकुमार बाबू के घर आना जाना करती है। इन्द्रनाथ ने सन्तुष्ट चित्त से मनोरमा को आने जाने की आज्ञा दी है। यद्यपि सुकुमार बाबू के विचारों के साथ उनके विचारों का बहुत पार्थक्य था, और उसने दो एक बार सुकुमार बाबू द्वारा लिखे ग्रन्थों की तीव्र समालोचना भी की थी, और यद्यपि सुकुमार बाबू की सङ्कीर्णता और अभिमान के कारण उनसे कुछ अश्रद्धा भी करता था, तथापि मनोरमा के वहां जाने आने में उसको आपत्ति न थी, क्योंकि वह देख रहा था कि सुकुमार बाबू के संस्पर्श से मनोरमा का उपकार ही हो रहा है।

अब मनोरमा दुःखित हो कर बैठी शून्य की ओर देखती नहीं रहती थी। वह हंसती खेलती फिरती थी, उसके मन से एक बड़ा भार उतर सा गया था। सुकुमार बाबू के धर्म में दुःख उठाने का कोई स्थान न था। सुकुमार बाबू आशा और आनन्द पर बहुत जोर देते थे। उनके मुंह से अनुताप मधुर हो जाता था, प्रायश्चित्त सुन्दर रूप में प्रकाश होने लगता था। उनके सभी उपदेशों से चित्त में विश्व देवता की क्षमा-सुन्दर स्नेहमूर्त्ति विराजमान हो उठती थी। वह मूर्त्ति मनोरमा के दुख और शोक को दूर कर देती थी, उसके मन के ताप को शान्त कर देती थी। मनोरमा ने अब प्रतिक्षण उस क्षमामय

प्रेममय परम देवता की निकटता को अनुभव कर अपने अन्तर में एक अपूर्व प्रफुल्लता का भास किया था। उसके व्यवहार में जो एक जड़ता सी आ गई थी वह अब अदृश्य हो गई थी, बल्कि वह पहले से अधिक कोमल स्नेहशील और सेवा-परायण हो गई थी। इसीसे इन्द्रनाथ भी प्रसन्न था। परन्तु अब तो यह सर्वनाश की बात है! वह यदि ब्राह्म बन जायगी तो क्या होगा। इससे भी अधिक यह चिन्ता उसके मन में व्याप उठी कि अगर उसके माता पिता इस समाचार को सुनेंगे तो उन्हें कितनी वेदना होगी।

मनोरमा ने हँस कर कहा, "क्यों न बनूं, भैया? मैं तो ब्राह्म हूं ही जो! मैं अन्तर से जो हूं उसे बाहर प्रकाश करने में कुण्ठित क्यों रहूँ? तुम भी तो अपने अन्तर से ब्राह्म हो, बल्कि मैं तो यह पूछती हूं कि तुम भी ब्राह्म धर्म में दीक्षित क्यों नहीं हो जाते!"

इन्द्रनाथ ने भौंहें सिकोड़ कर कहा, "मनोरमा, तू भूल रही है! न तो तू ब्राह्म है और न मैं ही हूँ। मेरा धर्म्म किसी सम्प्रदाय में आबद्ध नहीं है। वह तो सार्वजनीन है—सनातन है।"

"ब्राह्म-धर्म भी सार्वजनीन है, सनातन है। ब्रम्हानन्द केशवचन्द्र ने अपने नवविधान में विशेष रूप से उसके इस सार्वजनीनत्व ही को प्रकाश किया है।"

"यह सोचना तुम्हारी भूल है, मनो, धर्म्म सार्वजनीन हो

सकता है, परन्तु जब उसी धर्म्म को एक विशेष प्रकार की उपासना-पद्धति में बांध दिया जाता है, जब उसे एक दीक्षा के भीतर से ले जाया जाता है, तब वह सार्वजनीन नहीं रह जाता बल्कि संघधर्म्म बन जाता है। ब्राह्मधर्म्म के ऊपर, विशेषतः नवविधान के ऊपर मेरा प्रधान अभियोग यही है कि जिसे एक मुक्ति का क्षेत्र होना उचित था वह एक बन्धन का स्थान हो गया है, जिसे सार्वजनीन होना चाहिये था वह साम्प्रदायिक हो गया है। मुझे विश्वास नहीं है कि राजा राम मोहनराय का यही आदर्श था।"

"जाने दो, इस बात को लेकर तर्क करना व्यर्थ है! नव-विधान सङ्कीर्ण ही हो, तौ भी मैं इसे सत्य समझती हूँ, और इसलिये इसे ग्रहण करना ही मेरा कर्त्तव्य है।"

आवेग के साथ इन्द्रनाथ ने कहा, "तू इसे सत्य नहीं मान सकती है। तू भूल कर रही है, सुकुमार बाबू की बातों को सुन कर तू चकाचौंध में पड़ गई है।"

"नहीं भैया, वह बात कभी नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि अब तक मैं अन्धकार में घूम रही थी और अब मुझे प्रकाश का सन्धान मिला है।"

"प्रकाश नहीं, मनो अंधकार! सुकुमार बाबू के समान सङ्कीर्णचेता अन्धविश्वासी पुरुष के पास तू सत्य का प्रकाश न पा सकेगी।"

गुरुनिन्दा सुन मनोरमा को क्रोध हो आया। वह बोली,

"भैया, सुकुमार बाबू की निन्दा करते हो ? वे शायद तुम्हारे समान पण्डित नहीं हों, परन्तु वे विश्वासी और सत्यनिष्ठ हैं। वे जिसको सत्य समझते हैं, उसी पर विश्वास करते हैं, जिस पर विश्वास करते हैं, वही कहते हैं और करते हैं। तुम ढेर का ढेर ग्रहण किया हुआ ज्ञान सञ्चय किए हुए हो, पर उसे जीवन में प्रयोग कब करते हो ? तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे स्वीकार कहां करते हो ? विश्वास और आचार में जब तुम हिन्दू नहीं हो, तब तुममें सत्य कहां है ?"

इन्द्रनाथ ने कहा, "भूल, मनोरमा, तू फिर भूल कर रही है। मैं सत्य को कभी अस्वीकार नहीं करता हूं। हिन्दू धर्म ने आस्तिक से लेकर नास्तिक तक सब को स्थान दिया है। इसी लिये मैं अपने समाज और अपनी जाति को क्यों छोड़ने जाऊं ? मैं हिन्दू ही रहूँगा—हिन्दू जाति की उन्नति के लिये मुझे हिन्दू ही रहना पड़ेगा।"

तर्क चलता रहा। बहुत रात तक दोनों तर्क करते रहे। पर अन्त तर्क की मीमांसा न हुई। आखिर इन्द्रनाथ ने मनोरमा को एक अंगरेजी पुस्तक देकर कहा, "तू इस पुस्तक को खूब अच्छी तरह पढ़ ले, उसके बाद जो हो सोच विचार कर मुझसे कहियो।" मनोरमा ने इसे स्वीकार कर लिया, परंतु उसकी ज़िद बढ़ती ही गई—वह भाई से सम्मति ले कर ही छोड़ेगी, और यदि हो सके तो भाई को भी साथ लेकर दोनों एक साथ दीक्षा ग्रहण करेंगे, यही अब उसे ज़िद पड़ गई।

इन्द्रनाथ को उस रात नींद नहीं आई। उसका हृदय टूट गया। मनोरमा के धर्मत्याग के प्रस्ताव ने उसके प्राण में एक भीषण आघात किया। बहुत कुछ सोच विचार कर अन्त में उसने दूसरे दिन गुप्त रूप से अपने पिता को एक टेलिग्राम किया।

तीसवां परिच्छेद

दूसरे दिन इन्द्रनाथ जब घूम फिर कर रात को घर लौटा उस समय अचानक उसे मालूम हुआ कि मनोरमा और उसका पुत्र घर में नहीं है। वह सिर पर हाथ धर कर बैठ गया।

उसे एक भयङ्कर बात ख्याल आई। यह केवल धर्मोन्माद है या सर्वनाश? कोई चक्री पाषण्डी उसकी भगिनी को खा तो नहीं बैठा? वह तो उससे बार बार कहा करता था कि "मनोरमा, यदि तू विवाह करना चाहे, तो मैं तेरा विवाह करा दूंगा।" तब? वह कहां चली गई? किसके साथ चली गई? क्यों चली गई? यदि उसे यह भी मालूम हो जाय कि वह सुकुमार बाबू के पास चली गई है तो भी उसके जी में जी आय। परन्तु यदि वह वहां तक न पहुँच सकी हो, यदि इस विशाल महानगरी के जन-प्रवाह में वह खो गई हो, गुण्डों

के हाथ में पड़ गई हो, तब ? वह तो आज तक कभी रास्ते में अकेली निकली तक नहीं है !

इन्द्रनाथ इसी प्रकार की हजारों बातों को सोचने लगा। उसके सिर में आग के समान ज्वाला होने लगी। यकायक वह कूद कर उठ खड़ा हुआ। सरयू बोली, "शान्त हो जाओ, हल्ला कर सारे पड़ोस को जगाने से कोई फायदा नहीं है।" पर वह बोला, "मैं सुकुमार बाबू के घर जा रहा हूं।"

वह झट बाहर निकल पड़ा। चलते चलते चारों ओर व्यग्र होकर देखने लगा। उसकी इच्छा हो रही थी कि रास्ते के लोगों को बुला कर पूछे कि उन्होंने मनोरमा को देखा है या नहीं ? उसके समान किसी लड़की के साथ कोई गड़बड़ी की बात सुनी है या नहीं ? परन्तु लज्जा के मारे वह ऐसा कर न सका।

उसे ऐसा मालूम होने लगा मानों रास्ते की लम्बाई बढ़ रही है, उसका कहीं अन्त ही नहीं हो रहा है। लाचार उसने एक गाड़ी भाड़ा किया, परन्तु उसे ऐसा मालूम हुआ कि गाड़ी भी बहुत धीमी धीमी चल रही है।

आखिर गाड़ी सुकुमार बाबू के घर पहुँची। इन्द्रनाथ गाड़ी से कूद कर उतरा। जेब में हाथ डाल कर देखा कि पैसा लाना भूल गया है, गाड़ीवान को भाड़ा देने का कोई उपाय नहीं। उसने सुकुमार बाबू का दरवाज़ा खटखटाया।

बहुत देर तक दरवाज़ा हिलाने के बाद अन्त में ऊपर की

एक खिड़की से मुंह निकाल कर सुलता बोली, "कौन है ? क्या है ?"

इन्द्रनाथ ने चिल्ला कर पूछा, "मनोरमा यहां आई है ?"

सुलता ने कहा, "कौन मनोरमा ? यहां कोई नहीं आया है !"

"तब वह कहां है ?"

क्रुद्ध होकर सुलता बोली, "मैं क्या जानूं !!" कह कर वह जाने लगी।

इन्द्रनाथ ने पागल के समान चिल्ला कर कहा, "सुकुमार बाबू, सुकुमार बाबू कहां हैं ? मैं उनके साथ अभी मिलना चाहता हूं !"

"वे सो रहे हैं, उनकी तबीयत ठीक नहीं है।" कह कर सुलता ने खिड़की बन्द कर दी।

इन्द्रनाथ ने फिर चिल्ला कर कहा, "सुकुमार बाबू सुकुमार बाबू ! मैं बहुत विपद में पड़ा हुआ हूं। मुझसे मिलना ही होगा—सुकुमार बाबू, ओ सुकुमार बाबू !!"

सुलता डर गई, उसे मालूम हुआ कि यह पागल हो गया है। बहुत पुकारने के बाद सुकुमार बाबू की निद्रा भङ्ग हुई। वे उठ कर बोले, "सुलता, कौन पुकार रहा है ?"

"क्या मालूम ! कोई पागल है या नशे में है।"

सुकुमार बाबू उठ कर बैठ गये, बोले, "क्या चाहता है ?"

"पूछता है कि मनोरमा यहां आई है या नहीं। मालूम नहीं यह मनोरमा उसकी कौन है !"

"मनोरमा ! यह क्या ! देखें ज़रा लालटेन लाओ तो ?"

लालटेन लेकर सुकुमार बाबू नीचे उतरे। दरवाज़ा खोलते ही इन्द्रनाथ उनके पैरों पर आकर गिर पड़ा और बोला, "दया कीजिये सुकुमार बाबू—कहिये, मनोरमा कहां है ?"

धीरे धीरे इन्द्रनाथ को उठा कर सुकुमार बाबू ने कहा, "मैं आपकी बातों को कुछ नहीं समझ पा रहा हूं, इन्द्रनाथ बाबू! मनोरमा मेरे घर में क्यों आवेगी ! वह यहां कहां है ?"

सुकुमार बाबू की बात सुन इन्द्रनाथ की अन्तरात्मा रो उठी। तब मनोरमा यहां नहीं आई ! तब क्या वह अतल जल में डूब गई ! इन्द्रनाथ के मुंह से कोई बात न निकली।

सुकुमार बाबू ने पूछा, "क्या उसके मेरे यहां आने की कोई बात थी ?"

इन्द्रनाथ ने कहा, "आने को बात तो नहीं थी मगर—वह आपसे दीक्षा लेना चाहती थी।"

"हां, उसने एक बार ऐसा कहा था, पर केवल साधारण रूप से ही, अभी कुछ स्थिर नहीं हुआ था।"

"मैंने उसे बाधा दी थी। मुझे सन्देह हुआ कि इसी लिये शायद वह आपके पास भाग आई हो।"

सुकुमार बाबू ने हंस कर कहा, "क्या आप मुझे कोई पादरी साहब समझ रहे हैं इन्द्रनाथ बाबू! क्या आप यह समझते हैं कि मनोरमा को दीक्षा देने या न देने में मेरा कोई स्वार्थ है ?"

इन्द्रनाथ कोई बात न बोला। सुकुमार बाबू कहने लगे,

"इसके सिवाय, यदि उसे यहां आना ही हो तो भाग कर क्यों आयगी ? वह तो आपके साथ भी आ सकती थी।"

इन्द्रनाथ इस विषय में निश्चित होकर कुछ कह न सका, उलटा इस मनुष्य के शान्त भाव को देख कर वह कुछ विरक्त सा हो गया। वह अपनी मर्मभेदी आशङ्का से मर रहा है, उपाय सोच सोच कर अस्थिर हो रहा है, और यह मनुष्य अत्यन्त शान्त होकर बैठकर फजूल की बातों को लेकर आलोचना कर रहा है। वह उठ कर चलने के लिये तैयार हो गया।

अचानक एक बात याद आने पर इन्द्रनाथ बोला, "एक बात सुनिये। अनीता कहां है? मनोरमा को क्या उसका पता मालूम है? शायद वह उसी के यहाँ न चली गई हो!"

सुकुमार बाबू ने कहा, "मैं सुलता से पूछता हूं।" पर उन्हें इसके लिये ऊपर न जाना पड़ा। सुलता वहीं अंधेरे में सीढ़ी पर ही खड़ी होकर सब बातें सुन रही थी। अब वह नीचे उतर आई और इन्द्रनाथ से बातें करने लगी। उसे अनीता का पता मालूम था। वह उसने बता दिया और साथ साथ, बात ही बात में, इशारे से, यह भी कहा कि—उसे विश्वास है कि मनोरमा को अमल से कुछ प्रेम हो गया था।

पर यह सुलता की एक दम बनाई हुई बात थी। मनोरमा ने उससे किसी दिन भी कोई ऐसी बात नहीं कही थी जिससे अनुमान किया जा सके कि अमल से उसे प्रेम है, पर वह बात बात पर अमल का नाम लिया करती थी, अनेक बार

"अमल के घर की बात, अमल और अनीता की बात, कहा करती थी। वर्त्तमान घटना का इससे सम्बन्ध लगाकर भाव-प्रवण सुलता ने अपने मन ही मन कल्पना करके अनायास कह दिया, "अमल मनोरमा का प्रेमी है।"

मगर इतना सुन इन्द्रनाथ का तो सिर चक्कर खा गया। यह भी क्या सम्भव हो सकता है! अमल क्या उसका ऐसा सर्वनाश कर सकता है! उसका प्राण से भी प्रिय मित्र अमल, उसका आदर्श अमल, जिसकी छवि उसके प्राण में एक दिन के लिये भी म्लान नहीं हुई थी, वह क्या ऐसा कर सकता है! मगर उसने सोच कर देखा कि अमल क्यों नहीं कर सकता? सच बात चाहे जो कुछ भी हो, अमल को जब यह विश्वास है कि इन्द्रनाथ ने विश्वासघात कर उसकी भगिनी का धर्मनाश किया है तब वह प्रतिशोध लेने के लिये भी तैयार हो सकता है! मगर क्या वह ऐसा नीच हो जायगा?

इन्द्रनाथ से खड़ा न रहा गया। वह सीधा अमल के घर दौड़ा।

बहुत कष्ट से अमल के नौकर-चाकरों को उठा कर पूछपाछ करने पर उसे मालूम हुआ कि अमल घर में नहीं है। दार्जि-लिंग गया है। पूछने पर यह भी मालूम हुआ कि आज ही की डाक गाड़ी से।

इन्द्रनाथ सर पर हाथ धर कर बैठ गया। उसे याद आया कि शाम को चार बजे के बाद किसी ने मनोरमा को नहीं देखा

है, और पांच बजे दार्जिलिंग मेल सियालदह स्टेशन से छुटती है—सर्वनाश !!

धूल झाड़ कर उठ कर उसने बेयरा से कहा, "साहेब का पता क्या है ?"

बेयरा ने पता बताया। इन्द्रनाथ चला गया।

दो बजे रात को इन्द्रनाथ अर्द्ध उन्मत्त अवस्था में घर लौट आया। उसकी सूरत देख सरयू को डर लगने लगा।

"क्यों, वह कहां गई है ? उसका लड़का कहां है ? मुझे बताओ, कुछ तो बताओ !" सरयू की आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं।

इन्द्रनाथ ने शान्त होकर कहा, "सरयू, क्या बताऊं, इस बात को सोच कर छाती फटने लगती है। मनोरमा शायद अमल के साथ दार्जिलिंग भाग गई है।"

इन्द्रनाथ रोने लगा। सरयू भी नीरव होकर अश्रुविसर्जन करने लगी।

दूसरे दिन सवेरे इन्द्रनाथ ने देखा, उसके टेबल पर एक टेलिग्राम का लिफाफा पड़ा हुआ है पर सारे घर को ढूंढ़ कर भी उसे उस लिफाफे के भीतर का टेलिग्राम नहीं मिला। उस सोचा हो न हो यह टेलिग्राम उसके पिता के पास से आया होगा, वह इसी टेलिग्राम की प्रतीक्षा भी कर रहा था। मगर लिफाफे के भीतर का टेलिग्राम गया कहां ?

तंग आ कर उस लिफाफे को लेकर टेलिग्राफ आफिस में पहुंचा। पोस्टमास्टर को बहुत हाथ पैर पड़ने बाद उसे टेलि-

ग्राम का मजमून मालूम हुआ। उसके पिता ने तार दिया था—"उसको ताले में बंद करके रक्खो। हम लोग रवाना होते हैं।" यह टेलिग्राम मनोरमा के हाथ में पड़ गया होगा, और शायद इसी डर से वह भाग गई है!

कल उसके माता पिता आयेंगे। वह कैसे उनसे यह विपत्ति की बात कहेगा। मनोरमा को खोकर वह कैसे उनके सामने खड़ा हो सकेगा! हां, एक बात है, मनोरमा को खोजने उसे दार्जिलिङ्ग जाना होगा। कम से कम दो तीन दिन वह माता-पिता का सामना करने से बच सकेगा, यह सोच कर उसे बड़ी शान्ति मिली। वह दार्जिलिङ्ग जाने के लिये उसी वक्त तैयार हो गया।

× × ×

दार्जिलिंग में डाकगाड़ी पहुंचने के समय वहां के स्टेशन पर दार्जिलिंग प्रवासियों की बडी भीड़ होती है। गाड़ी ठहरने से पहले ही इन्द्रनाथ ने अमल को भीड़ में देखा। मगर उसके साथ वह कौन? रेशमी का साडी पहिने? इन्द्रनाथ ने जोर लगा कर अपना मुंह फिरा लिया—शायद अमल के साथ मनोरमा को देख उसकी आंखों से आंसू निकल आवे, इसी भय के कारण उसे अमल की ओर देखने का साहस नहीं हुआ। परन्तु चलती हुई गाड़ी से वह कूद कर उतर पडा। जहां अमल को खड़े देखा था, वहीं दौड़ के पहुंचा। एक बार साहस कर अमल के साथ वाली मूर्त्ति की ओर दृष्टिपात किया। उसके जी में

ती आया। मनोरमा नहीं थी—कोई नहीं था। एक पहाड़ी कुली लिहफ का ओढ़ना कंधे पर डाले खड़ा था। इस भयानक आशङ्का से मुक्त होकर इन्द्रनाथ को इतना आराम मालूम हुआ कि वह अमल पर क्रोध दिखलाना तक भूल गया। उसने केवल उससे इतना पूछा, "अमल, मनोरमा कहां है?"

अमल चौंक उठा, आश्चर्य से बोला, "मनोरमा! क्यों! वह यहां कहां? क्या आई है?"

इन्द्रनाथ ने कहा, "कहां है यह तो तुम्हें ही मालूम होगा! कल तुम्हीं न उसे ले आये थे?"

आश्चर्य के साथ अमल ने कहा, "मैं! मनोरमा को ले आया! इन्द्रनाथ, तुम क्या पागल हो गये हो!!"

इन्द्रनाथ दोनों हाथ सर पर रख कर बैठ गया। कठिनता से उसके मुंह से निकला—"अब तक पागल नहीं हुआ था अमल, पर शायद अब हो जाऊं। अमल, मुझ पर दया करो! मुझे क्षमा करो! दया कर मुझे मेरी बहन लौटा दो!!"

पथ की क्लान्ति और उत्कण्ठा से इन्द्रनाथ का मुंह सूख गया था, आंखें लाल हो गई थीं, उसके कपाल की शिराएं फूल गई थीं। उसकी यह हालत देख कर अमल का प्राण रो उठा। उसने इन्द्रनाथ को पहिले ही से क्षमा कर रक्खा था, केवल अनीता की मान-रक्षा के लिये अबतक उससे क्षमा भिक्षा नहीं की थी। पर इस समय उसकी यह दुरवस्था देख उसका पुरातन स्नेह पुनः जाग उठा। उसने इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर कहा,

"चलो, मेरे घर चलो। तुम बड़ी भयानक बात कह रहे हो। स्थिर होकर सब सुनना होगा—चलो।" वह इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर ले चला। एक कुली को इन्द्रनाथ का बक्स और बेडिंग ले चलने के लिये कहा।

अमल का घर स्टेशन से बहुत दूर था। उसके लिये घोड़ा सजा हुआ था। इन्द्रनाथ के लिये उसने और एक घोड़ा भाड़ा किया। दोनों साथ साथ चले।

इन्द्रनाथ के सिर में चक्कर आ रहा था। अमल के मुंह की अवस्था देख कर उसे विश्वास हो गया कि मनोरमा चाहे कहां भी गई हो पर कम से कम अमल के साथ नहीं आई है। मगर तब यह कैसी भयानक बात है! न मालूम उसका क्या सर्वनाश हुआ है! उसे उसी समय कलकत्ते लौट जाने की इच्छा हुई। मगर कल से पहले कोई गाड़ी जाने वाली नहीं है, अमल से ऐसा सुन कर उसकी छाती फट गई।

यहां अमल का प्राण भी घबराहट से भर गया था। मनोरमा ने गृह त्याग किया है! आदर्श विधवा, आदर्श हिन्दू-रमणी, स्नेहमयी भगिनी, मनोरमा—भ्राता के स्नेह का आश्रय छोड़ कर चली गई है!! उसे विश्वास न हो सका। सोचा, जरूर इसमें कोई भूल हुई है। रास्ता चलते हुए उसने इन्द्रनाथ से एक एक कर प्रश्न करते करते क्रमशः सब कुछ मालूम कर लिया। सब बातों को सुन वह बहुत गम्भीर हो गया।

घर में आकर वह एक कुर्सी पर बैठ गया, इन्द्रनाथ भी

किसी तरह और एक कुर्सी खींच उस पर बैठ गया। बहुत देर तक चुप रहने के बाद अमल ने कहा, "अनीता का कुछ पता मिला है?" "हां" कह कर इन्द्रनाथ ने उसका पता बताया, वही जो सुकुमार बाबू की लड़की से सुना था।

"ओह, मौसी के घर पर है! वहां तुमने उसको ढूंढ़ा था?"

"नहीं।"

बहुत देर तक चुप रहने के बाद अमल ने कहा, "देखो, मुझे तो विश्वास होता है कि मनोरमा का पता उस सुकुमार बाबू से ही मिलेगा। उस पर मुझे कभी भी श्रद्धा न थी, और अब तो और भी कम हो गई है। मनोरमा जरूर उसी के पास गई है। और उसकी वह लड़की भी जरूर इस षड़यन्त्र के भीतर है। उसने तुमसे ऐसी बात कह दी—कि मनोरमा मुझसे प्रेम करती है!! वह कैसे ऐसी झूठी बात बोल सकती है कि मैं उसका प्रेमी हूँ! यह केवल तुमको धोखा देने के लिये ही सब षड़यंत्र किया गया है—और कोई बात नहीं है। मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि मनोरमा और कहीं नहीं सुकुमार बाबू ही के पास गई है, और अभी तक भी वहीं है!"

अमल की बात को सुन इन्द्र को बहुत कुछ ढाढ़स हुआ। अमल की बुद्धि पर इन्द्रनाथ को बहुत विश्वास था, अस्तु उस समय वह जिस सिद्धान्त पर पहुँचा था, वह इन्द्रनाथ को इतना अच्छा मालूम हुआ कि उसने झट उसे मान लिया। उसका प्राण बहुत हल्का हो गया।

अमल उठ कर बोला, "अच्छा तो चलो फिर कल चला जाय। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूं कि परसों दोपहर के पहिले मैं सुकुमार बाबू के पंजे से मनोरमा को ढूंढ़ निकालूंगा। अब उठो, स्नान करो, चाय पीने का समय हो रहा है। अब चिन्ता छोड़ दो!"

अमल ने उसे स्नानागार में भेज दिया और अपने खानसामा को बुला कर भोजन लाने के लिये कहा। निकट के होटल से उसने और भी बहुत कुछ खाद्य द्रव्य मंगवा लिया। इन्द्रनाथ ने बाथरूम से निकल कर देखा कि उसके लिये तरह तरह की भोजन की सामग्रियां टेबल पर सजी हुई हैं।

अब उसका मन बहुत कुछ शान्त हो गया था। उसे बड़ी भूख भी लगी थी। उसने पेट भर भोजन किया।

दूसरे दिन अमल और इन्द्रनाथ कलकत्ते के लिये रवाना हुए। आज इस विपत्ति में दोनों मित्रों के भीतर का विच्छेद अदृश्य हो गया। एक बार अमल को लिएडले की बातें याद आईं— अनीता की बात भी याद आई। इन्द्रनाथ तो लौटा, परन्तु अनीता भी क्या फिर लौटेगी?

बत्तीसवां परिच्छेद

शाम को इन्द्रनाथ के टहलने चले जाने के बाद मनोरमा अपने पाठागार में बैठ कर एक पुस्तक के पन्ने उलट रही थी कि इतने में किसी ने दर्वाजा खटखटाया। मनोरमा ने दर्वाजा खोल कर देखा, तार पियन है। सही कर उसने तार ले लिया और खोल कर देखा। उसके पिता का टेलिग्राम था। पढ़ कर वह स्तम्भित हो गई। पिता जी ने लिखा था, "तुम्हारे समाचार से बहुत दुःख हुआ। उसको ताले में बंद कर के रक्खो, हम लोग रवाना होते हैं।"

मनोरमा का सारा मुंह पीला हो उठा। यही उसका सत्यनिष्ठ भ्राता है! उसे झूठी बातों में भुला कर उसने माता पिता को टेलिग्राम किया है, मनोरमा को रोकने का उपाय बताने के लिये! एक क्षण के लिये उसका सारा हृदय घृणा और अवज्ञा से पूर्ण हो गया। उसका भ्राता इतना नीच, इतना हीन, इतना सङ्कीर्ण हृदय है!!

वह झट ऊपर चली गई और कपड़े जूता मोजा इत्यादि पहन नीचे चली आई। अपने लड़के को भी कपड़े पहना कर उसके पास जो कुछ अलङ्कार रुपये पैसे आदि थे सब को बेग में लेकर अपने लड़के का हाथ पकड़ कर वह रास्ते में निकल पड़ी।

कहां जायगी क्या करेगी, अब तक उसने कुछ सोचा न था। क्रोध की झोंक में घर से बाहर निकल अब प्रति पदक्षेप में उसका शरीर कांपने लगा। बार बार वह शङ्कित चित्त से चारों ओर घूम फिर कर देखने लगी। किधर जाय, क्या करे?

आखिर ट्राम-लाइन पार कर वह एक ट्राम पर चढ़ गई। चढ़ के ही उसने चारों ओर देखा कि कहीं कोई परिचित मुंह दिखलाई पड़ता है या नहीं। उसने जो आशङ्का की थी वह तो न देख पाया परन्तु एक व्यक्ति को देख वह उत्साहित हो गई। वे ब्रह्मसमाज के एक उपाचार्य्य सत्यकिङ्कर बाबू थे, मनोरमा इन्हें सुकुमार बाबू के घर अकसर देखा करती थी।

उसे आशङ्का थी कि सुकुमार बाबू के पास जाने से शायद उसे दीक्षा मिलने में कुछ बाधा हो। बहुत आग्रह प्रकाश करने पर सुकुमार बाबू उसे दीक्षित करने के लिये राजी हो गये थे, परन्तु उन्होंने बार बार कहा था, "पहले अपने मन को ठीक से समझा लो! अपने माता, पिता, भ्राता को छोड़ कर यदि तुम आ सको, तुम्हारे प्राण में यदि इतना बड़ा आकर्षण हुआ हो, तभी तुम दीक्षा लो नहीं तो नहीं। यदि एकान्त मन से तुमने समझा हो कि यही सत्य पथ है और सत्य के अतिरिक्त

मनोरमा ने कहा, "हां।"

"आप सुकुमार बाबू के यहां जा रही हैं?"

"हां—नहीं—आपके घर जाऊंगी ऐसा सोच रही थी।"

"मेरे घर? मेरा घर तो ठीक दूसरी ओर है?" कह कर सत्यकिंकर बाबू हंसने लगे।

मनोरमा का मुंह लाल हो गया, उसने बहुत कष्ट से आत्म-संवरण कर कहा, "आप कहां जा रहे हैं?"

"मैं सुकुमार बाबू के यहां जा रहा हूं।"

मनोरमा ने बहुत व्याकुल होकर कहा, "जाना बहुत जरूरी है क्या? मुझे आपसे कुछ जरूरी काम है। यदि दया कर मुझे एक बार अपने घर ले चलते तो बहुत अच्छा होता।"

सत्यकिंकर बाबू ने सन्दिग्ध दृष्टि से मनोरमा की ओर देखा। उन्होंने इसको सुकुमार बाबू के घर बहुत बार देखा था और वहां उसके साथ इनका कुछ परिचय भी हुआ था। उन्होंने सुना था कि मनोरमा असाधारण बुद्धिमती और धर्मशीला है, पर इससे अधिक कुछ नहीं। इससे कोई घनिष्टता उनकी अभी न हुई थी। इस अल्प परिचय से जो एक अज्ञात-वंशज युवती उनके घर जाना चाहती है, यह ठीक नहीं है, विशेष कर इस लिये कि सत्यकिंकर बाबू अविवाहित हैं और एक छोटे से घर में अकेले रहते हैं।

उनकी सन्दिग्ध दृष्टि को देख कर मनोरमा भी कुछ भय-भीत हो उठी। वह मस्तक अवनत कर बैठी रही।

अन्त में सत्यकिंकर ने कहा, "यदि आपको कोई आवश्यक बात ही कहनी हो तो उस विधवाश्रम में चली चलिये। वहां बैठ कर हम लोग मजे में बातचीत कर सकेंगे।"

मनोरमा का मुंह उज्वल हो गया। उसने कहा, "वह क्या विधवाश्रम है ? तो चलिये वहीं चला जाय। क्या मैं वहां रह भी सकती हूं ?"

सत्यकिंकरने कुछ अन्यमनस्कसे होकर कहा, "हां हां, इसमें क्या बाधा है !"

दोनों ट्राम से उतर कर विधवाश्रम में गये। वहां पहुंचते ही मनोरमा ने कहा, "आपसे मेरी दो प्रार्थनाएं हैं। इस लड़के को साथ लेकर मेरे कहीं रहने का कोई प्रबन्ध कर दें, और मुझे कल सवेरे ही ब्राह्मधर्म में दीक्षित कर लें।"

सत्यकिंकर ने सिर खुजलाते खुजलाते कहा, "क्षमा करेंगी—आपके प्रस्ताव से मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है। मेरा आपका कुछ विशेष परिचय नहीं है। आप सुकुमार बाबू के पास क्यों नहीं जातीं ?"

यह बात यथेष्ट सज्जनता के साथ कही जाने पर भी इससे मनोरमा का अन्तर आहत हो गया। उसकी आंखें अश्रुमय हो गईं। बहुत कठिनता से उसने कहा, "मैं उन्हीं के पास जाऊंगी, परन्तु अभी दो चार दिन जाने में कुछ बाधा है, इसी लिये आपसे प्रार्थना कर रही हूं।"

सत्यकिङ्कर मनोरमा की उत्तेजित मूर्त्ति को देख कर कुछ

मुग्ध से हो गये। उनके मन में एक रहस्यमयी कल्पना अर्द्ध-गठित सी होकर उठ पड़ी। उन्होंने कहा, "परन्तु खोल कर साफ साफ न बोलने से मैं आपके अनुरोध की रक्षा किस प्रकार कर सकूंगा?"

हाय! यह भी मनोरमा के भाग्य में था! आखिर उसने सब कुछ खोल कर कहा। अपने पिता का टेलिग्राम वह लेती आई थी, उसको भी दिखलाया। सत्यकिङ्कर ने उस टेलिग्राम को पढ़ कर एक बार फिर मनोरमा के मुंह की ओर देखा। वह टूटी हुई कल्पना फिर उसके मन में उत्पन्न होने लगी। सत्यकिंकर ने सोचा, हिन्दू विधवा के घर छोड़ कर भाग कर ब्राह्मधर्म में दीक्षित होने के लिये आने का कारण है यही कि उसे वैधव्य पसन्द नहीं है।

सत्यकिंकर ने अन्त में कहा, "तब कल प्रातःकाल ही दीक्षा का प्रबन्ध किया जायगा, आज रात भर आप यहीं रहें।"

विधवाश्रम के मैनेजर को बुला कर मनोरमा के वहां रहने का प्रबन्ध कर सत्यकिंकर बाबू चले गये।

तैंतीसवां परिच्छेद

दूसरे दिन सत्यकिङ्कर ने मनोरमा को ब्राह्मधर्म में दीक्षित किया। जिस समय इन्द्रनाथ टेलिग्राफ आफिस में पोस्ट-मास्टर के पास हाथ जोड़े खड़ा था ठीक उसी समय विद्याश्रम के साधन-मन्दिर में मनोरमा की दीक्षा हो रही थी।

दीक्षा का काम समाप्त हो चुकने पर सत्यकिङ्कर ने कहा, "अब आप क्या करना चाहती हैं?"

मनोरमा के चित्त में एक अपूर्व शान्ति भर गई थी। उसने जो एक महत् कार्य कर डाला है, यह सोच सोच उसे अत्यंत सन्तोष और आनन्द हो रहा था।

उसने हंस कर कहा, "अब मैं एक बार सुकुमार बाबू के पास जाऊंगी।"

मनोरमा की इस हंसी ने सत्यकिंकर बाबू को उनकी उस भूली हुई कल्पना की पुनः याद दिला दिया। उन्होंने कहा, "यदि आप कहें तो आपको वहां ले जा सकता हूं, परन्तु मेरी राय में अभी कुछ दिन तक आपका यहां छिप कर रहना ही ठीक

था। इस समय यदि आपके भाई को पता चल जायगा तब आप को लौट ही जाना होगा। और तब अपने माता पिता के हाथ में पड़ कर फिर आपको छुटकारा मिलेगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता। यहां आपको रहने की कोई असुविधा न होगी, मैं सब प्रबन्ध ठीक करा दूंगा।"

बात भी ठीक मालूम हुई। मनोरमा ने अभी दो तीन दिन तक यहीं रह जाना ही ठीक समझा। वह बोली,"परन्तु भाई, माताजी, पिताजी, ये लोग न मालूम क्या सोचेंगे, उनको एक बार खबर देना तो उचित है। क्या आप दया कर उन्हें यह खबर दे देंगे कि मैं अच्छी तरह हूँ और निरापद हूँ?"

सत्यकिंकर ने हंस कर कहा, "अवश्य।"

दूसरे दिन सत्यकिंकर ने आकर खबर दी कि उसका भाई घर में नहीं है—दार्जिलिंग गया है और घर में कोई पुरुष नही है, अतएव मनोरमा के बारे में किसी को कोई खबर नहीं दी जा सकी।

बहुत देर तक मनोरमा के साथ इधर उधर की बातचीत कर सत्यकिंकर बाबू ने प्रस्थान किया।

शाम को उन्होंने आ कर खबर दी कि मनोरमा के माता पिता आये हैं। वे उसके पिता के साथ मिले भी थे परन्तु इनकी एक ही बात सुन कर मनोरमा के पिता बहुत क्रोधित हो गये थे—इतना कि सत्यकिंकर को उन्होंने घर से बाहर निकाल दिया था।

असल बात यह थी कि सत्यकिंकर धर्मपथ में चाहे कितना ही अग्रसर हों पर बुद्धि में बहुत पण्डित न थे। वे मनोरमा के पिता के निकट जब गये थे उस समय उनके शोक-सन्तप्त पिता क्रोध और शोक में बैठे थे। जाते ही वे बोले, "आपके साथ मेरा परिचय नहीं है फिर भी मैं आया हूं कुछ बात करने शायद आपकी कन्या घर से निकल गई है?"

"निकल गई है" इस बात में जो एक अपमान छिपा हुआ है, उपाचार्य महाशय को यह बात स्मरण न आई, परन्तु मनोरमा के पिता को यही मालूम हुआ कि यह अपरिचित उन्हीं के घर में आ कर उन्हीं का अपमान कर रहा है। अस्तु उनका क्रोध उबल पड़ा। इसी समय सत्यकिंकर ने फिर कहा, "आप अपनी लड़की का पता लगाना—"

"भाड़ में जाय लड़की का पता, बदमाश! निकल जा मेरे घर से! सूअर कहीं का—" इत्यादि कह कर मनोरमा के पिता ने सत्यकिंकर बाबू को घर से निकाल दिया और इन्द्रनाथ से कहा—"आज से न मेरी कोई लड़की है और न उसके पते से मुझे कोई सरोकार!! मैं लड़की का पता भी नहीं जानना चाहता और उसका मुंह भी नहीं देखना चाहता!!"

अतएव सत्यकिंकर को आत्मरक्षा के लिये वहां से भागना पड़ा। मनोरमा यह समाचार सुन रो पड़ी। उसका दीक्षा प्राप्त करने का आनन्द पिता के इस अभिशाप का संवाद सुन म्लान हो गया।

चौंतीसवां परिच्छेद

"आज मैं सुकुमार बाबू के पास जाती हूं, अब तो कोई भय का कारण नहीं रहा।"

इस बात को सुन सत्यकिंकर बाबू कुछ दुःखित हुए। उनके मन में वह अर्द्ध स्पष्ट चित्र क्रमशः अधिकतर सुस्पष्ट होता जा रहा था और वे स्पष्ट ही देख रहे थे कि उनका दीर्घ काल से सयत्न रक्षित कौमार्य व्रत यौवन की इस शेष सीमा में आकर इस नारी के चरणों पर पड़ गया है। मनोरमा के केवल रूप ने ही उन्हें मुग्ध नहीं किया था। सच तो यह है कि उससे भी अधिक उसके अन्तर ने उनको मुग्ध कर दिया था। उसका अपार मनोबल और दृढ़ सत्यनिष्ठा देख कर वे मुग्ध हो गये थे। ऐसी नारी को जीवनसङ्गिनी कर अपना साधक जीवन चरितार्थ करने की उनकी दृढ़ इच्छा बलवती हो उठी थी। इसीलिये वे नहीं चाहते थे कि मनोरमा सुकुमार बाबू के पास चली जाय। अस्तु वे नाना प्रकार की आपत्ति करने लगे। बोले, "मेरी समझ में अभी वहां जाना उचित

नहीं। यदि आप यहां और दो एक दिन रह जायं तो क्या आपको बहुत कष्ट होगा?"

मनोरमा बोली, "नहीं नहीं, कष्ट क्या होगा?" परन्तु उस का मन अप्रसन्न हो गया। तब, कुछ देर तक गम्भीर हो कर बैठे रहने के बाद, सत्यकिंकर ने कहा, "अच्छा अब आपने अपने लिये क्या करने का विचार किया है?"

मनोरमा ने कहा, "अभी तक तो कुछ भी विचार नहीं किया है—नौकरी करने का ही कोई उपाय करना पड़ेगा, या फिर सुकुमार बाबू जैसी राय देंगे वैसा करूंगी।"

कुछ हंस कर सत्यकिंकर ने कहा, "आपके विषय में मेरा भी तो कुछ दायित्व है। मैंने जब आपको दीक्षा दी है तो मुझे आपके भविष्यत के बारे में चिन्ता करनी ही पड़ेगी। आपकी ठीक ठीक क्या इच्छा है, ज़रा मुझे बताइये?"

मनोरमा बोली, "मेरी अपनी इच्छा तो यही थी कि और भी कुछ दिन कालेज में पढ़ कर शिक्षा सम्पूर्ण कर धर्म-प्रचार के कार्य में व्रती हो जाती, परन्तु इसकी संभावना तो अब नहीं रही, अस्तु मुझे अपने लिये और अपने पुत्र के भरण-पोषण के लिये फिर कहीं नौकरी ही करनी होगी।"

"क्यों सो क्यों? आप पढ़ना चाहती हैं तो पढ़ें। हमलोगों के समाज से कालेज में पढ़ने के लिये कई स्त्रियों को वृत्ति दी जाती है। उसमें से एक वृत्ति मैं आपको दे सकूंगा। उस-की सहायता से फिर आपको खाने पहनने के लिये सोचना

नहीं होगा। रहा आपका पुत्र, सो उसको हम लोग बोर्डिंग स्कूल में रखवा देंगे। इसके बाद कालेज की शिक्षा समाप्त कर यदि इच्छा हो तो आप विलायत भी जा सकती हैं—"

इस प्रस्ताव से मनोरमा उत्साहित हो गई। यदि वह इस प्रकार शिक्षा लाभ कर सके तो कैसे आनन्द की बात हो! उसने बहुत प्रसन्न हो कर कहा, "हां, ऐसा हो तब तो बड़ी ही अच्छी बात है! सुकुमार बाबू भी इसका समर्थन करेंगे इसमें सन्देह नहीं।"

कुछ हंस कर सत्यकिंकर ने कहा, "वे स्त्रियों को बहुत पढ़ाने लिखाने के पक्ष में नहीं हैं। उनकी सम्मति शायद आप न पा सकेंगी।"

मनोरमा के मन में अन्धकार छा गया, फिर भी वह बोली, "जो कुछ हो, सुकुमार बाबू मेरे असली गुरु हैं—उनसे राय लिये बिना मैं कोई काम नहीं कर सकती हूं।"

सत्यकिंकर अप्रसन्न से हो कर वहां से उठ गये।

दूसरे दिन भोर को वे पुनः आये और बहुत आनन्दित हो कर उन्होंने कहा, "देखिये, आपके लिये वृत्ति का सब ठीक कर दिया गया। आप चाहें तो आज ही से कालेज जा सकती हैं।"

यह वृत्ति की बात एक दम मिथ्या थी। स्वयं अपनी जेब से मनोरमा को यह वृत्ति दे कर, उसे क्रमश अपनी ओर आकृष्ट करेंगे—यही आशा कर, सत्यकिंकर बाबू ने अपने कष्ट-

सञ्चित धन को इस वृत्ति में लगा देने का विचार किया था। परन्तु मनोरमा उनकी यह बात सुन बहुत उत्फुल्ल हो गई। सत्यकिंकर ने फिर कहा, "तो चलिये आप को कालेज पहुंचा आऊं।"

मनोरमा राज़ी हो गई, पर फिर तुरत ही बोली, "आज कैसे कालेज जा सकूंगी, लड़के का कोई उपाय किये बिना कैसे बनेगा !"

सत्यकिंकर बोले, "मैं इसे ले कर स्कूल जा रहा हूं। वहां उसे बोर्डिंग में भरती करा दूंगा।"

पर बोर्डिंग जाने का नाम सुन मनोरमा का लड़का मां की गोद में चिपक गया। लाचार मनोरमा बोली, "आज इसे यहीं रहने दीजिये, कल देखा जायगा।"

लाचार सत्यकिंकर बाबू उठ कर चले गये।

शाम को चार बजे के समय सत्यकिंकर पुनः विधवाश्रम के फाटक पर पहुँचे। दरवान के साथ कुछ बातें हुईं। मनोरमा ने खिड़की से देखा कि वे बहुत उत्तेजित हो कर बोल रहे हैं। फाटक से वे सुपरिंटेंडेंट के कमरे में गये पर वहां से भी पांच मिनट के बाद बहुत घबड़ाए हुए से बाहर निकले और फाटकके बाहर चले गये। मनोरमाकी कुछ समझमें न आया।

कुछ देर पीछे मनोरमा को सब हाल मालूम हुआ। उसने किसी से सुना कि लेडी सुपरिंटेंडेंट ने यह समझा है कि सत्यकिंकर और मनोरमा का परस्पर संबंध दूषित है और उनका

संसर्ग विधवाश्रम के लिये कलङ्कजनक है। इसी लिये उन्होंने सत्यकिंकर को मनोरमा से भेंट करने से मना कर दिया है। यह निषेधाज्ञा मनोरमा पर जारी होने में भी देर न हुई।

इस समाचार को सुन कर मनोरमा को मिट्टी में मिल जाने की इच्छा हुई! छीः, छीः, ये लोग भी कैसे मनुष्य हैं! कैसी बातों को सोचते हैं! ऐसी बातें बोलने में इन्हें लज्जा नहीं आती! छीः छीः!! वह लज्जा से, घृणा से, अपमान से, रोने लगी।

बहुत सोच विचार कर, वह लेडी सुपरिंटेंडेंट के पास पहुँची और उससे प्रश्न किया। लेडी सुपरिंटेंडेंट ने हंस कर कहा, "तुम षड़यन्त्र कर सत्यकिंकर के साथ घर से निकल आई हो, इसके सिवाय और कोई सोच ही क्या सकता है!!"

मनोरमा गुस्से से लाल होकर बोली, "इसका प्रमाण?"

"प्रमाण? यह देखो!!" कह कर लेडी सुपरिंटेंडेंट ने आलमारी खोल एक बंडल निकाला और मनोरमा के सामने रख दिया। मनोरमा ने उस बण्डल को खोला तो उसमें से एक ब्लाऊस और एक मूल्यवान साड़ी निकली। उसके साथ एक कार्ड भी था जिस पर लिखा हुआ था, "प्रियतमा मनोरमा को प्रणयोपहार—दासानुदास सत्यकिंकर।"

इस साड़ी और कार्ड को देख कर मनोरमा स्तब्ध हो गई। यह क्या जालसाज़ी थी! उसके मुंह से एक बात तक न निकल सकी।

परन्तु इस विषय में किसी का कोई भी अपराध न था। सत्यकिंकर आज स्थिर कर के आये थे कि आज ही वे मनोरमा से अपना प्रेम निवेदन करेंगे।

परन्तु इस अवस्था में यौवन का अभिनय करने में उन्होंने अपने को बहुत अनिपुण पाया। इस प्रेम की बात को मनोरमा के सामने कैसे निकाला जाय उन्हें यही समझ में नहीं आता था। बहुत सोच साच कर आखिर उन्होंने प्रेम-निवेदन का यही प्रयत्न किया था। वे यदि मनोरमा से विवाह का प्रस्ताव करेंगे तो वह तुरन्त राजी हो जायगी इसमें उन्हें कोई सन्देह नहीं था। इसी लिये वे यह साड़ी और ब्लाउज खरीद कर ले गये थे, और सोच रहे थे कि इन उपहारों से वे उसे राजी कर लेंगे, परन्तु जाती समय उसे आफिस घर में ही भूल गये थे। बस इतनी ही तो बात थी।

फिर उसने सुपरिंटेंडेंट से कुछ न कहा, केवल इतना ही बोली, "मैं आप लोगों के यहां रहना नहीं चाहती हूं।"

सुपरिंटेंडेंट ने कहा—"यह विधान दोनों में ही वर्त्तमान। तुम अभी जा सकती हो? कहां जाओगी? बोलो!"

"ब्रह्म समाज में—सुकुमार बाबू के पास।"

"अच्छा तो तैयार हो जाओ। अपना सामान ठीक कर लो और दरबान के साथ वहीं जाओ।"

"यहां मेरी कोई भी चीज़ नहीं है। मैं जो पहन कर आई हूं केवल वही लेकर जाऊंगी।"

"और सब चीजें?"

"वे सब सत्यकिंकर बाबू की हैं, उन्हीं को लौटा दीजियेगा।"

मनोरमा का वक्ष विदीर्ण हो गया। वह बहुत कष्ट से अपने कमरे में गई। अश्रु सिक्त नयनों से उसने स्वयं कपड़े पहने और अपने लड़के को भी पहनाया। तब बोर्डिंग हाउस के बाहर हो गई।

पैंतीसवां परिच्छेद

मनोरमा को आते देख सुकुमार बाबू चौंक उठे। उधर मनोरमा भी बहुत कष्ट से अपने आंसू बन्द कर सकी। सुकुमार बाबू के चरणों के पास बैठ कर वह बोली, "मैंने दीक्षा ली है। मैं अब ब्राह्म हो गई हूं। आप मुझे आश्रय दीजिये।"

सुकुमार बाबू ने कहा, "उससे पहले मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम कहां से आ रही हो और अब तक कहां थीं?"

मनोरमा का हृदय अभिमान से भर गया, फिर भी उसने विनीत भाव से कहा, "यदि आपको इसका सन्तोषजनक उत्तर न मिले तब क्या आप मुझे आश्रय न देंगे?"

सुकुमार बाबू बोले, "तुम खफा न हो। जिसे मैं अपने घर में रक्खूंगा, वह मेरे घर में रहने के योग्य भी है कि नहीं, यह

तो आखिर मुझे जानना ही पड़ेगा! तुम्हारे भाई ने शायद मुझे स्त्रियों को भगाने वाला पादरी समझ रक्खा है। पहिले तुम उसके पास जाकर यह कह आओ कि मैंने उनकी बहिन को छिपा कर नहीं रख छोड़ा था तब मेरे पास आओ!"

मनोरमा को ऐसा मालूम हुआ मानो उसके पैरों के नीचे से पृथ्वी हटी जा रही है। सुकुमार बाबू को जब मालूम होगा कि अब तक वह विधवाश्रम में थी तब वे अवश्य ही वहां उसके बारे में अनुसन्धान करेंगे। उस समय अवश्य ही उन्हें वह कलंक की बात भी मालूम होगी और वे उसी क्षण उसे घर से निकाल देंगे। तब फिर क्या होगा? अपने घर में जाने से क्या होगा वह सत्यकिंकर की बातों से उसे ही मालूम हो गया था। तब क्या उसका एकमात्र आधार है—इस सत्यकिंकर ही का आश्रय ग्रहण करना? क्या उसका ऐसा ही दुर्भाग्य होगा?

सड़क पर एक मोटर आकर ठहरी। साथ ही साथ अमल मनोरमा को देख कर चिल्ला उठा, "ओ हो! वह देखो! वह देखो!!" उसके बगल में बैठे इन्द्रनाथ ने भी मनोरमा को देख एक क्रंदन ध्वनि की।

मनोरमा को मानों स्वर्ग मिल गया। उसका लड़का तो दौड़ कर इन्द्रनाथ के गले से चिमट गया। अमल निकट ही में खड़ा हो कर पसीना पोंछने के बहाने रुमाल से अपने आनन्दाश्रु मार्जन करने लगा।

दार्जिलिंग से चल कर अमल और इन्द्रनाथ स्टेशन से

सीधे यहीं चले आरहे थे अब। अमलने कहा, "चलोजी चलो, घर चलें, वृद्ध-वृद्धा बड़े अस्थिर हो रहे होंगे ! अच्छा पादरी साहब सलाम !!" कह कर वह मनोरमा और उसके लड़के को लेकर मोटर पर सवार हो गया।

सुकुमार बाबू का मुंह क्रोध से लाल हो गया, पर वे कभी अपने क्रोध को प्रकाश नहीं करते थे, आज भी इस नियम का भङ्ग नहीं हुआ। उन्होंने शान्त-कण्ठ से ही कहा, "अमल, सुनो। मैं तुम लोगों के सामने मनोरमा से कुछ पूछना चाहता हूं।"

इन्द्रनाथ ने क्रोध से कहा, "सुकुमार बाबू, तुम यदि मनुष्य होते तो इस समय जमीन के साथ मिल जाते। तुमने इतने समय तक मनोरमा को छिपा रख कर मुझसे झूठ तो कहा ही, ऊपर से तुम और तुम्हारी लड़की दोनों मिल कर अमल पर एक भयानक मिथ्या कलंक लगाने से भी बाज न आए !! और फिर भी बात बोलने का साहस कर रहे हो !!" कह कर वह स्वयं भी मोटर में बैठ गया।

सुकुमार बाबू बाराण्डे पर खड़े हो कर जोर से बोले, "इन्द्र बाबू, अमल बाबू, तुम लोग आज मुझ पर कितना बड़ा अभियोग लगा कर जा रहे हो इसे समझाने का भार मैं मनोरमा ही पर छोड़ता हूं ! पर इतना कहता हूं जब समझ लेना तब मुझसे एक बार कह जाना !!"

मोटर भों भों करती चली गई। मनोरमा इन लोगों में से

किसी की बात भी नहीं समझ सकी, क्योंकि उस दिन वाली घटना उसे कुछ भी मालूम न थी।

छत्तीसवां परिच्छेद

अनीता गोस्वामीजी से कीर्तन भजन सीखने लगी। गोस्वामीजी केवल बड़े गायक ही नहीं थे, बड़े भक्त भी थे। मृदंग के ताल में नाच कर, झूम कर, गाते गाते वे आत्महीन हो जाते थे, जब होश आती तो गाने के साथ साथ नृत्य करने लगते थे। पर उनका यह नृत्य लोगों को दिखलाने के लिये या कृत्रिम नहीं था, यह स्वाभाविक भावोच्छ्वास था। उनके प्राण को प्रेरणा मिलती थी और वे अनुभव कर सकते थे। अनीता ने क्लेदशून्य भक्ति की उन्मादना को यहीं पहले पहल देखा, और देख कर वह मुग्ध हो गई।

अनीता के कण्ठ को सुन कर, उसके कण्ठ की सुशिक्षा को देख कर, गोस्वामीजी ने परम आनन्द से उसे शिक्षा देना शुरू किया। वे बोले "तुम धन्य हो कि भगवान ने, तुम्हे ऐसा गला दिया है, इस गले से यदि ठीक से गा सको तो एक बार नारायण का सिंहासन भी हिल जायगा!"

गाना सीखने में अनीता को अधिक कष्ट नहीं हुआ। गोस्वामी जी जिस प्रकार गाते थे, उसका ठीक अविकल अनु-

सरण करने में उसे कोई भी कष्ट नहीं होता था। फिर भी उसके गुरू को यह पसन्द नहीं होता था। वे सिर हिला कर कहते थे, "ऊंहूं ! तुमसे नहीं होता। फिर से चेष्टा करो!"

बारबार चेष्टा कर अनीता तंग आ कर कहती थी,"क्या नहीं आता है गोस्वामी जी ? कौन स्वर मैं गलत लगाती हूं ! क्या कमी रह जाती है? आप और क्या चाहते हैं ?"

गोस्वामीजी कहते—"क्या नहीं होता है कहूं! तुम्हारे गानेके साथ तुम्हारे प्राण का स्पन्दन नहीं जाग उठता। कीर्तन कोई कसरत तो नहीं है, मां! यह तो है भक्तके प्राण का उच्छ्वास जहां प्राण ही नहीं है—वहां कीर्तन में सार्थकता क्या है? जब जिस गाने को गाओ उस समय तुममें वही भाव भी यदि प्रकाशित होता रहे—तभी तो कीर्तन का मूल्य है और नहीं तो कुछ भी नहीं। इसी गाने का उदाहरण लो जिसे तुम गा रही हो। इसमें कृष्ण राधा के पैरों पर पड़ कर उसे मनाने की चेष्टा कर रहे हैं। राधा नहीं मानतीं, रूठ कर खड़ी हो जाती हैं। कृष्ण जी निराश हो कर चले जाते हैं। दुःख के साथ चले जाते हैं। तब राधा गाती हैं—

चरणे लागि हरि, हाय पिन्धायल
यतने गांथि निज हाथ
सो नहि पहिरणु दूरही भारलूं
मानिनी अवनत माथ।
सजनि काहे मोहे दुरमति भेल !

दगध मान मधु, विदगध माधव
रोखे विमुख भइ गेल।

राधा का यह गान क्या सुरताल या लय से मीठा हो सकता है ? कदापि नहीं ! यदि तुम इसमें प्राण की प्रतिष्ठा कर सको तभी इसमें मधुरता आ सकती है। और इसके लिये क्या करना होगा जानती हो ? अपने को भूल जाना होगा। तुम अब वही अनीता नहीं हो, तुम अब राधा हो, तुम्हारे चरणों में श्रीकृष्णजी पड़े हुए हैं—यही देखना होगा। तुम्हें देखना होगा कि तुम्हारे श्रीकृष्णजी रूठ कर चले गये हैं। तुम्हें अपने प्राण से इस क्रन्दन को निकाल कर प्रकाश करना होगा, तभी तो इस गान की सार्थकता होगी !"

अनीता निराश हो कर कहती, "गोस्वामीजी, तब क्या मैं कभी कीर्तन नहीं सीख सकूंगी ? मैं तो अपने को इतना नहीं भूल सकती !!"

गोस्वामीजी उसे शान्त्वना देते, भरोसा देते, गा कर बताते। इसी प्रकार शिक्षण का क्रम चलता रहता।

फिर भी गोस्वामीजी को अनीता में किसी विशेषता की छाया अवश्य मिली थी और इसी लिये वे अनीता को सिखलाने के लिये जी जान से लग भी गये थे। वे उसी घर में रह कर, लक्ष्मीनारायण का प्रसाद खा कर, सवेरे और शाम को अनीता को गाना सिखलाते और साथ साथ वैष्णव धर्म का उपदेश भी देते।

अनीता ने भी देखा कि गोस्वामीजी केवल भक्त ही नहीं महापण्डित भी हैं। केवल वैष्णव शास्त्र ही में नहीं बल्कि संस्कृत के नाना शास्त्रों में, अंगरेजी, विज्ञान, दर्शन, साहित्य आर्ट इत्यादि में भी इनकी बड़ी गति है। अनीता की शिक्षा दीक्षा में उसे जैसे जो बात समझ में आ सके ठीक वैसे ही वे उसे समझाते थे।

उनकी शिक्षा और उपदेश के प्रभाव से थोड़े ही दिनों में अनीता अपने में एक परिवर्त्तन को अनुभव कर सकी। वह अब गाते गाते कभी कभी आत्महारा होने लगी। कभी कभी ऐसा होता कि समस्त विश्व-संसार उसके निकट शून्य हो जाता। और केवल राधा और कृष्ण का रूप ही उसके सामने प्रकाशित रह जाता था। जब वह इस प्रकार निविष्ट चित्त से गाती थी तो गोस्वामीजी आनन्द से नाच उठते थे। वे भी नाच नाच कर मृदंग बजा बजा कर गाने लगते थे। गाना समाप्त होने पर अश्रुविसर्जन कर वे कहते थे, "क्यों मां, तुम तो गा सकती हो! तुम में तो नारायण अधिष्ठ हो गये हैं! मैं देख रहा हूँ कि वे तुम्हारी आत्मा के चरणों पर पड़ कर मना रहे हैं—तुम्हें तो मुंह उठा कर देखना ही पड़ेगा—तुम्हें राधा बनना ही पड़ेगा!"

इस बात को सुन अनीता का शरीर रोमाञ्चित हो उठता। वह हंस पड़ती, मगर उसका मन नाच ने लगता।

सैंतीसवां परिच्छेद

अनीता को उसके भाई ने जो सम्पत्ति दी थी अब तक उसने उसको स्पर्श तक नहीं किया था। उसके पास निज के जो कुछ रुपये थे अब तक उन्हीं से वह काम चला रही थी।

एक दिन उसने चिट्ठी लिख कर सालिसिटर को बुलाया, उससे अपने सारे रुपयों को जमा कर देने के लिये कहा, और पार्क स्ट्रीट वाले मकान को बेच डालने के लिये कहा।

इसके बाद उसने एक अंगरेजी कन्ट्राक्टर को पत्र लिख कर उन्हें श्यामासुन्दरी के घर और पूजागृह की मरम्मत करने के लिये आदेश किया। यह कन्ट्राक्टर अनीता के पिता का सब काम काज करता था—इन कन्ट्राक्टरों को छोड़ कर राजमिस्त्रियों से भी काम चल सकता है यह उसे मालूम ही नहीं था।

पर यह सब देख कर पद्मलोचन महाशय अवाक् हो गये। उन्होंने कहा, "यह क्या! इस घर को मरम्मत करने के लिये हम लोगों के पुराने रहीम मिस्त्री को कह देने ही से तो हो

जाता! उस साहेब को बुलाने से क्या फायदा? एक का चार खा जायगा!!"

अनीता बोली, "रुपये के लिये चिन्ता मत कीजिये। मैं अपने पास से यह सब मरम्मत करवा रही हूँ।"

पद्मलोचन महाशय ने देखा कि यदि वे स्वयम् इस काम को करवाते तो कम से कम हज़ार रुपये की बचत हो जाती। वे हज़ार रुपये पद्मलोचन के समान पुनीत ब्राह्मण के हाथ में न जाकर उस म्लेच्छ के हाथ में जा रहे हैं। पर दूसरा उपाय भी तो नहीं था?

पर इसके बाद अनीता ने जो किया उससे पद्मलोचन महाशय के क्रोध का ठिकाना न रहा। अनीता यह नहीं सह सकती थी कि पद्मलोचन महाशय इन दो असहाय विधवाओं के अन्न से पुष्ट होकर उन्हीं पर अत्याचार करें। उसने स्पष्ट देखा कि वह रुपये चोरी करता है। इसके सिवाय प्रबन्ध भी ठीक नहीं करता है, उसने सालिसिटर साहब को बुला कर उनसे राय लिया, और तब श्यामासुन्दरी की सम्मति ली। इसके बाद सालिसिटर के द्वारा एक नये प्रकार का प्रबन्ध करवा दिया। घर को तोड़ना, बनाना, भाड़ा देना, और भाड़ा वसूल करने का सब भार उन सालिसिटर पर रहा। महीने के अन्त में श्यामासुन्दरी को गिन कर रुपये दे दिये जायंगे। पद्म-लोचन अब तक जितने रुपये दे रहा था उससे दो गुना से भी कुछ अधिक रुपये अब इस नये प्रबंध से उन्हें मिलेंगे।

मगर यह मामला देख पद्मलोचन ने अपने क्रोध को गुप्त रखने की कोई चेष्टा न की। अनीता को ईसाई के नाम से गालियां तो दीं ही, इसके सिवाय श्यामासुन्दरी को भय दिखलाया कि वह सब कुछ छोड़ छाड़ कर शाप देकर चला जायगा। यद्यपि श्यामासुन्दरी अधिक रुपये पाकर आनन्दित हो गईं थीं तथापि ब्राह्मण के शाप के भय से मृयमाण हो गईं। अनीता ने उसे बहुत कुछ साहस दिलाया, समझाया कि पद्मलोचन चाहे जहां चला जाय—कितने दूसरे पुजारी मिल जायंगे, परन्तु ब्रह्मशाप के भय से डरी हुई श्यामासुन्दरी को अनीता की बातों से कोई साहस नहीं मिला। अन्त में उन्होंने रुपये रखने का भार और आमद खर्च करने का भार पुनः पद्मलोचन ही को वापस दे दिया।

अनीता को इससे बहुत दुःख हुआ। श्यामासुन्दरी के अपने रुपये पैसे का भार पुनः पद्मलोचन को दे देने से उसका व्यवहार अनीता के प्रति और भी असहनीय हो गया। अन्त में अनीता ने यही स्थिर किया कि वह यह घर भी छोड़ कर चली जायगी।

उसने गोस्वामीजी से यह बात कही, गोस्वामीजी ने कहा, "मगर तुम जा कैसे सकती हो, मां! अपने लक्ष्मीनारायण की ओर देखो—देखो नारायण तुम्हारी ओर कैसा कातर हो कर देख रहे हैं—उन्हें छोड़ कर तुम कैसे चली जाओगी!"

अनीता ने आँखें खोल कर देखा, उसका प्राण रो उठा। यह कैसा आश्चर्य है! क्या सचमुच ही नारायण की मूर्ति

उसे इस प्रकार देख रही है, या यह उसकी आंखों का भ्रम है! नहीं नहीं, भ्रम नहीं है, पर तब क्या है? तब क्या उसने सच-मुच ही नारायण से प्रेम करना सीखा है? उसे क्या सचमुच ही राधा के प्राण की प्रेरणा मिल रही है? उसका सारा शरीर पुलकित हो गया! वह मनोयोग-पूर्वक नारायण की नटवर मूर्त्ति का ध्यान करने लगी। वह मृदुस्वर से गाने लगी—

"सुन्दर रूप में नारायण के
सुन्दर अङ्गों में सुन्दर शोभा।
सुन्दर मुखपद, सुन्दर आनन,
नैनन पर जगत मन लोभा॥"

गाना समाप्त होने के पहले ही एक मोटर आकर उस घर के सामने खड़ी हो गई। मोटर से अमल और इन्द्रनाथ उतरे। अनीता ने मोटर के भीतर एक साड़ी का आंचल भी देखा। उसका प्राण नाच उठा, उसका हृदय कांपने लगा, पर वह न उठी न बोली, पत्थर की मूर्ति के समान निश्चल हो कर भूमि पर मूर्ति के सामने बैठी रही।

अड़तीसवां परिच्छेद

मोटर जितनी ही इन्द्रनाथ के घर के पास आने लगी, उतना ही सब का मन एक भयानक आशङ्का से पीड़ित होने लगा। घर में मनोरमा के माता पिता मनोरमा के प्रति कैसा बर्ताव करेंगे—सभी के मन में यही आशङ्का थी।

परन्तु इस समय अमल का मन कुछ प्रसन्न हो रहा था। वह एक स्वप्न देख रहा था। जब से उसने दार्जिलिंग में सुना था कि सुलता ने कहा है कि अमल मनोरमा का प्रेमास्पद है, उसी समय से वह यह स्वप्न देख रहा था। सुलता ने ऐसी बात क्यों कही? वह एक दम झूठ मूठ ही तो उसके विषय में ऐसी मिथ्या बात नहीं बोल सकती है। मनोरमा के साथ सुलता का मेल था। सुलता ने अवश्य कभी न कभी मनोरमा से ही यह बात सुनी होगी। मनोरमा ने शायद अपनी प्रिय सखी अनीता के सामने अपने मन की गुप्त बात को प्रकाश कर दिया होगा और सुलता ने उसे सुन लिया होगा।

इस कल्पना से ही अमल को एक प्रकार का अस्वाभाविक

सा आनन्द मालूम हुआ। अचानक उसने अपनी समस्त सत्ता से अनुभव किया कि वह कायमनोवाक्य से मनोरमा के साथ प्रेम करता है। अब तक उसने अपने अन्तर में ही मनोरमा से प्रेम किया था। परन्तु मनोरमा ने अपने वैधव्य धर्म से अपने को ऐसे पूर्ण रूप से आच्छादित कर रक्खा था कि इतने बड़े साहस की बात को स्वीकार करने की कभी उसे हिम्मत ही नहीं हुई थी। अब, सुलता की यह बात सुन कर, उसका यह भय अदृश्य हो गया। उसने आश्चर्य के साथ आविष्कार किया कि वह स्वयम् सचमुच ही मनोरमा से प्रेम करता है। दार्जिलिंग से आती समय रास्ते भर वह यही सोच रहा था कि यदि मनोरमा मिल जाय तो अब उससे प्रेम करने में कोई बाधा न रहेगी क्योंकि अब तक वह शायद ब्राह्म हो गई होगी जिस मत में वैधव्य की आपत्ति बहुत गुरुतर नहीं होती।

मोटर में बैठा बैठा अमल स्वप्न देख रहा था—सुलता की बात सच है या नहीं ? मनोरमा सचमुच ही उससे प्रेम करती है या नहीं ? सुलता ने जो कुछ समझा वह सचमुच ही सही है या नही। अमल का स्वभाव ही ऐसा था कि जो बात उसके मन में एक बार बैठ जाती थी वह उसको बहुत जोर से पकड़े रहता था, बाधा विघ्न कुछ नहीं मानता था। उसका मन आंधी के समान सब बाधा विघ्न को हटा कर अग्रसर हुआ करता था। इस समय भी वही हुआ।

मोटर जब इन्द्रनाथ के घर के पास आकर खड़ी हो गई

तो लज्जा और भय से मनोरमा ने कपड़े में मुंह छिपा लिया। गाड़ी के भीतर से उसे एक पैर भी उठाने का साहस नहीं हुआ। वह तो इस स्नेह के घर को अपनी इच्छा से छोड़ कर चली गई थी। तब अब यहां लौट कर फिर कैसे मुंह दिखा सकेगी? इसके बाद उसे विधवाश्रमकी बात याद आई। विधवाश्रममें उस पर जो सब कलङ्क लगाये गये थे, वे अभी तक उसके हृदय में कांटे के समान चुभ रहे थे। वह कहीं भी जाय, वह कलंक की बात उसका पीछा करना न छोड़ेगी। उसे ऐसा भी अनुभव हुआ कि शायद सत्यकिङ्कर सचमुच ही उसपर अनुरक्त हो गया था और इसी लिये उसने उसे विधवाश्रम में छिपा कर रक्खा था। वास्तव में सत्यकिङ्कर ने तो इसमें कोई दुरभिसन्धि नहीं की थी, कोई अधर्म या पाप करने का अभिप्राय उसका नाथा। उसने तो केवल उसे अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिये, सम्पूर्ण सज्जनता के साथ, चेष्टा की थी, पर मनोरमा को अब एक क्षण के लिये भी ऐसा भास नहीं हुआ। वह यही समझने लगी कि सत्यकिंकर उसे असहाय पाकर उसे अपनी विलास की दासी र रखना चाहता था। शायद शीघ्र ही उसको किसी दूसरे स्थानमें ले जाकर वह अपनी सम्पूर्ण वासना को चरितार्थ करने की चेष्टा करता तो भी आश्चर्य नहीं था। ऐसा सोच कर मनोरमा का समस्त शरीर रोमाञ्चित हो गया। यह परिणति कैसी भयानक होती। घृणा और लज्जा से उसका समस्त शरीर कांप उठा। सोचते कलंकसे, लज्जासे, उसे मर जानेकी इच्छा हुई।

उधर इन्द्रनाथ का प्राण भी कांप रहा था। गाड़ी से उतरने के लिये उसके पैर नहीं उठ रहे थे। इन्द्र के पिता बहुत स्नेहमय व्यक्ति थे। उन्होंने किसी दिन भी अपने लड़कों का तिरस्कार नहीं किया था। परन्तु वे कट्टर धार्मिक हिन्दू थे, वे मनोरमा के गृह त्याग और ब्राह्म धर्म ग्रहण को पाप समझेंगे, इन्द्रनाथ को यही विश्वास था। इसी लिये उसने एक बार यह भी सोचा था कि मनोरमाको इस समय न लाकर दो चार दिनके बाद, माता पिताके घर लौट जानेके बाद, लाने ही से अच्छा होता। अब तक उसे यह बात एक बार भी याद न आई थी कि मनोरमाके गृहत्याग को बहुत गुरुतर रूपसे देखा जा सकता है। सुकुमार बाबु के घर में मनोरमाको देखकर ही वह समस्त आशंकाओं से निश्चिन्त हो गया था। सुकुमार बाबू धर्मान्ध हो सकते हैं पर वे अधार्म्मिक कदापि नहीं उनके घर में जाने से मनोरमा किसी प्रकार भी कलंकित नहीं हो सकती ऐसा ही उसका विचार था। आखिर इन्द्रनाथ ने मोटर से उतर कर काँपती हुई अपनी बहिन को भी उतारा और द्वार खोल कर कमरे में प्रवेश किया। पर ज्यादा दूर तक अग्रसर न हो सका। सामने खड़े उसके पिता ने कठोर कण्ठ से कहा, "इन्द्रनाथ, तुम यह किसको भीतर ले आ रहे हो!"

मनोरमा का सारा शरीर कांप उठा। एक क्षण के लिये उसका रक्त जम कर पानी हो गया। इन्द्रनाथने भी चौंक कर अपने पिता के मुंह की ओर देखा।

पिता ने कहा, "तू कहां से आ रही है, कुलच्छनी! घर छोड़ कर कहां गई थी?"

मनोरमा के मुंह से कोई बात नहीं निकली, पर उसकी सूरत देख अमल डर गया। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। इन्द्रनाथ ने इसी समय कहा, "यह सुकुमार बाबू के घर गई थी—दीक्षा लेने के लिये।"

"सुकुमार बाबू के पास गई थी! वे कौन हैं? यह क्यों उनके पास जाती है? और कल जो वह एक निकम्मा मनुष्य आया था वह कौन था? तू क्या घर से निकल कर सीधी सुकुमार बाबू के यहां ही गई थी!" जल्दी जल्दी वे इतनी बातें कह गये।

इन्द्रनाथ ने झट कहा, "हां, पिताजी हम लोगों ने उसे वहीं पाया।"

मनोरमा मुंह नीचा किये हुए खड़ी थी। उसका शरीर हाथ पैर सब कांप रहा था। मुंह फीका हो रहा था। वह कुछ कहने के लिये बहुत चेष्टा कर रही थी परन्तु किसी तरह भी नहीं कह सकती थी। अन्त में बहुत कष्ट से उसने कहा, "नहीं! हां से निकल कर मैं सीधी सुकुमार बाबू के घर नहीं गई थी।"

अमल और इन्द्रनाथ के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। यह कैसी बात है! मनोरमा क्या कह रही है!!

पिताजी ने दांत पीस कर कहा, "पापिष्ठा! तब कहां गई थी! और अब तक कहां थी, बता!!"

मनोरमा की आंखों के सामने से सारा संसार अदृश्य हो

गया। उसके सिर में चक्कर आने लगा। पर अमल का हाथ पकड़ कर उसने अपने को सम्हाल लिया और बहुत कष्ट से धीरे धीरे बोली, "आप मुझसे यह बात अभी न पूछें, पर मैं यह कह सकती हूँ कि मैंने कोई भी अपराध नहीं किया है।"

"अपराध नहीं किया है!" उसके पिता चिल्ला उठे, "अपराध नहीं किया है! पापिष्ठा, तू निर्लज्ज के समान यह बात बोल रही है! तेरा मुंह बन्द न हो गया? तेरे रक्त में एक विन्दु लज्जा भी नहीं है!! तुझ जैसी पापी को जन्म दिया यह सोच सोच मुझे लज्जा हो रही है! इन्द्रनाथ, सुनो, मैं तुमसे कहे देता हूं, यह पापिनी जिस क्षण इस चौकठ के भीतर आवेगी उसी क्षण मैं जन्म भर के लिये इस घर से चला जाऊंगा!! तुम अगर इसे अपने साथ रक्खोगे तो तुम्हारे साथ भी मैं कोई सम्बन्ध न रक्खूंगा।"

इन्द्रनाथ का सिर घूम रहा था। मनोरमा की उस एक बात ने उसे निर्वाक कर दिया था। वह यहां से सुकुमार बाबू के घर नहीं गई थी! तब फिर कहां गई थी? उसके मन में नाना प्रकार की भयानक कल्पनाएं आने लगीं। वह डर गया।

अपने पिता की बात सुन वह और भी घबड़ा उठा। मनोरमा हजार अपराधी हो परन्तु इन्द्रनाथ उसे त्याग नहीं सकता है, पापिष्ठा होने के कारण उसे रास्ते में नहीं निकाल दे सकता है, और न जन्म भर के लिये उसे कष्ट ही दे सकता है। इस समय यदि उसके पिताजी ने यह कहा होता कि "तुम यदि

मनोरमा को चाहते हो तो उसे लेकर इस घर से निकल जाओ!" तो वह बिना कोई भी बाधा किये मनोरमा का हाथ पकड़ कर घर से निकल जाता। परन्तु अब तो बात कुछ दूसरी ही है— अब मनोरमा को ग्रहण करने का अर्थ होता है पिता जी को घर से निकाल देना—इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित हो पड़ने से वह दुविधा में पड़ गया, कुछ स्थिर न कर सका।

अमल उसके मुंह की ओर देखता रहा—उसके उत्तर की आशा से, पर जब वह निर्वाक खड़ा रहा तो अमल कुछ हताश हो गया। मनोरमा की पहली बात को सुन कर अमल को भी बहुत कष्ट पहुँचा था, परन्तु जब मनोरमा ने यह कहा कि उसने कोई भी अपराध नहीं किया है, तब वह पुनः आनन्दित हो गया। मनोरमा ने जब कहा है कि उसने कोई अपराध नहीं किया है तो फिर इसकी सत्यता में जरा भी संदेह नहीं हो सकता। उसका इतना कह देना ही उसके लिये यथेष्ट है। उसे और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। उलटा उससे इतना सुन कर भी इन्द्रनाथ अपने पिता के प्रश्न से दुविधा में पड़ा हुआ है यह देख वह बहुत असंतुष्ट हो गया।

इन्द्रनाथ ने बहुत देर तक सोच कर धीरे से कहा, "आप क्रोधित होकर अचानक ऐसी बात न कह दें। अभी मनोरमा यहीं रहे, जो करना हो सोच विचार कर स्थिर कर लिया जायगा।"

पर उसके पिता ने सिर हिलाकर कहा, "मैं दो बात नहीं

बोलता हूँ इन्द्रनाथ! तुमको अगर मनोरमा को रखने की इच्छा हो तो फिर वही यहां रहे, मैं चलता हूँ।"

इन्द्रनाथ ने अमल का हाथ पकड़ कर कहा, "भाई, क्या करूं?"

मनोरमा ने अब तक अमल का हाथ पकडा हुआ था। उस हाथ को छोड़ देने का उसे कोई विशेष आग्रह भी न था। वह हाथ जो भयानक रूप से कांप रहा है इसे जान कर अमल ने स्नेह पूर्वक उसे और भी जोर से पकड़ा हुआ था। इन्द्रनाथ की बात सुन उसने कहा, "क्या करोगे सोच रहे हो? तो सोचते रहो! मैं मनोरमा को लेकर कालेज बोर्डिंग में जाता हूं।"

इन्द्रनाथ को कुछ शान्ति मिली। उसने सिर उठा कर अपने पिता से कहा, "ठीक है, तब यहां आपही रहिये! मैं मनोरमा को लेकर जाता हूँ।"

अमल और इन्द्रनाथ मनोरमा को ले कर बाहर चले आये। मोटर पर चढ़ कर मनोरमा ने कहा, "मेरा बच्चा?" इन्द्रनाथ बोला, "उसे रहने दो न!" मनोरमा की आंखों में आंसू भर गये। उसने दुःखपूर्ण दृष्टि से अमल की ओर देखा। अमल ने चट कहा, "वाह! ऐसा भी कहीं हो सकता है, बच्चे को ले आओ।"

बच्चा द्वार के पास ही घबड़ाया हुआ खड़ा था। इन्द्रनाथ उसे मोटर के पास ले आया। इसी समय बगल के कमरे की खिड़की को खोल कर सरयू ने पुकारा, "शीघ्र आओ, माताजी बेहोश हो गई हैं।"

इन्द्रनाथ ने बच्चे को मोटर पर चढ़ा कर कहा, "भाई अमल, तुम इन लोगों को ले कर चलो—मैं पीछे पीछे आता हूं।"

अमल ने जवाब दिया, "तब तुम मेरे ही घर में आना। मैं वहीं चल कर तुम्हारी राह देखूंगा।" मोटर चल पड़ी।

उनतालीसवां परिच्छेद

रास्ते में एक जगह मोटर खड़ी कर अमल ने अनीता की पुरानी आया को गाड़ी पर चढ़ा लिया।

जब मोटर मनोरमा को लिये दिये उसके घर में आ पहुँची तो अमल का मन आनन्द से नाच उठा। अलीबाबा जब सब आशङ्काओं को पार कर चोरी का माल गधे की पीठ पर लाद कर अपने घर के भीतर घुस आया था उस समय उसे जैसा आनंद हुआ था वैसा ही आनन्द इस समय अमल को भी हुआ। परन्तु साथ साथ उसे एक भय भी हुआ। वह जिस अमूल्य रत्न को रास्ते से उठा कर अपने घर में ले आया है क्या वह उसे रख भी सकेगा? यह पक्षी क्या इस पिंजड़े में रहेगा? यह भय उसे भयानक रूप से सताने लगा।

मोटर से उतर कर अमल मनोरमा को अनीता के कमरे में ले गया। अनीता उस कमरे को जैसा छोड़ कर गई थी अभी

तक वह ठीक वैसाही सुन्दर और वैसाही सुसज्जित था। अमल ने उसकी एक चीज़ को भी इधर से उधर नहीं हटाया था। अनीता यदि किसी दिन इस त्यक्त गृह में लौट आए तो उसे किसी वस्तु का अभाव न हो—यही अमल की कामना थी। अनीता नहीं लौटी—परन्तु जो आई है वह भी तो अनीता से कम प्रिय नहीं है!

अमल ने कम्पित कण्ठ से कहा, "आज तुम्हें बड़ी वेदना हुई है मनो! तुम हाथ मुंह धो कर सो जाओ। तुम्हारे भाई के आने पर मैं तुम्हें बुला भेजूंगा। यह आया तुम्हारे पास रहेगी।"

मनोरमा सचमुच ही बहुत थक गई थी। वह पलंग के गद्दीदार बिछौने पर बैठ गई। एक बार उसने स्निग्ध क्लान्त कृतज्ञतता पूर्ण दृष्टि से अमल के मुंह की ओर देखा। उस दृष्टि को देख अमल का हृदय आनन्द से और भी नाच उठा।

वह और भी प्रसन्न चित्त से कहता चला गया, "यदि तुम्हारा बोर्डिंग में रखना ही स्थिर हो तो कल या परसों मैं सब ठीक ठाक करा दूंगा। अभी फिलहाल तुम सब चिन्ता छोड़ कर आराम करो। अच्छा टुकू, तुम्हें भूख नहीं लगी!" मनोरमा के बच्चे को सब लोग 'टुकू' के नाम से पुकारते थे।

टुकू को सचमुच ही बड़ी भूख लगी थी। अमल ने बाय को बुला कर टुकू को खिलाने के लिये कहा। उसके बाद कहा, "हां, तुमने भी तो आज कुछ नहीं खाया होगा! तुम्हारे भोजन

का प्रबन्ध करूँ। मेरा बढ़िया बैरा शायद कोई अच्छी बात है उससे पूछूँ"—कह कर बैरा को बुलाने के लिये चला। पर मनोरमा ने कहा, "आप मेरे लिये कोई कष्ट न करें, मैं बिलकुल ठीक हूँ। आपके साथियों के हाथ का खाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है; पर मैं खा कर आई हूँ, अभी मुझे भूख नहीं लगी है।"

इस बात को सुन कर न मालूम क्यों आनन्द का मन घोर आनन्द से नाच उठा।

थोड़ी देर के बाद मनोरमा ने कहा, "मैं बोर्डिंग में नहीं जाना चाहती हूँ। बोर्डिंग छोड़ कर क्या मेरे लिये कोई दूसरा स्थान नहीं हो सकता?"

आनन्द और भी आनन्दित हो बोला, "मेरी भी तुम्हें बोर्डिंग में भेजने की एक दम इच्छा नहीं है मनो!"

"तब आपकी क्या इच्छा है?" कह कर मनोरमा ने प्रेम-पूर्ण आँखों से आनन्द की ओर देखा। पर आनन्द की आँखों में कोई एक भाव देख तुरन्त ही उसने अपना सिर नीचा कर लिया। उसका मुँह लाल हो आया।

आनन्द का मुँह भी लज्जा से लाल हो गया। उसने अपने को संभाल कर बहुत धीरे धीरे कहा, "मेरी जो इच्छा है मनोरमा, वह बात बोलने का मुझे साहस नहीं हो रहा है। तुम देवी हो, शायद मेरी बात सुन तुम्हारे मन में कोई कष्ट पहुँचे। परन्तु यदि तुम मुझे साहस दो, यदि कहने के अपराध

को क्षमा करो, मनो, तो मैं तुम्हें इस घर की अधिष्ठात्री बनाना चाहता हूं। मेरे जीवन की ध्रुवतारा बन कर तुम इस घर में बास करो यही मेरी इच्छा है !!"

मनोरमा ने यह अपने अन्तर में कैसा स्पन्दन अनुभव किया! उसके हृदय के अन्तरतम स्थान में यह कौन सी वंशी बज उठी! विधवा के ऊसर हृदय में यह कैसा रस का श्रोत बह पड़ा! मनोरमा कुछ समझ न सकी।

उसका समस्त अन्तर एक अपूर्व आलोक से उद्भासित हो गया। उसने देखा कि यही तो उसका सदा सर्वदा का लक्ष्य था। अब तक उसने इसी सौभाग्य को तो चोर के समान अपने गुप्त हृदय के स्तर में छिपाया हुआ था। इसी व्यक्ति के चरणों में अपने आपको न्योछावर कर देने के लिये ही तो उसने अब तक अपने को सम्हाला हुआ था। आज उसके सौभाग्य की चरम सीमा आ पहुँची है। आनन्द के नीरव मुग्ध सम्भोग से वह आत्म-हारा हो गई। वह क्या करेगी, क्या कहेगी, कुछ उसकी समझ में नहीं आया। केवल अविरल अश्रुधारा से उसके गाल प्लावित होने लगे।

पर उसको रोते देख अमल बहुत घबड़ा गया। उसके प्राण में अनुशोचना की अग्नि जल उठी। वह बोला, "मनोरमा, मुझे क्षमा करो, मुझसे बड़ा अपराध हुआ है। अब और यहां खड़े रह कर अधिक अपराध नहीं करूंगा!" कह कर वह दौड़ के वहां से भाग गया।

मनोरमा हताश हो गई। यह क्या हुआ! हृदय के पास रत्न आकर इस प्रकार कहाँ चला गया! केवल लज्जालु मे मूक होने के कारण! वह मुँह खोल कर अपने मन की बात को कह न सकी इसी से ऐसा हुआ! अमल ने उसकी चुप्पी का कुछ दूसरा अर्थ लगाया और इसी से वहाँ से चला गया! तब! अब क्या होगा! अत्यधिक दुःख से उसकी दोनों आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

फिर कुछ स्थिर होकर वह सोचने लगी। अमल को पाने का क्या उसको अधिकार नहीं है? वह क्या उसे पाने के योग्य नहीं है? उसमें कौन सा गुण है कि जिससे वह अमल के समान स्वामी को पाकर अपने जीवन को धन्य बना सके! वह अभागिनी विधवा है, अविद्वान् पत्नी है, परित्यक्ता कन्या है। उसे कौन सा अधिकार है कि वह अमल के पवित्र हृदय को कलुषित कर सके? विधाता के राज्य में क्या इतना बड़ा अविचार हो सकता है? अच्छा ही हुआ, यही उसके पाप का उचित दंड था।

परन्तु यही क्या विधाता का न्याय विचार है? स्वयं को आग में जलाने के लिये उसके हृदय में इतनी वासना को नहीं भर देने से क्या भगवान के न्याय की रक्षा नहीं होती? परीक्षा! हाय, उसने क्या कम परीक्षा दी है? स्वामी को खो कर उसने कठोर ब्रह्मचर्य के द्वारा मन को संयत करने की चेष्टा की है। अपने जीवन के आरम्भ में ही वह समस्त सुख संतोष

से वञ्चित हो गई, और साथ साथ अपने कठोर सन्यास-व्रत से भी वञ्चित हो गई। उसके समान इतनी परीक्षाएं कब किसको देनी पड़ी हैं? कब कौन इतना आत्मसंवरण कर सका है? परन्तु उसके इस प्रयत्न का क्या यही पुरस्कार है? दूसरों को तो कभी इस प्रकार की अग्निपरीक्षा में नहीं पड़ना पड़ता! दूसरों का जीवन तो चारों ओर से इस प्रकार कभी व्यर्थ नहीं हो जाता! तब उसी ने ऐसा कौन सा पाप किया है कि भगवान उसे इतना दुःख दे रहे हैं!

सोच कर मनोरमा रो उठी। उसे कुछ समझ में नहीं आया। उसकी व्यथा का बोझ भी कम नहीं हुआ। अपने समस्त जीवन की व्यर्थता को समझ वह अत्यन्त मर्मव्यथा से पीड़ित हो उठी।

इधर अमल मनोरमा के घर से निकल कर अपने आफिस घर में दरवाजा बन्द कर अपने सर पर हाथ रख कर एक कुरसी पर बैठ रहा। उसका समस्त अन्तर एक तीव्र ज्वालामय धिक्कार से भर गया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसने एक देवी का अपमान किया है। अपने छोटे मन के क्षुद्र मापदण्ड से माप कर उस देवी को मनुष्य रूप में देख कर उसने जो अपराध किया है उसकी क्षमा नहीं है। अब वह मनोरमा के पास या इन्द्रनाथ के पास कैसे मुंह दिखा सकेगा यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

बहुत देर तक इसी प्रकार रहने बाद उसने अपने टेबिल

के ड्रावर को खींचा और उसमें से एक सोने के लाकेट में लगा हुआ छोटा फोटोग्राफ निकाला। यह मनोरमा का ही फोटोग्राफ था। बहुत दिन हुआ उसने इसे अपने हाथ से खींचा था। उसने तो ऐसे कितने ही चित्र खीचे थे, पर केवल इसी फोटोग्राफ को इतना यत्नपूर्वक रक्खा था—ऐसा क्यों!

अमल सचमुच बहुत दिन से मनोरमा से प्रेम करता था, परन्तु उसका यह प्रेम उसके हृदय की एक गुप्त सम्पद् था, जीवन का बीज-मन्त्र था। इस बात को किसी को खोल कर कहने से सर्वनाश होता। इस बात को किसी तरह भी प्रकाश करने से मनोरमा का अपमान करना होता—क्योंकि मनोरमा देवी थी, ब्रह्मचारिणी थी। यही सोच कर उसने अब तक इस प्रेम को अपने वक्ष के सब से भीतरी पर्दे में गुप्त रख छोड़ा था। आज सुलता की एक तुच्छ बात ने उसके इतने दिनों के इस गुप्त प्रेम को प्रकाश कर डाला था।

अमल ने उस फोटोग्राफ लगे हुए लाकेट को इस तरह पर पहना कि वह ठीक उसके वक्ष पर पड़ गया, तब उसके ऊपर से उसने कपड़ा पहन लिया। इसके बाद शून्य मन से सोचने लगा कि मनोरमा के सम्बन्ध में अब उसका कर्त्तव्य क्या होगा। अब तक उसने जो सब कल्पनाएं की थीं वे तो अब सभी अग्राह्य हो गई थीं, अविवेच्य हो गई थीं। तब अब क्या उपाय करना चाहिये? उसने सोचा कि मनोरमा को कालेज बोर्डिंग या विधवाश्रम में भेज देने के सिवाय और

दूसरा कोई उपाय नहीं है। पर इतना सोचते सोचते ही वह फिर पहले की भांति ही पुनः उसी स्वप्न की आलोचना में निमग्न हो गया और बहुत देर तक चेष्टा करने के बाद कहीं जा कर वह अपने को उस स्वप्नसागर से हटा सका। उसने ठीक किया कि इन्द्रनाथ के आने पर उससे राय लेकर ही तब अंतिम निश्चय किया जायगा, परन्तु इतना स्थिर है कि अब मनोरमा को एक क्षण के लिये भी अपने घर में रक्खा नहीं जा सकता। ऐसा करने से मनोरमा न मालूम क्या क्या सोचेगी।

अचानक उसका हृदय कांप उठा। वह जो मनोरमा को इस प्रकार अकेली छोड़ कर चला आया है उसका कुछ कुफल तो नहीं होगा! वह कहीं लज्जा से आत्महत्या तो नहीं कर लेगी! क्या मालूम? वह झट दरवाजा खोल कर बाहर निकला। देखा कि बेयरा टुकू को लेकर सीढ़ी से उतरा आ रहा है। बेयरा से पूछने पर उसने कहा, "मनोरमा सो गई हैं।"

अमल ने आया को बुला कर कहा, "तू उसी घर में जा कर बैठी रह। मनोरमा की नींद टूटने पर जब वे कपड़े बदल लें तो मुझे खबर देना।" इसी समय उसे ख्याल आया कि मनोरमा के पास तो बदलने को कपड़े ही नहीं हैं। उसने चट आया को अनीता की एक आलमारी की कुंजी दे कर कहा, "आलमारी से कोई साड़ी निकालकर पहनने के लिये दे देना। सन्ध्या को मैं कपड़े ला दूंगा।"

इसके बाद उसने टेलीफोन से एक मित्र से बातचीत की।

पर उसका वह मित्र घर में नहीं था, उसकी स्त्री भी घर में नहीं थी। उसके बेयरा से अमल ने टेलिफोन में कह दिया, "अपनी मालकिन के आने पर उन्हें चट मेरे यहां भेज देना। एक स्त्री को उनको अपने घर ले जाना होगा—बहुत आवश्यक काम है!"

इस बीच में टुकू आकर अमल के पास खड़ा हो गया था। उसके दुःखित मुंह की ओर देख कर अमल का प्राण रो उठा। उसने टुकू को उठा कर अपने हृदय से लगा लिया। इस समय उसका मन उसे केवल यही याद दिला रहा था कि यह मनोरमा का लड़का है।

चालीसवां परिच्छेद

मनोरमा रोते रोते सो गई थी। जब नींद टूटी तो बहुत देर हो गई थी।

आया ने बाथरूम में हाथ मुंह धोने का सामान ठीक कर रक्खा था। मनोरमा के उठते ही उसने उसे मुंह हाथ धोने और कपड़े बदलने के लिये कहा। बोली, "साहेब ने कहा है।" इसके बाद आलमारी खोल कर वह पास खड़ी हो गई।

मनोरमा अन्यमनस्क सी हो कर आलमारी के पास पहुँची।

आया ने जिस आलमारी को खोला था उसमें विधवा के पहन-ने के योग्य कोई कपड़ा तो था ही नहीं, और साधारण कपड़ा भी एक नहीं था। यह आलमारी अनीता के रंग विरंग की सिल्क और क्रेप की साड़ियों से भरी हुई थी।

इस आलमारी के पास खड़ी हो कर मनोरमा के मन में नारी की स्वाभाविक शोभा की लालसा जाग उठी। वह एक बहुत अच्छी गुलाबी रंग की साड़ी और ब्लाऊस लेकर बाथरूम में चली गई। स्नान कर उसने बहुत सुविन्यास के साथ कपड़े पहने और अपने कृष्ण-कुञ्चित बालों को सवारा। वह इस विद्या में बहुत निपुण थी, और उसने इस विद्या का प्रयोग अपनी भाभी पर अनेक बार किया भी था। सज्जित हो कर जब वह दर्पण के पास जाकर खड़ी हुई, तो वह अपने रूप को देख कर स्वयं ही मुग्ध हो गई। उसे क्यों यह प्रसन्नता हुई, मालूम न हुआ—बल्कि इसके बाद ही इस साज सज्जा पर उसे अपने ऊपर कुछ क्रोध हो उठा।

उसके मन में उसके अनजानते में जो सब प्रक्रियाएं हो गईं और जिनके कारण उसे इस वस्त्र में सज्जित होने में एक बार आनन्द बोध हुआ था उन्हें वह स्वयं भी समझ न सकी थी, पर वास्तव में बात यह थी कि अमल जो उससे प्रेम करता है यह जान कर आज अपने पास उसका मूल्य बढ़ गया है। जिस शरीर को वह अब तक केवल पीड़ित ही करती चली आ रही थी उसी को आज अमल के लिये सज्जित करने की

इच्छा उसकी हो उठी थी। इसके अतिरिक्त वह यह भी अनुभव कर रही थी कि अपने हाथ में आई हुई लक्ष्मी को उसने पैरों से ठुकरा दिया है और अब अमल उसके पास पुनः कभी नहीं आयगा। तथापि वह आशा को भी किसी प्रकार छोड़ नहीं सकती थी और अपने मन के गोपनतम स्तर में वह उसी शुभ मुहूर्त्त की प्रतीक्षा कर रही थी। इस समय उसी शुभ सुयोग को पाने के लिये अपने को अमल की आंखों में नयनाभिराम बना देने की आकांक्षा उसके हृदय में उठ खड़ी हुई थी।

बाथरूम से निकलते ही लज्जा उसके सिर से पैर तक छा गई। एक बार उसने सोचा कि जाकर सादा कपड़ा पहने। परन्तु सादा कपड़ा वहां कोई हो भी तो! उसने आलमारी की साड़ियों की ओर देखा—बिना रंग की एक भी साड़ी उस आलमारी में नहीं थी। यह देख उसने अपने मन को समझा दिया कि उसे बाध्य हो कर ही यह कपड़ा पहनना पड़ा है। यह सोच उसका मन कुछ शान्त भी हो गया।

वह धीरे धीरे कमरे से निकली। क्यों निकली? क्या मालूम! उसके मन ने उसे निकलने के लिये बाध्य किया। धीरे धीरे, शङ्कित चरणों से, वह ड्राइंगरूम की ओर चली, पर उधर जाने में उसके पैर कांपने लगे—यदि अमल वहां हो तब? तौभी वह वहां गई। अमल वहां न था, परंतु उसको न पाकर वह सन्तुष्ट न हुई, बल्कि एक तरह की निराशा उसके मन में छा गई।

परन्तु अमल शीघ्र ही आ गया। मनोरमा एक कुरसी पर बैठ कर अन्यमनस्क सी हुई भई अनीता की एक गाने की पुस्तक का पन्ना उलट रही था कि ऐसे समय में अचानक अमल वहां आकर विस्मित और अवाक् होकर खड़ा हो गया।

अमल टुकू को लेकर खेल रहा था। उसका समस्त अन्तर इस सुन्दर शिशु के स्नेह से प्लावित हो गया था। जो स्नेह इस शिशु की माता के सन्मुख जाकर व्यर्थ हो गया था अब वह इस शिशु के प्रति द्विगुण वेग से प्रवाहित होने लगा। वह उससे नाना प्रकार का खेल कर परम तृप्ति अनुभव कर रहा था। टुकू को आफिस घर में रख कर अमल अपने फोटो का एलबम लाने यहां आया था, पर आकर मनोरमा की इस मोहिनी मूर्त्ति को देख वह एक दम स्तम्भित होकर खड़ा हो गया। कुछ देर के बाद उसे याद आया कि इस तरह खड़ा रहना असभ्यता का काम है अस्तु वह गम्भीर होकर बोला, "तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं हुई, मनोरमा?"

मनोरमा ने केवल कहा, "नहीं!" इसके बाद दोनों चुप रहे। कुछ देर के बाद मनोरमा ने कहा, "बैठिये।" जिस कोच पर मनोरमा बैठी हुई थी वहीं पुस्तकों को हटा कर अमल के लिये जगह बना कर उसने बैठने के लिये कहा। अमल वहीं बैठ गया और डरता डरता बोला, "मनोरमा, मैंने तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया है उसे क्या तुम भूल सकती हो?"

यही तो वह सुयोग था जिसकी प्रतीक्षा अब तक मनोरमा कर रही थी। अब भी क्या मनोरमा से भूल होगी ! इस बार भूल करने से भी क्या फिर पुनः कोई सुयोग मिलेगा ? कदापि नहीं ! मनोरमा ने अपने हृदय के समस्त बल को संग्रह कर जमीन की ओर लज्जा-नम्र आंखों से देखते हुए अत्यन्त मृदुस्वर में कहा, "क्या भूलना ही पड़ेगा ? यदि भूल न सकूं तो ?"

इस बात को कह कर ही वह लज्जा से मर गई। निर्लज्ज के समान वह इस बात को कैसे कह सकी ? अमल उसे क्या समझेगा ?

पर अमल इस बात को सुनते ही चौंक उठा—उसने मनोरमा के मुंह की ओर देखा। उस मुंह के भाव को देख उसका मन आनन्द से नाच उठा। लज्जा से इस समय मनोरमा का मुंह गुलाब के समान लाल हो रहा था, परन्तु नयनों के कोनों में प्रेम की दीप्ति और अधरों पर खेलती हुई गुप्त हास्य रेखा वह किसी प्रकार भी छिपा न सकी थी।

अमल ने साहस कर कहा, "भूल नहीं सकोगी ! क्यों ?"

कुछ विषन्न होकर मनोरमा बोली, "आपकी क्या यही इच्छा है कि मैं भूल जाऊं ?"

अमल का प्राण नाच उठा। उसने कहा, "तुम यदि न भूलना चाहो मनोरमा, तो मैं क्या तुम्हें भूलने को कह सकता हूं ? यह क्या सम्भव है ?"

मनोरमा के एक हाथ को अपने हाथ में लेकर अमल ने कहा, "मनोरमा, मैं ठीक नहीं समझ रहा हूं! मुझे समझा कर कहो! मेरी भूल तो नहीं हो रही है? यदि समझने में मुझसे भूल हुई हो तो मुझे क्षमा करो, पर मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि तुम मुझसे प्रेम करती हो,—मेरा मन मुझसे कह रहा है कि अवश्य मेरी आकांक्षा सफल होगी और तुम मेरी बनोगी! मेरी बनोगी मनोरमा?"

अमल के हाथ के स्पर्श से मनोरमा के समस्त शरीर में एक तीव्र विद्युत् प्रवाह बह गया। उसका समस्त शरीर अर्द्ध-चेतन सा हो गया। उसके अन्तर में आनन्द का ज्वार बह गया। उसके अन्धकार पूर्ण अन्तर की अमावस्या अदृश्य होकर उसके हृदय के कोने कोने में पूर्णिमा का आलोक जगमगा उठा। वह अमल के वक्ष पर अपना सिर रख कर बोली, "अब भी क्या तुम नही समझ सकते अमल?"

अमल उठकर खड़ा होगया। "हुर्रा!!!" कहकर वह चिल्ला उठा। उसने मनोरमा को दोनों हाथों से पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया और इस आलिङ्गन के आवेग से विभोर होकर बोला, "तब परसों हम लोगों का विवाह होगा, क्यों? राज़ी हो न?" मनोरमा हंसकर बोली, "तुम्हारी जैसी इच्छा!"

आफिस घर में टेलिफोन की घंटी बज उठी। अमल वहां गया। उसके वही मित्र टेलिफोन कर रहे थे। अमल की आवाज सुन वे बोले, "मेरी स्त्री को तुमने बुलाया है! बात क्या है?

मोटर तैयार है, हम लोग आ रहे हैं, पर चारुबाला इस को सुनने के लिये बहुत व्याकुल हो रही है कि बात क्या है? किस स्त्री को लाना होगा? वह कौन है? कहां है?"

अमल हंस कर बोला, "मेरी ब्राइड है! समझे! कि अब भी नहीं?"

"यह क्या......?"

"परसों मेरी शादी है।"

"लड़की कौन है?"

"आही कर देख लेना न!"

"अच्छा आ रहा हूँ—मगर छिपे छिपे यहां तक पहुंच गये, हजरत!!"

उसके साथ ही साथ अमल ने अपने एक दूसरे मित्र के पास भी टेलिफ़ोन कर दिया। ये विवाह के रजिस्ट्रार थे—उसके साथ सब ठीक ठाक कर लिया कि परसों विवाह होगा।

इतना कह कर अमल ड्राइंगरूम में लौट गया। मनोरमा उसे देख मुस्कुरा उठी। अमल ने आवेग के साथ उसे अपने आलिङ्गन में बांध लिया और इसी अवस्था में विवाह के प्रबन्ध के विषय में उससे सब बातें करने लगा। दोनों के हृदयों में आनन्द सिन्धु बहने लगा।

बहुत देर के बाद अमल ने मनोरमा को अपने हृदय से अलग किया, पर अपने बाहुपाश में बांधे हुए ही उसने अपनी छाती के पास से उस लाकेट को निकाल कर उसे दिखलाया।

उसे देखते ही मनोरमा का प्रत्येक अङ्ग आनन्द से नाच उठा, पर वह बोली, "यह कभी मेरा चित्र नहीं है!"

अमल ने मनोरमा को जोर से अपने वक्ष पर दाब कर उसका मुंह चूम लिया और कहा, "ठीक कहती हो! यह मनोरमा का चित्र नहीं—मिसेज अमल का चित्र है!!"

"अमल! यह क्या!"

द्वार के पास से स्तम्भित और भीत इन्द्रनाथ का कण्ठ-स्वर सुनते ही मनोरमा और अमल दोनों चौंक उठे।

एकतालीसवां परिच्छेद

इन्द्रनाथ की माता की मूर्च्छा बहुत गुरुतर हो गई थी। बहुत कष्ट से होश में आने बाद भी वे सारा दिन बार बार मूर्च्छित होती रहीं। घर के सब लोगों को बहुत भय हुआ। सन्ध्या होने पर उनकी अवस्था कुछ सुधरी।

अपनी स्त्री की अवस्था को देख कर इन्द्रनाथ के पिता भी बहुत घबड़ा गये। अन्त में उन्हें कहना ही पड़ा, "मैं मनो-रमा को ले आऊंगा—उससे कुछ न बोलूंगा—तुम घबड़ाओ मत, अपने को सम्हालो।"

इन्द्रनाथ यह शुभ संवाद सुनते ही मनोरमा के पास दौड़ा, परंतु परम आनन्द से बहुत दिनों के बाद अमल के घर में पहुँच कर उसने जो दृश्य देखा उससे वह वज्राहत के समान स्तम्भित हो कर खड़ा रह गया। साथ ही उसे और एक दिन की बात याद आ गई। जिस दिन इसी घर में अमल भी ठीक इसी प्रकार स्तम्भित हो कर खड़ा रह गया था। दोनों में पार्थक्य यह था कि उस समय इन्द्रनाथ प्रायः निर्दोष था और आज अमल निश्चय दोषी है। इन्द्रनाथ का स्वरूप पागलों की भांति हो गया। वह केवल इतना बोला, "अमल! यह क्या!"

अमल कुछ देर तक लज्जा से निर्वाक निश्चल होकर खड़ा रहा। इसके बाद उसने मनोरमा के मुंह की ओर देखा। वह मानो लज्जा से मरी जा रही थी। अपने को सम्हाल अमल इन्द्रनाथ के पास जाकर बोला, "भाई, मुझे मुबारकबादी दो! परसों हम लोगों की शादी होगी!!"

अमल ने इन्द्रनाथ का हाथ पकड़ लिया, परन्तु इन्द्रनाथ ने जोर कर अपना हाथ छुड़ा लिया। यह देख अमल दो कदम पीछे हट कर मनोरमा का हाथ पकड़ कर खड़ा हो गया और तब इन्द्रनाथ की ओर देख कर बोला, "भाई इन्द्र! तुम मेरी बात सुन दुःखित होरहे हो? क्यों? किस लिये? तुम्हारी इस उत्पीड़िता, लाञ्छिता, अपमानिता भगिनी को एक आश्रय मिला है, इस लिये? मनोरमा को अब तुम्हारे आश्रय में नहीं

रहना होगा, अन्न के लिये तुम्हारे पास लौट कर फिर भिक्षा नहीं करनी होगी, इस लिये? पर तुम दुःखित न हो, भगवान का ऐसा ही विचार है। जब मनुष्य दुःसाहस कर विचार के नाम से हिंसा करने को उद्यत होता है तब वे अनेक बार विचार के बन्धन को हटा कर मनुष्य का ऐसा ही परिहास करते हैं। एक दिन बड़ी चोट खाकर मैंने इस बात को समझा था। वह बात शायद तुम्हें अब तक याद होगी।"

इस अंतिम वाक्य से इन्द्रनाथ को क्रोध भी हुआ और कष्ट भी पर वह बहुत नम्र हो कर बोला, "तुम्हारी बातें कितनी झूठी हैं! मैंने मनोरमा का त्याग किया है तुमने उसे आश्रय दिया है! मैंने उसपर अत्याचार किया है और तुमने उससे प्रेम किया है! वह एक बार जब घर से निकल गई है तो उसका और कोई उपाय नहीं, तुम्हें कुछ मूल्य देकर तुम्हारे आश्रय को ग्रहण करने के सिवाय उसका कोई और उपाय नही है—यही सब बातें मनोरमा को समझा कर तुमने उसको सर्व्वदा के आदर्श से स्खलित कर दिया है यह मुझे मालूम हो गया है। पर यह तुम्हारी कितनी बड़ी नीचता है क्या इसको भी अभी तुमने सोच कर देखा है? वह निराशा की स्थिति में पड़ कर तुम्हारे हाथ में आई है—इसी लिये क्या तुम उसके साथ—ओः, क्या कहूँ अमल, तुम इतने बड़े पापी हो!!" इन्द्र से खड़े न रहा गया, वह एक कुरसी पर बैठ गया।

अमल ने अपने क्रोध को दबा कर कहा, "देखो इन्द्रनाथ,

१७

तुम्हारा अपना मन बहुत क्षुद्र है, इसलिये तुम सब के मन को क्षुद्र समझते हो। मनोरमा मेरे हाथ में आ पड़ी है, वह बहुत असहाय है, इसी लिये जो मैं उसका अपमान करने की चेष्टा करूंगा, मैं इतना नीच नहीं हूँ—मैंने ऐसी कोई चेष्टा की भी है या नहीं सो तुम अपनी बहन ही से पूछो। अपनी तरफ से मैं केवल इतना ही पूछूंगा कि क्या तुम्हारे मन में यह बात नहीं आ सकती थी कि हम लोग दोनों एक दूसरे से बहुत दिनों से प्रेम करते चले आ रहे थे और आज विधाता के घटना-चक्र से उस प्रेम के बीच का परदा हट गया है! मगर ठीक है, यह तुम सोच ही कैसे सकते थे! ऐसा सोचने से तुम्हें स्वभाव-विरुद्ध उदारता जो दिखलानी पड़ती!!"

इन्द्रनाथ ने मनोरमा के मुंह की ओर देखा। मनोरमा निर्भयता के साथ अमल के मुंह की ओर देख रही है—इन्द्रनाथ ने यह भी देखा। उसकी आंखों में जिस अनन्त प्रेम की छाया थी उसे भी इन्द्रनाथ ने लक्ष्य किया। वह जमीन की ओर देख कर सोचने लगा।

मनोरमा को जो अमल से प्रेम है—इस संबन्ध में उसे अब कोई भी सन्देह नहीं रह गया। परन्तु इसको जान कर उसका हृदय आनन्द से पुलकित नहीं हुआ। ऐसा करके मनोरमा इन्द्रनाथ के मन में बहुत नीचे चली गई। उसने इतने दिनों तक मनोरमा को विधवा ब्रह्मचारिणी के रूप में देखा था—तत्वज्ञानी, सत्यनिष्ठ, धर्मप्राण मनोरमा के आदर्श को

ध्यान कर अब तक वह प्रीति और गर्व के आनन्द में प्लावित रहा करता था, पर अब यह मनोरमा वह पहले की मनोरमा न थी—यह अब एक साधारण नारी मात्र थी, इस बात को सोच कर उसके मन में बहुत कष्ट हुआ। विधवा-विवाह किसी किसी अवस्था में अच्छा है वह बहुत दिनों से इसे स्वीकार करता था, उसने स्वयं ही एक दिन मनोरमा के विवाह की कल्पना की थी, परन्तु विवाह का निम्न-आदर्श मनोरमा के योग्य नहीं है उसने इस बात को मान लिया था—और इसी लिये आज की यह बात उसके हृदय में कांटे के समान चुभने लगी।

उसे चिन्तित देख आखिर अमल ने कहा, "क्या सोच रहे हो इन्द्रनाथ! तुम क्या समझे थे कि अमल के विवाह की कोई सम्भावना ही नहीं। मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानते हो कि मैं इच्छा करने ही से बहुत अच्छा विवाह कर सकता था। तब सबको छोड़ कर केवल तुम्हारी इस बहन ही से मैंने विवाह करना चाहा सो किस लिये? केवल इसी लिये कि मैं मनोरमा से प्रेम करता था और मनोरमा भी मुझसे प्रेम करती थी—केवल आज ही नहीं, बहुत दिनों से हम दोनों को एक दूसरे से प्रेम है। पर खेद कि यह बात आज के पहिले हम दोनों पर प्रगट न हुई थी। अब, जब यह छिपा रहस्य प्रगट हो गया है तो यह आनन्द की ही बात है, सौभाग्य की ही बात है। तुम पश्चाताप न करो, दुःख मोल न लो।"

इन्द्रनाथ थोड़ी देर तक चुप चाप रहा, तब मनोरमा के

मुंह की ओर देख कर बोला, "मनोरमा, अमल की बात सच है?"

अचानक मनोरमा का मुंह गुलाब के फूल के समान लाल हो गया। लज्जा ने उसका गला दबा दिया, पर आज उसे एक नया बल मिला था। वह जमीन की ओर देखती हुई बोली—"हां, भैया! पूरी तरह से!"

इन्द्रनाथ ने एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर कहा, "तब मैं तुम लोगों को सर्वान्तःकरण से आशीर्वाद देता हूं, तुम लोग सुखी हो। अमल, मैंने तुमसे बहुत कड़ी बात कही, इसके लिये मुझे क्षमा करना।"

कूद कर अमल ने इन्द्रनाथ के हाथ को बहुत जोर से खींचा और उसे अपने गले से लगा लेना चाहा, परन्तु इन्द्रनाथ इस आनन्द में उसके समान उत्तेजित न हो सका। अमल का हाथ छोड़ कर वह कुर्सी पर बैठा रहा।

अमल ने कहा, "फिर क्या सोचने लगे?"

इन्द्रनाथ बोला, "अमल, सोच यही रहा हूँ कि माता जी और पिताजी से क्या कहूँगा!"

अमल ने कहा, "क्यों, उनकी परित्यक्ता कन्या को एक आश्रय मिला है, वह पाप में नहीं डूबी है, वह धर्मपथ में चल रही है—इस बात को सुन कर क्या उनके दिल टूट जायेंगे तुम समझते हो?"

"नहीं भाई, अब तो अवस्था कुछ दूसरी ही है,—मैं मनोरमा को लेने के लिये आया था।"

कह कर इन्द्रनाथ ने घर में जो जो घटनाएं हुई थीं सब वर्णन कर डालीं।

मनोरमा वहुत आनन्दित हो गई। उसने अमल की ओर देख कर कहा, "तव आज मैं भैया के साथ घर जाऊं? एक दम परसों आकर..." कहते कहते लज्जित होकर वह रुक गई।

अमल ने इन्द्रनाथ से पूछा, "ऐसा क्या हो सकता है इन्द्रनाथ?"

इन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, "पिताजी के रहते वह फिर घर से वाहर निकल सकेगी ऐसा तो मुझे ज्ञात नहीं होता!"

मनोरमा के आनन्द-पूर्ण मुंह पर अन्धकार छा गया। अमल वोला, "तव परसों रात को विवाह के वाद ही हम दोनों जाकर उनको नमस्कार कर आयेंगे। मनोरमा, तुम्हारी क्या राय है?"

मनोरमा ने सिर हिला दिया। इसी समय एक मोटर आकर रास्ते में ठहरी। उसके भीतर से कई लोग उतर कर हंसते चिल्लाते अमल के घर में घुस आये और शोर गुल मचाने लगे। पीछे से एक सज्जन पुरुष ने चुरुट पीते हुए आकर अमल का गला पकड़ कर कहा, "शैतान! छिपे छिपे यहां तक कर डाला और किसी को खवर तक नहीं!!"

उनके पीछे आती हुई एक सुन्दरी युवती ने कहा, "पर शैतानिन कहां है!!"

एक दूसरी सुन्दरी युवती ने मुस्कुराते हुए कहा, "क्यों,

बयालीसवां परिच्छेद

इन्द्रनाथ को यह सब स्वप्न के समान मालूम हुआ। ये मानो मनुष्य हई नहीं हैं। ये युवतियां जो तितली के समान उड़ रही हैं—किसी भी क्षण में ये हवा में अदृश्य हो जा सकती हैं। वास्तविकता से इनका मानों कोई परिचय ही नहीं है। पर वह खुद भी तो मानों इन्हीं लोगों के समान स्वप्नमय हो रहा है—वह मुख जो इस घर में सर्वत्र विराज रहा था, इस घर के सब ऐश्वर्य में जिसकी छाप थी, अनीता—वह आज कहां है। उसको छोड़ कर क्या इस घर की कल्पना भी की जा सकती है!

इन्द्रनाथ को बहुत आश्चर्य हुआ कि उसकी दुःखी बहन मनोरमा इन सब ऐश्वर्यों की मालकिन होगी। अनीता के स्थान पर वही अब इस घर की अधिश्वरी होगी। उसे विश्वास न हुआ। यह क्या सच है? उसने अच्छी तरह आंखों को मल कर देखा कि यह स्वप्न नहीं है। वे लोग जो उस मूल्यवान साढ़ी पहिनी बालिका को लेकर नाच रहे हैं—जिसे चारों ओर

भव किया। इसी समय टुकू उसका हाथ पकड़ कर बोला, "मामा!"

इन्द्रनाथ स्वप्नराज्य से वास्तविक जगत में आ पहुँचा। उसका प्राण कांप उठा। उसने देखा कि टुकू के उस सम्बोधन में विश्व का सारा दुःख, सारी वेदना, भरी हुई है। मनोरमा आज इस अबोध बालक को छोड़ कर चली गई है—यह मानो इस शिशु को जन्मभर के लिये दुःख का निमन्त्रण दिया गया है। किसी समय यही शिशु मनोरमा के जीवन का एक मात्र आधार था, एक मात्र अवलम्ब था—पितृहीन तो हुआ ही था अब यह मातृहीन भी हो गया। प्रेम के आवर्त्त में पड़ कर मनोरमा अब क्या इस शिशु का आदर यत्न रख सकेगी? उस बवंडर के झकोरे में यह शिशु उसके हृदय से छिटक कर कहां जा पड़ेगा कौन कह सकता है? इन्द्र ने उस शिशु को अपने हृदय से लगा लिया।

इसी समय अमल ने आकर टुकू को अपनी गोद में उठा लिया। उसके ड्राइंग रूम में कीमती कीमती जितने खिलौने सजे हुए थे, उसने सब टुकू को दिया, इसके बाद इन्द्रनाथ से कहा, "चलो, टुकू को लेकर ज़रा टहल आवें।"

मोटर पर चढ़ टुकू को लेकर वह और इन्द्रनाथ नाना स्थानों में घूमे। उसे बायस्कोप दिखलाया, नाना प्रकार की मिठाइयां खिलायीं, नया कपड़ा और नाना प्रकार की साम-ग्रियाँ खरीद कर दीं। इसके बाद इन्द्र के घर के पास पहुँच

कर टुकू को चूम कर अमल ने इन्द्रनाथ की गोद में दे दिया।

उस समय इन्द्रनाथ के पिता सो गये थे। माता जी की शय्या के पास बैठ कर सरयू सेवा कर रही थी।

माता जी ने पूछा, "कौन इन्द्र? टुकू? हैं टुकू! तुझे इतने खिलौने कहां से मिले?"

टुकू ने गर्व से कहा, "मैंने इन्हें खरीदा है।" कह कर एक एक कर सब चीजें दिखलाने लगा।

माता जी ने फिर पूछा, "इन्द्र, मनोरमा कहां है?"

इन्द्रनाथ ने केवल इतना कहा, "माता जी, वह आज नहीं आई, परसों आयगी।"

"वह है कहां? अच्छी है न?"

"हां अच्छी है, अमल के एक मित्र की स्त्री चारुबाला के घर है, उसके लिये कोई चिन्ता अब नहीं।"

"अहा! अमल का भला हो। वे तो उसे घर से निकाल ही दे रहे थे।" कह कर वृद्धा रोने लगी।

इन्द्र थोड़ी देर इधर उधर की बातें करने बाद बोला, "माता जी, आपने एक बार कहा था कि मनोरमा का फिर से विवाह हो जाता तो उत्तम होता। मुझे मालूम होता है ऐसा कर देना ठीक है। क्यों?"

इन्द्र की माता ने एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर कहा, "हां, ठीक तो होता! कितनी ही लड़कियां तो विधवा होने बाद फिर से विवाह कर सुख के साथ संसार यात्रा निर्वाह कर रही हैं!"

"माता जी, आप 'होता' क्यों कह रही हैं ? अब क्या नहीं हो सकता है ?"

"क्या मालूम ? अब क्या कोई उससे विवाह करना चाहेगा ?"

"यदि कोई करना चाहे, यदि कोई अच्छा पात्र मिले, तब आपकी क्या राय होगी ?"

इन्द्र की माता उठ कर बोलीं, "तुम क्या कह रहे हो इन्द्र ? यह बात क्यों पूछ रहे हो, बताओ !"

माता के मुंह की अवस्था को देख इन्द्र का साहस बढ़ा। उसने कहा, "मनोरमा क्यों नहीं आई बताऊं ! परसों उसका विवाह है !"

इन्द्र की माता ने उत्तेजित होकर कहा, "क्या बकते हो ! मनोरमा का विवाह ! किसके साथ विवाह ?—"

"अमल के साथ।"

सरयू के हाथ से पंखा गिर पड़ा—उसने भौंचक होकर स्वामी की ओर देखा। इन्द्र की माता भी अवाक् हो गईं। किसी के मुंह से कोई बात न निकल सकी।

माता के हृदय में जिन परस्पर विरुद्ध शक्तियों का संघात हो रहा था उसका कौन वर्णन कर सकता है ? परन्तु अन्त में स्नेह ही की जय हुई। उन्होंने आनन्द पूर्वक कहा, "अमल दीर्घजीवी हो !"

सरयू ने कहा, "यह क्या सच है ? अब क्या होगा ?" माता की बातों को सुन कर इन्द्रनाथ के सिर से एक बोझ

सा उतर गया था। सरयू की बात सुन उसने हंस कर कहा, "उपाय? और क्या होगा? तुम्हारा जैसा हुआ है उसका भी वैसाही होगा,—हां धूमधाम कुछ अधिक होगी। धनवान का घर है, वहां रुपये का तो अभाव नहीं है!"

इन्द्र की बात सुन पहले पहल सरयू के मन में कुछ निराशा हुई, परन्तु फिर अमल के घर की साज-सज्जा, अमल के स्वभाव-चरित्र, आदि के बारे में सोच उसके मन की ग्लानि आपही फट गई। तब उसे यह जानने की इच्छा हुई कि ऐसा हुआ क्यों। मनोरमा से एकान्त में मिल कर सब कुछ पूछने के लिये वह अस्थिर हो गई। इन्द्र की बात सुन उसने बात टाल हंस कर कहा,

"अनीता के साथ भेंट हुई है?" इन्द्र गम्भीर होकर बोला, "नहीं।"

इन्द्र की माता ने बहुत देर के बाद कहा, "इस बात को तुम्हारे पिता से कहना अभी ठीक नहीं है।"

इन्द्रनाथ ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया पर बोला, "पर वे लोग परसों आशीर्वाद लेने के लिये जो आयेंगे!!"

इन्द्र की माता ने कहा, "उन्हें यहां आने की कोई आव-श्यकता नहीं, उन्हें मना कर देना, मैं ही वहां जाकर दोनों को आशीर्वाद दे आऊंगी।"

सरयू ने टुकू को अपने गोद में बैठा लिया। न मालूम क्यों, उस बच्चे को देख कर उसका हृदय रोने लगा।

तैंतालीसवां परिच्छेद

बहुत सोच विचार करने के बाद अमल इन्द्रनाथ को लेकर अनीता से मिलने श्यामासुन्दरी के घर गया था।

श्यामासुन्दरी के घर में प्रवेश कर अमल और इन्द्रनाथ ने देखा कि गोस्वामीजी की असुन्दर मूर्त्ति सामने ही विराज रही है—पर उसी के पास यह कौन बैठी हुई है?

एक अति सामान्य लाल पाड़ की गैरिक साड़ी और एक साधारण गेरुवा रंग की समीज पहने हुए अनीता वहीं बैठी हुई थी। उसके गले में तुलसी की माला थी और हाथ में एक जोड़ा बाला। यह योगिनी मूर्त्ति अनीता ही है—यह कुछ देर तक अमल और इन्द्रनाथ समझ ही न सके।

अनीता उसी प्रकार भूमि पर ही बैठी भूमि की ओर देखती रही। पर उसके हृदय में यह क्या ताण्डव नृत्य होने लगा! यह क्या आनन्द-कल्लोल उठ खड़ा हुआ! इतने दिन बीत गये हैं, तो भी क्या उसका हृदय शान्त नहीं हुआ! इन्द्रनाथ को अपने पास देख कर वह इतना अधीर क्यों हो गई!!

उसने एक बार लक्ष्मीनारायण की ओर देख कर मन ही मन कहा, "हे नारायण, यह तुम्हारी कैसी लीला है! एक बार दासी के हृदय में उदय होकर क्या फिर दासी को त्यागना चाहते हो—क्यों मुझे इस परीक्षा में डाल रहे हो? मैं दीन हूं, मैं दुर्बल हूं! तुम्हारे चरण-रज के योग्य नहीं हूं, स्वामी! फिर भी, एक बार अपना बना कर अब क्यों दासी को इस परीक्षा में डाल रहे हो!" उसने आंखें बन्द कर लीं और नारायण मूर्ति का ध्यान करना चाहा पर उसके मानस पट पर इन्द्रनाथ की ही मूर्ति जाग उठी—परन्तु यह क्या? उस मूर्त्ति के भीतर वह धुंधला सा क्या है? वह किसकी मूर्त्ति है? वह किसकी वंशी ध्वनि बज उठी है! अहा! क्या सौन्दर्य है! उसके मन की अवस्था अद्भुत हो गई।

अमल और इन्द्रनाथ अनीता को देख स्तब्ध और नीरव होकर खड़े रह गये थे। अन्त में बहुत कष्ट से विषाद पूर्ण कण्ठ से अमल ने पुकारा, "अनीता!"

अनीता निर्वाक, स्तब्ध, तद्गतचित्त, ध्यानस्थ हो रही।

फिर इन्द्रनाथ ने पुकारा, "अनीता!"

अनीता ने आंखें खोल कर कहा, "क्या?" तब भक्ति पूर्वक इन्द्रनाथ के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया।

इन्द्रनाथ चौंक कर बोला, "यह क्या अनीता, मुझे लज्जित न करो!!"

हंसी के आवरण में अपनी यातना को छिपाने की चेष्टा

करता हुआ बहुत कष्ट के साथ अमल बोला, "धन्य इन्द्रनाथ, तुम तो आज देवता हो गये!"

अनीता ने भी हंस कर कहा, "हां भैया, ये मेरे देवता ही हैं! मगर तुम क्यों कुण्ठित हो रहे हो? तुम भी तो मेरे गुरु हो, तुम्हीं से मन्त्र दीक्षा पाकर तो मैं नारायण को पा सकी हूं!"

अमल विरक्त हो गया। सचमुच अनीता को धर्मोन्माद हो गया है देख कर वह कुछ निराश भी हो गया। और भी दुःख उसे इस बात का हुआ कि वह एक अपरिचित वृद्ध को अपना पागलपन दिखला कर अपने को तुच्छ बना रही है। वह अपनी बात को बदल कर बोला, "अनीता, हमलोग तुम्हें घर ले जाने के लिये आये हैं। लौट चलो। अनीता बहन, भूल जाओ, मुझ पर क्रोध न करो। आज अगर तुम मेरे घर पर न चलोगी तो सब उत्सव नष्ट हो जायेंगे।"

अनीता को बहुत सी बातें याद आने लगीं, पर उनको दबा उसने प्रश्न किया, "कैसा उत्सव, भैया?"

"कल मेरा विवाह है!"

अनीता आनन्दित हो गई। बोली, "अच्छा! भैया, किसके साथ?"

"सो मैं अभी नहीं बताऊंगा। तू झट कपड़े पहिन और मेरे साथ चल!" कह कर अमल मुस्कुराने लगा।

अनीता ने गोस्वामीजी की ओर देखा। गोस्वामीजी ने हंस कर कहा, "जाओ मां, अपने भाई के विवाह में नहीं जाओगी?"

अमल ने तीव्र दृष्टि से वृद्ध की ओर देखा। यह कौन बूढ़ा है जो उसकी बहिन पर प्रभुत्व फैलाये बैठा है। बात अमल को अच्छी नहीं लगी, पर शायद अनीता को क्रोध हो इस भय से वह आत्मदमन किये बैठा रहा।

अनीता उठ कर बोली, "चलो भैया मैं तैयार हूं।"

गोस्वामी जी ने कहा, "इन वस्त्रों में क्या उत्सव के घर में जाना चाहिये मां? विवाह के घर में ऐसे योगिनी के रूप में जाना क्या अच्छा मालूम होता है?"

अनीता हंस कर कपड़े बदलने चली गई, उसके चले जाने पर अमल ने गोस्वामी जी से कहा, "तुम—आप—कौन हैं, महाशय!

"श्रीनयवानका दासानुदास, श्रीराधागोविन्द गोस्वामी!"

अमल ने इस नाम को सुना था, गायक और भक्त के नाम से इनकी सुख्याति थी, यद्यपि अमल ने इस मूर्ति को पहले कभी नहीं देखा था। उसने हाथ उठा कर उन्हें नमस्कार किया। इन्द्र ने उनके चरणों को स्पर्श कर प्रणाम किया। गोस्वामी जी ने हंस कर दोनों को आशीर्वाद दिया।

इन्द्र ने कहा, "आपका नाम अनेक बार सुना है। आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपसे कई एक बातें करना चाहता हूं, पर सब से पहिले इस अनीता के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना है।"

"क्या कहना है?"

"क्या आपने अनीता को वैष्णव धर्म्म में दीक्षित किया है?"

"नही, मैंने नही किया है, परन्तु उन्हें जो मन्त्रदीक्षा मिल चुकी है यह बात आज उन्हीं के मुंह से अभी मुझे मालूम हुई है।"

"किससे मन्त्रदीक्षा मिली है?"

"आपने भी तो सुना—इन बाबू साहब से।"

स्वामी जी ने मुस्कुरा कर अमल की तरफ देखा। अमल ने कुछ क्रोधित होकर कहा, "देखिये स्वामी जी, ये सब बातें जाने दीजिये। मेरा वैष्णव धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, और न कान में मन्त्र फूंक कर रुपया उपार्जन करना ही मेरा व्यवसाय है—"

शान्त रह कर स्वामी जी ने कहा, "यह तो मेरा भी व्यवसाय नहीं है।"

"शायद न हो, पर कोई एक ऐसा मनुष्य अवश्य है जिसे मेरी बहन के धन सम्पति की खबर है, और जो मन्त्र-दीक्षा का व्यवसाय भी करता है। वह कौन है यही बस मैं जानना चाहता हूं। आप यह मुझे बताइये कि किसने अनीता को गेरुआ पहनाया?"

गोस्वामीजी हंसते हुए बोले, "श्रीलक्ष्मी नारायण ने! तुम्हारे सामने जो खड़े हैं, वही तो चक्री हैं—उन्हीं से पूछो। यदि सुकृति होगी तो उत्तर मिलेगा।" कह कर गोस्वामी जी ने लक्ष्मीनारायण की मूर्त्ति की ओर दिखला दिया।

अमल क्रोध से पागल हो गया। वह जोर से बोला, "देखता

हूँ कि आपको साधे वाक्यों से उत्तर देने का अभ्यास नहीं है। तो भी पूछता हूं—अनीता के सब रुपये भी क्या लक्ष्मीनारायण के पेट में चले गये या अभी कुछ बाकी हैं?"

"मुझे उनके रुपये पैसों की तो कोई खबर नहीं! हां यह सुना है कि उन्होंने इस मन्दिर की मरम्मत करवा दी है—"

"अगर ऐसा किया तो आठ दस हज़ार रुपये हुए—उसके बाद?"

"लक्ष्मी को एक हार भेंट किया है, वह शायद हज़ार रुपये का होगा, और एक महोत्सव हुआ था उसमें भी प्रायः एक हज़ार रुपये खर्च हुए होंगे। इसके सिवाय और किस प्रकार क्या खर्च हुआ और क्या बचा यह मुझे मालूम नहीं।"

"आपने जब उनके रुपयों की कोई खबर न रखते हुए भी दस हज़ार रुपयों के खर्च का हिसाब सुना दिया, तो जो उनकी खबर रखने वाला होगा वह न मालूम कितने हज़ार का खर्च निकालेगा! खैर, उसके बाद और एक बात है—आपके साथ अनीता का क्या सम्बन्ध है? ठहरिये, पहले मैं अपने आशय को स्पष्ट कर दूं जिससे किसी तरह की भूल न हो सके। आपने उसे मन्त्र-दीक्षा नहीं दी है यह मैं मान लेता हूँ, तो भी आपका उस पर खूब प्रभुत्व है यह तो अवश्य देख रहा हूं। अतएव महाशय, प्रथम साक्षात् से लेकर अबतक अनीता के साथ आपका जो कुछ सम्बन्ध रहा हो उसका कुछ विवरण दें तो बहुत अच्छा हो।"

स्वामी जी ने हंस कर कहा, "अच्छी बात है, तो सुनिये। अनीता ने मुझे कीर्त्तन और भजन सीखने के लिये नवद्वीप से बुलाया था। मैंने आकर उसे कीर्त्तन और भजन सिखलाना शुरू किया। उसको सङ्गीत शास्त्र में असाधारण निपुणता थी, परन्तु कीर्त्तन या भजन केवल गायन की वस्तु नहीं है—इसमें प्राण, भक्ति, प्रेम, की आवश्यकता है। भक्त का प्राण जब प्रेम रस से विह्वल होकर सङ्गीत की धारा में प्रवाहित होने लगता है तभी उसे कीर्त्तन कहते हैं—"

अमल ने कहा, "यहां अत्यन्त विशद विवरण न रहे तो भी चल सकता है—अच्छा, तब?"

"तब मैंने उससे कहा,—"मां, केवल कसरत करने से नहीं चलेगा, भक्ति चाहिये!" मां ने कहा, "मैं भक्ति कैसे पा सकती हूं।" मैंने कहा—"साधन करना होगा।"

"ठहरिये—साधन की प्रणाली? क्या आप ही ने उसे मन्त्र दिया?"

"नहीं, मैंने नहीं दिया। मां ने कहा, "मुझे दीक्षा दीजिये।" मैं जान गया था कि वे कौन हैं और उनमें क्या है, अस्तु उनको दीक्षा देने की सामर्थ मुझमें कहां थी! मैंने कहा कि भगवान लक्ष्मीनारायण स्वयम् ही तुम्हें दीक्षा देंगे। सचमुच, मां की दीक्षा हो गई—देखते ही देखते मां की हालत बदल गई, वे कृष्ण-प्रेम में विभोर हो गईं!!"

"ठीक है ठीक है, और आपही ने शायद कहा होगा कि यदि

कृष्ण को पाना चाहती हो तो विलास त्याग करो, अलङ्कार कपड़े आदि दान कर दो, सर्वस्व खोकर नारायण के चरणों में आश्रय लो। क्यों? इसीलिये न वे सब कुछ त्याग कर गेरुवा वस्त्र धारण करने लगीं?"

"नहीं, मैंने यह सब कुछ नहीं कहा। आज अचानक ही देखा कि वे रानी वेष परित्याग कर योगिनी बन गई हैं। मैं मोह से अन्ध हो रहा था, मैंने कहा, "माँ, आज तुम्हारा यह वेष क्यों?" माँ ने कहा, "इच्छा हुई।" मैंने इस उत्तर को स्वीकार कर लिया।"

इन्दुनाथ ने इस वृत्तान्त को सुनकर एक अपूर्व रोमाञ्च का अनुभव किया। यह भी क्या सम्भव है? अब तक का अमल का व्यङ्ग-स्वर उसकी सहज भक्ति पर कुछ रूढ़ आघात कर रहा था। अब अमल के और कुछ कहने से पहले ही वह बोल उठा, "स्वामीजी, इस दीक्षा के बारे में और कुछ साफ साफ कहिये,—कब और कैसे यह दीक्षा हुई? मुझे जानने के लिये बहुत कौतूहल हो रहा है।"

"यह मैं नहीं कह सकूंगा! मेरी माँ मधुर रस से पूर्ण हैं! उनके साथ नारायण का क्या सम्बन्ध है, क्या सम्भाषण है, यह मैं उनसे कैसे पूछ सकता हूँ? कैसे जान सकता हूँ? हाँ, इतना मुझे मालूम है कि कृष्ण-सान्निध्य ग्रहण करने के लिये उनका हृदय पहले ही से प्रेम-रस-पूर्ण हो रहा था। उनके तृषित अन्तर को प्रेम सरस किये हुए था, परन्तु उन्हें इसका पूर्ण सन्धान नहीं

मिला था। ठीक श्री राधा के पूर्व-राग की अवस्था थी! भजन और कीर्त्तन के द्वारा श्री राधा की मधुर बातों में प्राण ढालते ढालते कब जो मां का नारायण के साथ प्रेम-बन्धन हो गया, मुझे यह मालूम ही नहीं हो सका!"

सुन्दर साज सज्जा कर अनीता आ उपस्थित हुई। तुलसी माला के ऊपर उसने एक पतली चेन पहन ली थी, बाला उतार दो जोड़ा साधारण ब्रेसलेट भी पहना था, तिलक को मिटाया न था, और एक चौड़े लाल पाट की साड़ी पहनी हुई थी। इस रूप में उसकी मूर्त्ति इतनी स्निग्ध, शान्त, सुन्दर और श्रीवान् मालूम हो रही थी कि सब के सब उसे देख कर मुग्ध हो गये। आते ही उसने हंस कर कहा, "चलो, भैया।"

अमल ने भौंहें सिकोड़ अप्रसन्नता के भाव से कहा, "तुम्हारे कपड़े लत्ते अलङ्कार इत्यादि? सब ले चलो—इन्हें यहां रखने से क्या लाभ है?"

अनीता ने कुछ मुस्कुरा कर कहा, "अच्छा, सो पीछे देखा जायगा। पहले वहू को आने दो, उसके साथ बातें तो हों।"

"नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। तब मैं यही समझूंगा कि तुमने मुझे क्षमा नहीं किया!"

अनीता ने गद्गद् होकर कहा, "नहीं भैया, सो बात नहीं है! शायद मुझे यह घर छोड़ने का कोई उपाय ही नहीं है।"

"क्यों?"

"क्यों? भाभी से व्याह के बाद पूछना कि वह तुम्हारा

घर छोड़ कर कहाँ जा सकती है! वह तुम्हें जवाब देगी।"

इन्द्रनाथ की आँखों में आंसू भर आये। उसने अमल का हाथ पकड़ कर मृदु-स्वर से कहा, "अमल, इन्हें दिक न करो!"

लाचार होकर अमल बोला, "जो इच्छा हो करो।"

अनीता ने गोस्वामी जी को साष्टांग प्रणाम किया, गोस्वामी जी संकुचित से होकर दोनों हाथ उठा कर बोले, "श्री विष्णु!"

इनको आते देख ड्राइवर ने मोटर का दरवाजा खोला। अन्दर साड़ी के नीचे से जूता पहने हुआ एक सुन्दर पैर दिखाई पड़ा, इसके बाद साड़ी में कुछ चञ्चलता आई, क्रमशः दरवाजे के पास एक सुन्दर मुंह प्रकाशित हो गया। अमल के होंठों में एक मुस्कुराहट आ गई। उसने अनीता की ओर देख कर कहा, "अनीता—मेरी भावी पत्नि!"

अनीता स्तम्भित हो गई। सोचने लगी—यह भी क्या सम्भव है? अन्त में उसने हंसकर कहा, "मनोरमा, तुम्हीं मेरी भाभी हो!" कहकर वह मोटर पर चढ़ गई। अनीता और मनोरमा दृढ़ आलिङ्गन में बद्ध हो गईं।

चौवालीसवां परिच्छेद

विवाह के समय इन्द्रनाथ उपस्थित नहीं था, इसके दो कारण थे। प्रथमतः, पिता से मनोरमा के विवाह की बात को

गुप्त रख कर वह बहुत कुछ अशान्ति अनुभव कर रहा था। मिथ्या वाक्य या मिथ्या आचार उसके स्वभाव के विरुद्ध था। विशेषतः अपने पिता से एक इतने आवश्यक विषय में प्रतारणा करने से उसे बहुत आत्मग्लानि हो रही थी। यदि इन्द्र के पिता मनोरमा के सम्बन्ध में कुछ अधिक जोर देकर पूछते तो शायद उसे सब कुछ कह देने को ही वाध्य होना पड़ता। यदि उसके पिता जान जायं कि मनोरमा का विवाह हो रहा है तो उन्हें दु:ख होगा, पर यदि उन्हें यह मालूम हो कि इन्द्रनाथ भी उस विवाह में गया है तो उनका दुःख और भी बढ़ जायगा, यही सोच वह नहीं आया।

परन्तु इसके अतिरिक्त और भी एक कारण था जिससे वह विवाह में नहीं जा सका। मनोरमा के मृत स्वामी का रोगग्रस्त मुंह, उसकी वह वेदना भरी दृष्टि, उसके मानस पट में जाग उठी थी और इससे उसके हृदय में भयानक वेदना हो रही थी। वह टुकू को अपने पास रख कर सारा दिन बैठा हुआ उस शिशु के मुख में उसके पिता की छाया देख देख पीड़ित हो रहा था। उस माता द्वारा परित्यक्त बालक की कातर दृष्टि उसके प्राण में हाहाकार मचा रही थी। वह किसी तरह अपने मन में आनन्द अनुभव नहीं कर सकता था।

विवाह में बहुत भीड़ भाड़ नहीं हुई थी। केवल अमल के कुछेक मित्र आये थे। फिर भी आनन्द-उत्सव में कोई त्रुटि न हुई थी। परन्तु इस आनन्द धारा में दो छाया पड़ी हुई थीं।

मनोरमा के अन्तर में भी और एक दिन स्मरण हो रहा था—दो वर्ष के स्वामी सहवास का चित्र वहां सजग हो गया था। जब तक अमल उसके सामने रहता उसका हृदय उज्ज्वल प्रकाश से पूर्ण हुआ रहता था, परन्तु अमल के आंखों की ओट चले जाने पर उसका प्राण उस पूर्वस्मृति की वेदना से पीड़ित होने लगता था।

अमल बार बार उसके पास आता है, प्रति बार वह अपने बलिष्ठ हृदय की तीव्र प्रेम धारा से उसे अभिषिक्त करने की चेष्टा करता है। दोपहर को विवाह से कुछ पहले जब वह आया, उस समय मनोरमा विवाह की सज्जा में सज्जित हो रही थी। अमल के तीन मित्रों की स्त्रियां उसका शृंगार और उपकरण कर रही थीं। जब इन्हें खबर मिली कि अमल आया है तो एक ने उससे जाकर कहा, "बिना आध घण्टा ठहरे देवी का दर्शन नहीं मिल सकता!"

अमल आनन्द चित्त से प्रतीक्षा करने लगा।

जब इस नारीसंघ ने मनोरमा की साज सज्जा शृंगार इत्यादि सब कुछ अपने मनोनुकूल समाप्त कर लिया तो वे सब मनोरमा को अमल के पास पहुँचा कर भाग गईं। मनो-रमा जलमय विद्युत् पूर्ण मेघ के समान स्थिर होकर खड़ी रही।

मनोरमा की सज्जित मूर्त्ति को देख कर अमल विस्मित सा हो गया। वह कुछ देर तक मनोरमा की सौन्दर्य सुधा का पान करता रहा। मानो उसने मनोरमा को यही पहले पहल

देखा हो! इसके बाद वह मनोरमा पर कूद पड़ा—और यत्न के साथ उसने अपने दोनों बहुओं से उसे अपने हृदय में खींच लिया। मनोरमा की रुद्ध अश्रु धारा ने अब प्रचण्ड वेग से उसके दोनों गालों को प्लावित करना आरंभ कर दिया।

अमल ने व्यथित विस्मय के साथ उसे अपने हृदय से लगाए ही हुए कहा, "मनो, यह क्या! रो क्यों रही हो?"

मनोरमा ने अमल के वक्ष पर सिर रख कर कहा, "सुनने से तुम रंज तो नहीं होगे? सुन कर भी तुम मुझसे प्रेम करोगे?"

अमल कुछ शङ्कित होकर बोला, "मनो, बोलो, कौनसी बात है?"

मनोरमा ठहर ठहर कर बोलने लगी, "आज मुझे बार बार अपने पूर्व स्वामी की बात याद आ रही है। एक दिन उन्होंने भी मुझे इसी तरह आदर किया था!!"

व्यथा-पूर्ण दृष्टि से मनोरमा ने अमल के मुंह की ओर देखा। केवल एक क्षण के लिए एक क्षुद्र मेघ अमल के आनन्द-मय मुंह के ऊपर से चला गया। अपने चित्त में उसने एक तीव्र वेदना को अनुभव किया। उसके बाद और भी दृढ़ता के साथ मनोरमा को अपनी छाती में दबा कर वह बोला, "नहीं मनो, क्रोध क्यों करूं? बल्कि यदि तुम आज उस मर्म-व्यथा को एक बार भी अनुभव न करतीं, तो मैं तुम्हें हृदय हीन समझता। इससे तो तुम्हारे हृदय की उच्चता ही प्रकाश होती है।"

मनोरमा का हृदय अमल के प्रति नूतन प्रेम और कृतज्ञता से भर गया, परन्तु उसकी आंखों से और भी प्रबल वेग से अश्रु धारा बहने लगी।

बहुत देर के बाद उसने फिर कहा, "बहुत दिन से सोच रही थी कि उनकी स्मृति मेरे प्राणों से लुप्त हो गई है, परन्तु आज समझ रही हूँ कि अब तक मैंने नहीं समझा था। आज तुमसे प्रेम कर मैं समझ रही हूँ कि मैंने किसे खोया है। इस स्मृति के लिये मुझे क्षमा करो, प्रियतम!"

अमल ने स्निग्ध कण्ठ से कहा, "मनो, मैं क्षमा नहीं करता हूँ, तुम्हारी श्रद्धा करता हूँ! तुम क्या अभी अकेली रहना चाहती हो? तो मैं यहां से चला जाऊं!"

मनोरमा ने अमल के साथ लिपट कर कहा, "नहीं, मत जाओ, अपने वक्ष पर सिर रख कर मुझे रोने दो, इसी से मुझे सुख मिलेगा, इसी से मुझे शान्ति मिलेगी। नहीं तो जब मैं रोती हूं तो मुझे मालूम होता है कि मैंने कोई अपराध किया है।"

अमल मनोरमा को हृदय से लगाए बैठा रहा। कुछ देर के बाद मुंह पोंछ कर शान्त कण्ठ से मनोरमा बोली, "भैया नहीं आये?"

गम्भीर होकर अमल ने कहा, "नहीं, उसने लिखा है कि उसका आज यहां आना पिता से और भी कपट करना होगा, और वह ऐसा नहीं कर सकता है।"

चारुबाला दरवाजे के पास हल्ला करती करती कमरे में

चली आईं। आकर ही उन्होंने देखा कि दो प्रशान्त गम्भीर मूर्त्तियां दो अलग अलग कुरसियों पर बैठी हुई हैं। परन्तु ठीक यही दृश्य देखने के लिये वे अपने होठों में छिपी हंसी और आंखों में दुष्ट चञ्चलता लेकर नहीं आई थीं। वे इस दृश्य को देख कर अवाक् रह गईं।

चारुबाला ने हंस कर कहा, "वाह! यह तो खूब प्रिय-सम्भाषण है!" हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, "अजी महाशय और महाशया! मुझे आप लोगों को याद दिलाना पड़ना है कि आज आपलोगों की शादी है, कुछ फांसी नहीं।"

अमल ने शान्त मुस्कुराहट के साथ कहा, "दोनों में क्या बहुत प्रभेद है?"

"तुम लोगों का मुंह देख कर तो यही कहने की इच्छा होती है कि कोई प्रभेद नहीं है!"

चारुबाला के स्वामी मिस्टर राय ने आकर्ण-विश्रान्त हास्य के साथ कमरे में प्रवेश किया। वे बोले, "किसमें प्रभेद चारू?"

चारु ने मुंह फिरा कर कहा, "यही, विवाह में और फांसी में!"

मिस्टर राय बहुत गम्भीरता के साथ बोले, "कुछ नहीं! दोनों में कोई भेद नहीं! विवाह में हम लोग जो अनुष्ठान करते हैं उनमें एक यह भी रहना चाहिये कि एक रस्सी की फांसी बना कर उसे दुलहे के गले में लगा देना चाहिये और उसका

दूसरा छोर दुलहिन को पकड़े रहना चाहिये—तभी पूरा विवाह हो।"

चारु ने कहा, "ठीक है, पर थोड़ा सा अंतर रहना चाहिये। फांसी रहे दुलहिन के गले में और उसका दूसरा सिरा दुलहे हाथ में हो।"

अमल ने मुस्कुरा कर कहा, "दोनों ही ठीक है। मगर मेरी समझ में दोनों ही बातों में कुछ कमी है। रस्सी दुलहे के गले में न लगा कर उसके नाक में लगानी चाहिये।"

मिस्टर राय ने कहा—"ब्रैवो! बहुत ठीक! मगर वास्तव में यह बड़ी अनुचित बात है। शुभ-दृष्टि से पहले मिलना तो कभी ठीक नहीं! चलो अमल, तुम निकलो इस घर से! बाहर जाकर बैठो—ऐसा चुपचाप और शान्त होकर कि किसी को मालूम भी न हो कि आज तक कभी तुमने दुलहिन का मुंह भी देखा हो!!"

अमल मनोरमा से विदा होकर बाहर चला गया। इतनी देर रोकर मनोरमा का हृदय बहुत कुछ हलका हो गया था। इस परिहास से वह और भी परिष्कार हो गया। चारुबाला उसकी अंतिम साज सज्जा करने के लिये उसे लेकर अपने रूम में चली गई।

पर विवाह की वेदी पर बैठ कर अचानक मनोरमा का रक्त सूख गया। वह एक पत्थर की मूर्त्ति के समान स्तब्ध निश्चल हो गई। उसने देखा कि विवाह के आचार्य के स्थान में सत्य-

किङ्कर वावू वैठे हुए हैं। सत्यकिंकर भी चौंक उठे, परन्तु उन्होंने ऐसी चेष्टा की कि उनके शान्त मुंह पर कोई भी भावान्तर नहीं आया।

इस घटना का भी एक इतिहास है। अमल ने स्थिर किया था कि उसके विवाह में कोई भी धर्मानुष्ठान न होकर केवल रजिस्ट्री किया जायगा। परन्तु यह प्रस्ताव सुन मनोरमा के मुंह पर अन्धकार छा गया। जीवन के एक इतने वड़े अनुष्ठान में भगवान का आशीर्वाद न लेकर अग्रसर होने में उसे वहुत सङ्कोच बोध हुआ। जव अमल ने यह देखा तो वह धर्मानुष्ठान के लिये राजी होकर एक दम अन्तिम मुहूर्त्त में आचार्य ढूंढ़ने के लिये निकला। मनोरमा ने प्रस्ताव किया कि सुकुमार वावू को आचार्य का पद ग्रहण करने के लिये कहा जाय। इसमें कई लोगों को घोर आपत्ति थी तो भी अमल सव की आपत्तियों को अग्राह्य कर सुकुमार वावू के घर गया।

वहुत विनती के साथ अमल ने सुकुमार वावू से स्वकृत अन्याय अपमान के लिये क्षमा मांगी, तव उन्हें इस विवाह में पुरोहित का पद ग्रहण करने के लिये कहा। परन्तु सुकुमार वावू किसी तरह राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा, "मैं तुम लोगों को सर्वान्तःकरण से आशीर्वाद देता हूं, तुम लोग सुखी वनो, परन्तु मनोरमा के विवाह में आचार्य का पद ग्रहण करने से मुझे क्षमा करो।"

विधवाश्रम के कार्यकर्त्ताओं से मनोरमा के सम्वन्ध में

समस्त विवरण सुकुमार बाबू ने सुन लिया था। इस अभि-योग के विरुद्ध में कोई सन्तोष जनक उत्तर न पाये बिना वे इस अपवित्र विवाह में योग नहीं दे सकते हैं—सुकुमार बाबू ने ऐसा ही सोचा था। परन्तु अमल से उन्होंने इस विषय में कोई बात नहीं कही।

जब किसी तरह भी सुकुमार बाबू राजी न हुए तो अमल अपने एक मित्र को उपाचार्य नरेन्द्र बाबू या योगेश बाबू को ठीक करने के लिये भेज कर घर लौट गया। वह मित्र नाना स्थानों में घूमा परन्तु उसे कोई भी न मिला। अन्त में बहुत मुश्किल से सत्यकिङ्कर बाबू से उसकी भेंट हुई और बहुत कुछ कह सुन कर वह उन्हें राजी करा सका। सत्यकिङ्कर बाबू को उस दिन दूसरे स्थान में एक आवश्यक काम था पर अमल के उस मित्र के बहुत आग्रह और हाथ जोड़ी करने पर लाचार वे राजी हो गये और विवाह स्थान पर आ पहुँचे। सत्यकिङ्कर को इतना मालूम था कि अमल का विवाह है, पर किसके साथ विवाह है सो मालूम न था। इस समय जब उन्होंने मनो-रमा को वधू के रूप में वहां देखा तो वे चौंक उठे पर अपने को बहुत सम्हाल उन्होंने विवाह कार्य प्रारम्भ कराया।

विवाह कृत्य समाप्त हुआ। प्रार्थना का अन्तिम स्वर जब सभा की शान्त गंभीरता में अदृश्य हो गया तो उसके बाद सत्यकिंकर ने उपदेश दिया। उपदेश देने के समय सत्यकिंकर ने अश्रुरुद्ध कण्ठ से केवल इतना कहा—

"श्रीमान् अमलकुमार, श्रीमती मनोरमा, तुम लोग विद्वान् और बुद्धिमान हो, संसार मे तुम लोगों ने बहुत अभिज्ञता लाभ की है, अस्तु तुम्हें कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। तुम लोग आज परस्पर का हाथ पकड़ कर जिस पथ में अग्रसर हुए हो—उस यात्रा के लिये तुम लोगों के पास यथेष्ट सञ्चय है। मैं तुम लोगों को क्या उपदेश दूं? मैं केवल आशीर्वाद करता हूं कि भगवान् की अपार दया तुम लोगों पर वर्षित हो। तुम दोनों ने अपने अपने जीवन में भगवान की असीम दया का परिचय पाया है! उस करुणामय परमेश्वर ने तुम लोगों को कितनी विपत्ति, कितने प्रलोभन, कितने कलंक, कितनी परीक्षाओं से बचाकर तुम्हारी रक्षा की है। यदि उनकी यह दया तुम्हारे जीवन में निरन्तर जागृत रहे, तब तुम लोगों को और कोई भी चिन्ता नहीं।"

उपदेश समाप्त हो गया। वर वधू ने उठकर आचार्य को प्रणाम और मित्र पात्रों के साथ कर-मर्दन और नमस्कार इत्यादि किया। अमल ने सत्यकिंकर का हाथ पकड़ कर कहा, "मैं आपको किस तरह धन्यवाद दूं नहीं कह सकता!"

सत्यकिंकर ने कुछ न कहा, पर एक वृद्ध सज्जन ने अग्रसर होकर सत्यकिंकर से कहा, "आपने बहुत सुन्दर उपासना की। सुन्दर सरस और क्षुद्र उपदेश दिया। आशा करता हूं कि मैं आपके मुंह से फिर कभी इसी प्रकार का उपदेश सुन सकूंगा।"

सत्यकिंकर की आंखें सजल हो गईं। उसने नीरवता के साथ नमस्कार किया और दर्वाजे की ओर अग्रसर हुआ। फिर किसी ने उसे नहीं देखा। आज वह अपने समस्त हृदय से उपासना कर सका है---और अपने अन्तर के समस्त आशीर्वाद का यौतुक देकर उसने अपने एक मात्र प्रेमास्पद को अमल के हाथों में सौंप दिया है।

सत्यकिंकर बाबू बिना कुछ खाए पीए चले गये यह देख कर सब लोग तरह तरह की बातें कहने लगे, पर किसी को इसका कारण समझ में नह आया। मनोरमा कुछ समझी लेकिन भूल समझी।

× × ×

उसी रात को मनोरमा की माता अपने एक आत्मीय के साथ आकर वर-वधू को आशीर्वाद दे गईं।

पैंतालोसवां परिच्छेद

विवाह की रात के बाद सवेरा होने पर मनोरमा ने अमल से कहा, "टुकू को कब लाओगे?"

उसकी दृष्टि में एक ऐसी वेदना थी कि उसे देख अमल

का प्राण सहानुभूति से भर गया। मनोरमा को अपने हृदय से लगा कर उसने कहा, "आज ही ले आऊंगा, मनो।"

घर लौटने में प्रायः दस बज गये। अमल ने सोचा था कि मनोरमा को अपने घर में पहुँचा कर वह टुकू को लाने के लिये जायगा, परन्तु घर पहुँच कर देखा कि इन्द्रनाथ टुकू को लिये उपस्थित है।

मनोरमा ने मोटर से उतरते ही टुकू को गोद में उठा लिया। टुकू उसकी छाती से चिमट कर रोने लगा। इन्द्रनाथ बोला, "कल रात को नींद टूटने के बाद 'मां, मां' कह कर बहुत देर तक रोता रहा। उसी समय से यह केवल रो रहा है। आज बड़ी मुशकिल से इसे कुछ खिला कर ला रहा हूं।"

मनोरमा ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। उसकी आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा, "टुकू, अब क्यों रोता है! अब मैं तुझे छोड़ कर एक क्षण भी कहीं नहीं जाऊंगी!!" कह कर उसने अमल की ओर देखा।

अमल व्यथित चित्त से इस करुण दृश्य को देख रहा था। मनोरमा की कातर दृष्टि देख उसने कहा, "इसके लिये भी क्या मेरी आज्ञा लेना होगी, मनो?"

अमल से छुट्टी लेकर मनोरमा अपने कमरे में एकान्त में बच्चे को शान्त करने के लिये चली गई। अमल के सम्मुख अपने बच्चे का अपने समस्त प्राण से आदर करने में उसे न जाने क्यों लज्जा सी हो रही थी, कुछ सङ्कोच सा बोध हो रहा था।

अपने कमरे में जाकर उसने बच्चे को आदर और स्नेह से भर दिया। बच्चा शान्त हो गया, परन्तु साथ ही आश्चर्य से माता के वधू वेश को देखने लगा। वह रूप उसे कुछ अपरिचित सा मालूम हुआ। विस्मय से स्तब्ध होकर वह देखता रहा। परन्तु मनोरमा ने उस दृष्टि में अभिमान और तिरस्कार देखा। उसके मृत स्वामी की आंखें माना इस शिशु की आंखों के द्वारा उसे धिक्कारने लगीं। वह शय्या में अपना मुंह छिपा फूट फूट रोने लगी।

इसी समय अमल ने उस घर में प्रवेश किया। मनोरमा को यह अवस्था देख कर वह स्तब्ध होकर खड़ा रहा, फिर धीरे धीरे मनोरमा को अपने हृदय से लगा कर उसकी अश्रुप्लावित आंखों को पोंछा, तब स्निग्ध कण्ठ से कहा, "मनोरमा, मेरे साथ विवाह कर क्या तुम दुःखी बन गई हो?"

अश्रु से मनोरमा का कण्ठ रुद्ध हो गया था। वह कुछ उत्तर न दे सकी।

अमल ने फिर कहा, "यदि ऐसा ही हुआ हो, यदि तुम्हें मालूम होता हो कि तुमने भूल की है, तो इस कारण तुम अपने दुःख को बढ़ाओ मत, मनो। जिससे तुम सुखी बन सको मेरी सदा एकमात्र वही इच्छा रहेगी, और उसके लिये मैं सब कुछ छोड़ सकता हूं। यदि मेरा संसर्ग तुम्हें दुःख देता हो, तो कोई बात नहीं, विवाह हो गया है हो जाने दो, पर तुम पहले जैसी थीं, अब भी उसी तरह स्वतन्त्र रह सकोगी। मैं तुम्हारी रक्षा

करूंगा और यदि चाहो तो तुम्हारी सेवा भी करूंगा, पर तुम्हारे पास आकर या तुमसे प्रेम निवेदन कर तुम्हे कष्ट कदापि न पहुँचाऊंगा। कहो, तुम्हारी जैसी इच्छा हो—मैं वही करूं मनोरमा, पर किसी तरह भी मैं तुम्हारा दुःख नही देख सकता।"

मनोरमा ने अपने स्वामी के वक्ष में सिर छिपा कर कहा, "तुम मुझसे ऐसी बातें क्यों कह रहे हो! तुम्हें पाकर मैं असुखी बनूंगी? हाय! कोई आकाश के चन्द्रमा को पाकर भी असुखी रह सकता है?"

"तब फिर रो क्यों रही हो?"

"मैंने तो तुम्हें पाकर स्वर्ग लाभ किया है। परन्तु-परन्तु-मेरा बच्चा, मेरा बच्चा जो दूसरे का हो जा रहा है! यदि यह दुःखित हो तो मैं कैसे जीवित रह सकूंगी?"

"ओह! बस यही बात है?" कह कर अमल ने टुकू से कहा, "चलो तो टुकू, मैं तुम्हें हरिन की पीठ पर चढ़ाऊं।" कह कर वह टुकू को लेकर चला गया।

कुछ देर के बाद अनीता ने उस कमरे में प्रवेश किया। मानो मूर्त्तिमती शान्ति और प्रीति आकर मनोरमा के मन की सब ग्लानि को धोकर बहाने लगी।

अमल ने अनीता को उसके कमरे में स्थान दिया था और एक दूसरा कमरा झाड़ पोंछ कर मनोरमा के लिये ठीक किया गया था। वास्तव में अनीता का कमरा ही घर भर में सबसे सुन्दर था।

अनीता ने मनोरमा के साथ थोड़ी देर तक बातें कीं, इसके बाद उसे अपने कमरे में ले गई। देशी और विलायती नाना प्रकार की सामग्रियों से, विलास और आराम के नाना प्रकार के अपूर्व आयोजनों से, वह कमरा भरा हुआ था। अनीता ने मनोरमा को एक एक कर सब वस्तुओं को दिखलाया और समझाया कि किसका क्या व्यवहार है। पर मनोरमा बोली, "अभी यह काम रहे फिर होगा, अभी तुम्हारे साथ मैं कुछ बातें करूंगी!"

पर अनीता ने म्लान मुस्कुराहट के साथ कहा, "अब फिर समय आवेगा या नहीं, कौन कह सकता है! अभी ही सब कुछ समझ लो!"

मनोरमा ने विस्मय के साथ कहा, "क्या कह रही हो, बहन?"

अनीता ने कहा, "मैं इस कमरे को सब सामान और सामग्रियों के साथ तुम्हें दे रही हूँ, भाभी।"

मनोरमा के गाल लाल हो गये। वह बोली, "देना चाहती हो तो देना, पीछे ले लूंगी।" पर उसने अपने मन में सोचा कि अमल से बिना पूछे वह इतना बड़ा दान कैसे ग्रहण कर सकती है।

"फिर कब समझ लोगी? मेरे जाने का जो समय हो गया है!"

शङ्कित चित्त से मनोरमा ने कहा, "तुम कहां जाओगी,

बहिन ? यह क्या कह रही हो ?"

अनीता ने धीरे धीरे कहा, "जाऊंगी,—कहां—जाऊंगी? अपनी ससुराल !"

मनोरमा ने हंस कर कहा, "सच, कब ? कहां ? कब विवाह होगा ?"

"विवाह तो हो गया ।"

"हो गया ? तुम्हारे भाई नहीं जानते ? कोई नहीं जानता ? और तुम्हारा विवाह हो गया !"

"हां, बहन, मेरे स्वामी गोपन प्रेम के नागर हैं ।"

"वह कौन हैं ? कहां रहते हैं ?"

अनीता बोली, "वह मेरे अन्तर में हैं, बाहर हैं, भाभी—इस विश्व संसार भर में हैं । उसकी वंशी युग-युगान्तर से लोगों के मन को आकृष्ट करती आई है । जिन्होंने संसारी को सन्यासी बना डाला है, सती को कलंकिनी बना दिया है—वही मेरे स्वामी हैं ! उन्होंने मुझे पागल बना दिया है !"

अब मनोरमा को बात कुछ समझ में आई । वह देर तक गम्भीर निश्चल होकर बैठी रही । अनीता जो अपना यथा-सर्वस्व त्याग कर, घर द्वार त्याग कर, सन्यासिनी हो जायगी इस बात को सुन कर उसका अन्तर व्यथित हो गया । बहुत देर के बाद उसने व्यथित चित्त से कहा, "यदि तुम मुझे इस तरह त्याग कर चली जाओगी, बहन, तो मेरा सब सौभाग्य शून्य हो जायगा । तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती हो !!" मनो-

रमा अनीता का हाथ पकड़ कर रोने लगी। अनीता निर्वाक होकर खड़ी रही।

मनोरमा बोली, "यदि तुम मुझे इस घर में रख इस घर को छोड़ कर चली जाओगी तो यह घर मेरे लिये एक बोझ हो जायगा। मेरे अपराध की सीमा न रहेगी। तुम्हें सब सुख से वञ्चित कर मैं कदापि सुखी न हो सकूंगी, बहिन!"

अनीता की आंखें अश्रुमय हो गईं। उसने एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर कहा, "बहन, अब मुझे फिर माया के जाल में न बांधो!"

कह कर वह मृदुस्वर से गाने लगी—

"आज बजी है मोहन मुरली—
यमुना तट पर जाना ही होगा!"

मनोरमा बिलख कर बोली—"क्यों जाना होगा? घर में बैठ कर क्या साधना नहीं हो सकती है? बहन अनीता, भगवान का निवास-स्थान केवल मन्दिर ही तो नहीं है। उनका वास्तविक लीला-क्षेत्र तो हम लोगों का अन्तर है। मन को अपने अन्तर की ओर लगा कर भगवान की निकटता को जितना सहज में, जितनी दृढ़ता के साथ, अनुभव किया जा सकता है, उतना ही और किसी दूसरे प्रकार से नहीं हो सकता। तप, जप, आराधना, शिव-पूजा, मैंने सब कुछ किया है बहन, किन्तु अंत में केवल ध्यान के द्वारा अपने मन को

अपने ही अन्तर में डुबाकर ही उनको पाया है। क्या तुम यहां रह कर उन्हें नहीं पा सकोगी?"

अनीता ने हंसकर कहा, "बहन, यह भी एक तरह से हो सकता है सो सच है, परन्तु जिसने फकीर बन कर अपने को बलिदान कर दिया है वही केवल उस गोपीवल्लभ के दृढ़-प्रेम बन्धन को ठीक ठीक समझ सका है। वही समझ सका है जिसे जगत में और किसी वस्तु की आवश्यकता नही रह गई है जिसने अनुभव किया है—वही केवल जानता है कि प्रेम का सागर, प्रेम में डूबे बिना नही मिलता है। जिसे उस प्रेम का स्वाद मिला है उसे और कुछ अच्छा नहीं लगता है।"

मनोरमा ने अधिक तर्क नहीं किया, पर ब्राह्म की कन्या होकर भी, देशी और बिलायती श्रेष्ठ से श्रेष्ठ शिक्षा पाकर भी, अनीता से क्यों ऐसी भूल हो रही है; कि कभी जिसे वह अत्यन्त अशुद्ध और अशुचि समझती थी उसी वैष्णव धर्म में अपने को वह इस तरह डूबा रही है, इस बात को सोच कर उसको बहुत दुःख भी हुआ। उसने एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर कहा, "जो कुछ भी हो, मैं अभी तुमको जाने नहीं दूंगी। मुझे इस तरह छोड़ कर तुम किसी तरह भी नहीं जा सकती हो। यदि जाओगी तो यह घर छोड़ कर मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

मनोरमा को अपनी छाती से लगाकर अनीता बोली, "बहन, मुझे इस तरह बन्धन में न डालो! मुझे बांध कर तो

नहीं ही रख सकोगी, केवल उस बन्धन के टूटने की व्यथा और बढ़ जायगी।"

इसी समय अमल टुकू को अपने कंधे पर रक्खे हंसते हंसते वहां आ पहुंचा। उसको उतारते हुए अमल ने कहा, "लो, मनो, तुम्हें एक नई सौगात दूं। टुकू का हास्य पूर्ण मुख!"

प्रसन्न होकर मनोरमा ने टुकू को चूम कर अपने मन में कहा, "इससे अधिक मूल्यवान वस्तु तुम मुझे कुछ भी नहीं दे सकते हो!!" उसने अमल को एक ऐसी स्निग्ध दृष्टि का उपहार दिया कि अमल एक दम धन्य हो गया।

टुकू माता के पास जाकर सब बातों का वर्णन करने लगा—हरिन के पीठ पर चढ़ने की बात, मोटर के भों भों करने की बात, बागीचे के बड़े बड़े फूलों की बात, और भी ऐसी कितनी ही बातें, वह बोल गया। अन्त में कहा, "बाबू जी ने मुझसे कितनी अच्छी अच्छी कहानियां कहीं! अच्छा मां, ईश्वर बहुत अच्छे हैं, न? बाबूजी ने कहा कि तुम ईश्वर के पास रोई थी इसी लिये उन्होंने तुम्हें रानी बना दिया और मुझे राजपुत्र।"

"बाबूजी!!" इतने ही में अमल ने टुकू को अपना बना लिया!!! सुन कर मनोरमा के सिर से एक भारी बोझ उतर गया। उसने बच्चे को बार बार चूम कर कहा, "हां टुकू, ठीक है।" प्रेम-पूर्ण कृतज्ञ दृष्टि से उसने अमल की ओर देखा।

छियालीसवां परिच्छेद

इन्द्रनाथ के पिता ने मनोरमा के सम्बन्ध में कोई भी खोज न की। वे सदा से अल्पभाषी थे, अब वे प्रायः सम्पूर्ण ही नीरव हो गये। मनोरमा के विवाह के दो दिन बाद वे बोले, "अब यहां हम लोगों का कोई काम नहीं है, चलो लौट चलें।"

उनके क्लिष्ट मलिन मुख को देख इन्द्र की माता का अन्तर रो उठा। स्वयम् उनके मन में अब कोई क्लेद न था। अमल के पास मनोरमा को देख कर वे तृप्त हो गईं थीं। उनकी इच्छा बहुत हो रही थी कि मनोरमा के इस सौभाग्य की बात को पतिदेव से कह कर उनके दुःख में कुछ शान्ति दें, परन्तु उन्हें साहस न हुआ। न मालूम कहीं भलाई के बदले बुराई न हो जाय! दूसरे दिन वे लोग वहां से रवाना हो गये।

उस रात को सरयू को नींद न आई। कल सवेरे वह मनोरमा के पास जाकर सब कुछ मालूम कर आयगी इसी प्रतीक्षा में उसने रात काट दी। मनोरमा के ऐसे सौभाग्य का उदय हुआ, दुःखी मनोरमा, उसकी अभागिन बाल्य सखी, यौवन!

की साथिन, उसके स्वामी की भगिनी, को इतना सुख मिला ! सोच कर ही उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठता था।

उसने इन्द्रनाथ से कहा, "अच्छा, अमल उनसे प्रेम करता है न ?"

इन्द्रनाथ हंस कर बोला, "यह क्या कोई कहने की बात है, उसका तो सारा जीवन ही मनो को पाकर मानों धन्य हो गया है !"

सरयू बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोली, "मैं भी पहले यही सोचा करती थी कि मुझे पाकर तुम्हारा जीवन भी धन्य हो गया है !"

इस बात से इन्द्रनाथ के दिल में चोट लगी। सरयू जानती है, उसे विश्वास है, कि इन्द्रनाथ उससे पहले के समान प्रेम नहीं करता है। परन्तु अब तक उसने इस बात को इतने स्पष्ट रूप से कभी प्रकाश नहीं किया था। इन्द्रनाथ को अनीता की याद आई, उसके उस व्यथा पूर्ण अनुरोध की बात याद आई। इन्द्रनाथ ने उसके उस अनुरोध की रक्षा करने की चेष्टा की थी परन्तु वह सरयू से प्रेम कर सका है कि नहीं यह आज ठीक समझ नहीं सका। एक गम्भीर दीर्घ निश्वास त्याग कर इन्द्रनाथ ने कहा, "और अब ! अब तुम क्या समझती हो ?"

"अब मैं समझ गई कि मैं अभागी हूं ! मुझमें ऐसा कोई गुण नहीं है कि तुम जैसे मनुष्य को धन्य बना सकूं ?"

इन्द्रनाथ बहुत देर तक चुप रहा। इसके बाद सरयू को

अपने वक्ष से लगाकर बोला, "सरयू, तुम भगवान से यही प्रार्थना करो कि मैं ऐसा अधर्म न करूं। यदि मैं तुम्हें पाकर भी धन्य न बन सका तो परमेश्वर के पास मुंह कैसे दिखला सकूंगा।"

स्वामी के दृढ़ आलिङ्गन का असीम आनन्द अनुभव कर सरयू का देह प्राण मन सभी कृतार्थता से पूर्ण हो गया। वह प्रेम भाव से स्वामी के वक्ष से लगी बैठी रही।

बहुत देर के बाद उसने पूछा, "इस विवाह में अनीता आई थी?"

ठीक ऐसी बात के बाद यह प्रश्न? इन्द्रनाथ कुछ क्षुब्ध हो गया। साथ ही उसे यह भी याद आया कि उसने सरयू को अमल के बारे में सभी खबर दी है परन्तु अब तक अनीता के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। जब कभी कोई ऐसी बात आई है जिसमें अनीता का नाम पड़ता हो तो वह संकुचित होकर रुक गया है। सरयू के सम्मुख अनीता का नाम लेने में इतना संकोच आना अच्छा नहीं है यह समझ कर भी वह अपने संकोच को त्याग नहीं कर सका है।

कुछ संकुचित होकर इन्द्रनाथ बोला, "आई थी-पर रहेगी नहीं, चली जायगी।"

"क्यों?"

"उसका स्वभाव ही बदल गया है। वह वैष्णव हो गई है।" कहकर इन्द्रनाथ ने अनीता की वर्तमान अवस्था की

घर में उत्सव की धूमधाम मची हुई थी। अमल के मित्र यार आत्मीय स्वजनों का अन्त न था। उनका निमन्त्रण कर वह मनोरमा से सभों का परिचय करा रहा या और भोजन खाना पीना इत्यादि चल रहा था।

सरयू आते ही मनोरमा को लेकर एक कमरे में चली गई थी। उसको उससे बहुत कुछ पूछना था, परन्तु समय कहां था? मनोरमा को लेकर दो मिनट भी एकान्त में बैठने का उपाय न था। हर मिनट में नये नये लोग आते थे और मनोरमा को जाना पड़ता था। सरयू की आशा पूरी न हुई।

परन्तु अनीता को अवसर का कोई विशेष अभाव न था। वह सरयू के साथ उसी प्रेम से मिली जैसे पहिले मिला करती थी। सरयू अनीता में कोई विशेष परिवर्तन भी लक्ष्य नहीं कर पाई। वह ठीक पहले के ही समान शान्त, स्निग्ध, हास्यमय, मिष्टभाषी थी। इस उत्सव में भी वह अपने प्राणों से लगी हुई थी। बातचीत, हंसी दिल्लगी, गाना बजाना कर वह अतिथियों को पहले ही के समान खुश कर रही है। केवल उसके मुख का स्वरूप बदल गया—साज सज्जा, शृङ्गार इत्यादि मे कमी हो गई है। परन्तु उसका रूप पहले से भी मोहनीय हो गया है। मानो अनीता पहले एक पत्थर की मूर्त्ति हो, और अब एक जीवन्त नारी बन गई हो। उसकी आंखों से उज्वल दीप्ति निकला करती है। जिस नारी ने प्रेम कर अपने जीवन को सार्थक बना डाला है। उसके नयनों की प्राणपूर्ण दृष्टि ने आज

अनीता के शरीर को सजीव, सुन्दर, सुषमा-मण्डित बना दिया है।

सरयू अनीता के साथ बहुत देर तक रही। यद्यपि वह अपने हृदय में एक गम्भीर यन्त्रणा अनुभव कर रही थी तो भी अनीता के साहचर्य में उसे आनन्द ही मिल रहा था। अनीता से कई बातें जानने के लिये उसकी बहुत इच्छा थी, परन्तु वे बातें उससे खोल कर पूछी कैसे जा सकती थीं। इन्द्रनाथ को घर से निकाल देने का क्या कारण हुआ था, और अनीता ही क्यों घर छोड़ कर चली गई थी, इन प्रश्नों को खुल्लम खुल्ला पूछना असम्भव होने पर भी सरयू अपनी बातों को घुमा फिरा कर किसी तरह इन प्रश्नों पर आने की चेष्टा कर रही थी, इसी लिये बहुत मनोयोग पूर्वक अनीता की बातचीत, उसके मुख का भावान्तर, उसकी दृष्टि का परिवर्तन, इत्यादि लक्ष्य कर रही थी। और उसका यह परिश्रम व्यर्थ गया भी नहीं। अच्छी तरह लक्ष्य कर उसने बहुत शीघ्र जान लिया कि अनीता इन्द्रनाथ से प्रेम करती है। इन्द्रनाथ भी अनीता से प्रेम करता है यह तो उसे बहुत पहिले ही से मालूम था। किन्तु, क्या केवल इतना ही था? इन दोनों के प्रेम का आवेग कहाँ तक पहुँचा है यह जानने के लिये अब सरयू व्याकुल हो गई। परन्तु बहुत चेष्टा कर भी वह कुछ जान न सकी। उसने केवल यही देखा कि इन्द्रनाथ और अनीता दोनों एक दूसरे से आँखें बचा कर चलते हैं। यदि कभी अचानक सामना हो भी जाता है तो बहुत संक्षेप

दो एक बात कर एक दूसरे से अलग चले जाते हैं। परन्तु सरयू ने अपनी आंखों से देखा कि दूर से अपने को आड़ में रख कर अनीता वेदना पूर्ण तृषित नेत्रों से इन्द्रनाथ की ओर देखा करती है। इन्द्रनाथ को कभी ऐसा करते उसने नहीं देखा। परन्तु उसकी भी अवस्था जो ठीक स्वाभाविक नहीं है, वह अन्यमनस्क हो गया है, सर्वदा कैसा व्याकुल सा रहता है, मानो हृदय की किसी व्यथा को गुप्त रखना चाहता है परन्तु वह उसकी आंखों से, मुख से, उसकी बातों से, उसके रंग-ढंग से, प्रकाशित होती रहती है—सरयू यह लक्ष्य कर रही थी।

तीन दिन तक सरयू इन्द्रनाथ और अनीता को लक्ष्य करती रही और अंत में वह एक सिद्धान्त पर आ पहुँची।

अन्तिम दिन सरयू मनोरमा को साथ लेकर एक एकान्त कमरे में चली गई। आज कोई निमन्त्रण या आमन्त्रण का झंझट न था और आज अमल को भी वाध्य होकर हाईकोर्ट जाना पड़ा था, अतएव दोपहर को सरयू ने मनोरमा को अकेली पाया।

सरयू ने उससे दो चार इधर उधर की बातें करीं तब अन्त में पूछा, "अच्छा मनो, तुमने कभी यह बात भी सुनी है? उस दिन अमल ने क्यों तुम्हारे भाई को घर से निकाल दिया था?"

मनोरमा ने अमल से सब कुछ सुना था। अनीता ने लिण्डले से जो कहा था अमल ने मनोरमा से भी ठीक वही कहा था। मनोरमा ने इस समय, इच्छा न रहते हुए भी, सरयू से वेही बातें कह डालीं।

सरयू ने शान्ति का एक गम्भीर निःश्वास त्याग किया। उसका मन इन्द्रनाथ के प्रति श्रद्धा से भर गया। उसने जो ऐसे महान चरित्र महापुरुष पर बिन्दुमात्र भी सन्देह किया था, यह सोच उसका हृदय धिक्कार से पूर्ण हो गया। अनीता के लिये भी उसे बहुत दुःख हुआ। वह गम्भीर होकर सोचने लगी। इस सम्बन्ध में उसने फिर कोई बात नहीं की।

सैंतालीसवां परिच्छेद

उस दिन दोपहर के समय अनीता अपने घर में कुर्सी पर बैठी एकाग्र मन से आयने की ओर देखती कुछ सोच रही थी। उसकी दोनों आंखों से आंसू टपक रहे थे।

विवाह की भीड़ भाड़ समाप्त हुए भये आज तीन चार दिन हो चुके हैं। उसने जाने के लिये बार बार प्रस्ताव किया है, पर अमल उस प्रस्ताव पर किसी प्रकार राज़ी नहीं होता। मनोरमा भी बार बार रो रो कर अनुरोध करती है। परन्तु उसे जाना ही पड़ेगा। क्यों जाना होगा? इस प्रश्न का कोई उत्तर उसके पास नहीं है। परन्तु उसे जाना ही पड़ेगा—यह मानो किसी की आज्ञा है। वह तर्क में अपने भाई और भाभी से बार

बार हार गई है। परन्तु जाना अनिवार्य है इस बात को एक क्षण के लिये भी नहीं भूली है।

परन्तु फिर यह भी है, कि लौटने की बात सोचते ही उसका प्राण निकलने लगता है। वेदना से हृदय पूर्ण हो जाता है। अश्रु सागर उमड़ने लगता है। हाय, वह क्यों यहां आई? नारायण ने उसे इस परीक्षा में डाला ही क्यों? अपने चरणों में स्थान देकर फिर क्यों उन्होंने उसको त्याग दिया?

भीषण परीक्षा है! आजन्म का स्नेह पूर्ण गृह, भ्राता का असीम स्नेह, मनोरमा का एकाग्र अनुराग, सभी बन्धन हैं। परन्तु सबसे अधिक आकर्षण की वस्तु है इन्द्रनाथ! इन कई दिनों में जो इन्द्रनाथ बराबर उसके निकट ही रहा, केवल इस बात ने ही उसके शरीर और मन को एक अपूर्व आनन्द से पूर्ण कर रक्खा है। इन्द्रनाथ अब पहले के ऐसा उसके पास नहीं आता, उसके साथ सम्भाषण नहीं करता। परन्तु उसको देख कर ही, उसकी निकटता को अनुभव कर ही, वह आनन्द से पूर्ण हो जाती है। यहां रहने से वह बार बार इन्द्रनाथ को देख सकेगी,—यह सोच कर उसके प्राण में एक मादकता भर उठती है। परन्तु फिर एक क्षण के बाद ही उसका प्राण रो उठता है,—हाय अपने श्रीनारायण को पाकर भी वह उन्हें खो बैठेगी? उनके चरण-कमल में आश्रय पाकर भी उसका दुर्बल चित्त इस संसार की छोटी छोटी वस्तुओं को नहीं छोड़ सकेगा! उसका हृदय इतना दुर्बल, इतना हीन, और इतना अविश्वासी

बना रहेगा? बार बार वह हाथ जोड़ कर नारायण की मूर्त्ति का ध्यान कर प्रार्थना करती, "हे देव, हे प्रभु, हे स्वामी, दया कर इस परीक्षा में मुझे उत्तीर्ण कर दो, मेरे हृदय को शान्त कर दो। मैं तुम्हारी ही हूं प्रभु, और किसी की नहीं हूं, मेरे दुर्बल चित्त से मुझे बचाओ!" परंतु प्रार्थना समाप्त होते ही इन्द्रनाथ की कमनीय मूर्ति उसके मन में सजग हो कर उसे प्रलुब्ध करने लगती।

कभी कभी वह सोचती, "मैं क्यों जाऊं? भाई, भाभी, जो कह रहे हैं वह क्या सच नहीं है? मैं क्या यहां अपने ही घर में नारायण मूर्त्ति की स्थापना कर नित्य उनकी पूजा बंदना नहीं कर सकती हूं? इतने के लिये मौसी के गृह में जाने की क्या आवश्यकता है?" परन्तु आवश्यकता है—यह बात उसके समस्त अन्तःकरण में ध्वनित हो उठती। मानो कोई आकर उससे कहता कि जीवन के एक महान सन्धिस्थल में आकर यहीं रुक जाओगी तो तुम्हारी पराजय होगी, तुम्हारी आत्मा की उन्नति न होगी। यदि जयी होना चाहो, यदि आत्मा को उन्नत करना चाहो, तो यहां से चले जाना ही पड़ेगा।

अन्तर के साथ इस द्वन्द्व में जब इस समय उसका हृदय छिन्न-विच्छिन्न हो रहा था, और जब वह सब प्रकार के आकर्षणों से खिंच कर प्रायः सम्पूर्ण रूप से घर की ओर ही आकर्षित हो चुकी थी, ऐसे समय में आया ने आकर खबर दी कि गोस्वामीजी आये हैं।

सुन कर अनीता चमक उठी। न जाने क्यों गोस्वामीजी के पास जाने में उसको बहुत लज्जा सी मालूम होने लगी। अपराधी जैसे विचारक के पास जाने में लज्जा से मर जाता है वैसे ही उसे पीड़ा होने लगी। फिर भी झट हाथ मुंह धोकर स्वामीजी से मिलने गई।

गोस्वामीजी ने बहुत सा सामान असबाब बक्स इत्यादि लाकर बरामदे में भर दिया था। अनीता ने उनकी पदधूलि ग्रहण कर आश्चर्य से कहा, "स्वामीजी, यह सब क्या है?"

"तुम्हारी चीजें हैं, मां! श्यामासुन्दरी ने मेरे द्वारा भेजवा दिया है।"

"क्यों? मैं तो कल ही वहां जाऊंगी।"

"तुम क्या फिर वहां जाओगी? नहीं, यह उनकी इच्छा नहीं है। पद्मलोचन महाशय ने साफ साफ कह दिया है कि तुम्हें अब वहां नहीं रहना होगा।"

अनीता स्तम्भित हो गई। उसने स्वामीजी को एक उचित स्थान पर बिठा कर कहा, "मैं कुछ नहीं समझ रही हूं स्वामी-जी! उनके क्रोध का क्या कारण है? मैंने तो जान बूझ कर कोई अपराध नहीं किया है।"

"मां, तुमने अपराध किया है, तुमने अयोग्य पर दया की है, ऐसे को सदा यही दंड मिलता है। महाप्रभु ने अपनी दया के लिये मार खाया था, तुम क्या इतना अपमानित भी न होगी!"

"तब, उपाय क्या है?"

"किसका उपाय ! तुम क्या असमर्थ हो, हीन हो, दरिद्र हो, कि तुम उन लोगों पर निर्भर कर के रहोगी !"

"पर स्वामीजी, मैं अब कहां जाऊंगी ?"

"क्यों, यहीं रहो न !"

अनीता अश्रु-संवरण न कर सकी। बोली, "आप भी यही बात बोल रहे हैं ! श्री नारायण क्या मुझे एक दम त्याग देंगे !"

स्वामीजी ने कुछ आश्चर्य के साथ कहा "मां, शायद मैंने तुम्हारी बात को न समझ कर तुम्हारे मन में दुःख पहुँचाया है। तुम क्या यहां रहना नहीं चाहती हो ?"

"नहीं।"

"अच्छा, तो दूसरा घर ठीक करो। तुम्हारे लिये दासियों या साथियों का अभाव न होगा ?"

"और श्री नारायण ?"

"अपने घर में नारायण की स्थापना करो और अपने मन के अनुसार उनकी पूजा करो।"

अनीता कुछ सोच कर बोली, "अच्छा, स्वामीजी, क्या वृन्दावन में कोई आश्रय नहीं मिल सकेगा ?" गोस्वामी जी अवाक् हो गये। बोले, "वृन्दावन ! तुम यह क्या कह रही हो ?"

"क्यों, स्वामी जी, मैं क्या वृन्दावन में आश्रय न पा सकूंगी ?"

बहुत देर तक एकाग्रचित्त से अनीता के लज्जावनत मुंह की ओर देखकर गोस्वामीजी ने कहा, "यदि तुम न पा सकोगी, मां तो और कौन पा सकेगा !"

बहुत बात चीत के बाद अन्त में यही स्थिर हुआ कि कुछ दिन बाद गोस्वामीजी आकर अनीता को वृन्दावन ले जायेंगे।

सन्ध्याकाल में अमल और मनोरमा ड्राइंगरूम में बैठे थे। अनीता के आने पर अमल ने कहा, "अनि, बहुत दिन से मैंने तुम्हारा अंगरेजी गाना नहीं सुना, कोई सुनाओ न?"

अनीता ने स्निग्ध मुस्कुराहट के साथ कहा, "क्या गाऊँ? बताओ।"

"तुम्हारी जो इच्छा हो।"

अनीता पियानो के पास बैठ कर हेन्डेल के ओरेटोरिस का एक गाना गाने लगी। उस सङ्गीत की मूर्च्छना में उसके सुमधुर कण्ठ ने एक अपूर्व अमृतधारा की रचना की। सुन कर अमल और मनोरमा मुग्ध हो गये।

उसके बाद मनोरमा ने एक देशी गान गाने के लिये कहा। अनीता गाने लगी—

"(मुझे) जाना ही होगा, जाना ही होगा,
हरि की वंशी बाजि रही है—
जाना ही होगा, जाना ही होगा।"

अनीता इस गाने के तीव्र आवेग पर एक स्निग्ध विषाद का मृदु प्रलेप देकर गाने लगी। गाना सुन कर न मालूम क्यों अमल और मनोरमा के मन अन्धकार-पूर्ण हो गये।

सङ्गीत समाप्त होने के बाद सब लोग कुछ देर तक निर्वाक

निश्चल होकर बैठे रहे। तब अनीता बोली, "भैया, परसों मुझे छुट्टी देनी होगी।"

अमल बोला, "यह क्या! मनो, तुमने कहा था न कि अनि ने अपना सब सामान मंगवा लिया है और अब वह नहीं जायगी?"

अनीता हंस कर बोली, "भाभी ने भी झूठ नहीं कहा है, मेरे सामान असबाब इत्यादि आ गये हैं फिर भी मुझे परसों ही यहां से चले जाना होगा।"

मनोरमा बोली, "अनि बहन, तुम क्यों बार बार इस बात को कह कर मुझे रुलाया करती हो! तुम्हारे चले जाने से हम लोग यहां कैसे रहेंगे?"

वह रोने लगी। अनीता की आंखों से भी आंसू निकलने लगा। फिर भी वह बोली, "उपाय नहीं है, बहन, मुझे जाना ही पड़ेगा—मुझ पर इतनी ही दया करो कि मुझे हंस कर बिदा करो।"

अमल ने एक दुःसह वेदना का अनुभव किया। पर उसके मुंह से कोई बात न निकली। बहुत कष्ट से वह बोला, "अच्छा, परसों न! अभी तो बहुत देर है—आज, कल, तब परसों! परसों की बात को सोच कर अभी से दुःखित होना ठीक नहीं है।"

अनीता ने एक म्लान मुस्कुराहट के साथ कहा, "भैया, सो सब मैं कुछ नहीं जानती हूं! मैं परसों जा रही हूं इतना कह देती हूं।"

वह बहुत कष्ट से आत्मसंवरण कर वहां से उठ कर बाहर चली गई। पर उसका हृदय कांपने लगा। दोनों हाथों से अपने वक्ष को दाब कर इधर उधर घूमते घूमते वह उस स्थान पर पहुँची जहां बहुत दिन नहीं हुए इन्द्रनाथ से उसने प्रेम निवेदन किया था।

उसके मन में उस दिन का दृश्य अग्नि-रेखा के समान चित्रित हो उठा।

जिस कुर्सी को पकड़ कर इन्द्रनाथ निर्मम देवता की मर्मर मूर्त्ति के समान निश्चल खड़ा था, वह कुर्सी अब भी वहीं थी। सम्पूर्ण अन्यमनस्क होकर उस कुर्सी को अपने हृदय से लगा कर अनीता उस वेदनामय स्मृति को अनुभव करने लगी। उस दिन की प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना, विषाक्त कांटों के समान उसके वक्ष में चुभने लगी। तो भी केवल इस स्मृति से ही उसे कितना आनन्द मिला! इन्द्रनाथ की स्मृतिमात्र ही जो आनन्द-मय थी! इसके अतिरिक्त उसे याद आई उस दिन की वह बात जो उन्मत्त आवेग के साथ उसने इन्द्रनाथ से कही थी—कि वह उससे प्रेम करती है। इसे सोच कर ही उसे बड़ी लज्जा हुई, परन्तु साथ साथ बहुत आनन्द भी मिला। अनीता तन्मय होकर उस व्यक्त प्रेम के उन्मत्त आनन्द का उपभोग करने लगी।

इस समय इन्द्रनाथ नीचे उद्यान में टहल रहा था। इस बार यहां आकर उसे सुख नहीं मिला था। अनीता की व्यथापूर्ण मूर्त्ति को देख कर उसका मन गम्भीर वेदना से पीड़ित हो रहा

था। उसके हृदय के अनुपभोग्य, निपीड़ित, निष्पेषित प्रेम ने उस-के अन्तःकरण को वेदना से पूर्ण कर दिया था। परन्तु उससे भी अधिक पीड़ित कर रहा था—अनीता का व्यर्थ जीवन। उसके लिये जो इन्द्रनाथ स्वयं ही सम्पूर्ण रूप से दायी है, यह उसे विदित था। किस अशुभ मुहूर्त्त में अनीता ने इन्द्रनाथ को देखा था! जिसके लिये इन्द्रनाथ अपने जीवन को बलिदान कर सकता था—उसी के जीवन को मरुभूमि के समान बना देने वाला वह कितना बड़ा अभागा है!!

बहुत देर तक उद्यान में अकेले टहलने के बाद इन सब दुःखदायी चिन्ताओं से अत्यंत पीड़ित हो, अन्त में इन्द्रनाथ अस्थिर होकर बंगले की ओर लौटा।

घर में पहुँच कर ही देखा—अनीता खड़ी है—अश्रुमुखी अनीता वहीं खड़ी है, उसी कुर्सी से लिपट कर खड़ी है, और उसी बात की चिन्ता कर रही है। उसकी आंखों से आंसू की धारा बह रही है। इन्द्रनाथ को ऐसा मालूम हुआ कि मानो किसीने उसके कलेजे में छुरी मारी हो। उसके हृदय की वेदना असहनीय हो गई।

इस बार इन्द्रनाथ अनीता से यथासम्भव कम बोला था। उसके साथ एकान्त में बातें करने का उसने एक बार भी साहस नहीं किया है। परन्तु अब कोई बात न कह कर वहां से भाग जाना केवल अभद्रोचित ही नहीं होगा, इस अवस्था में अनीता को छोड़ कर चले जाना उसके साथ निष्ठुरता करना होगा।

इसी लिये एक दो साधारण बातें कर उसको शान्त करने की इच्छा से बनावटी हंसी हंस के इन्द्रनाथ बोला, "अब अपने भैया के पास नहीं जाती हो अनीता—क्या उसे कभी खाली नहीं पाती हो! पर यह मनोरमा का बहुत अन्याय है। मैं उससे पूछूंगा!"

अनीता कुछ लज्जित होकर बोली, "नहीं नहीं, मैं वहीं तो थी—अभी उन दोनों के पास ही से तो भागी आ रही हूं!"

"भागी आ रही हो! क्यों? विवाह के बाद से क्या वे बहुत भयानक हो गये हैं!"

"हां, बहुत नहीं तो कुछ कुछ तो जरूर ही—कम के कम उन लोगों के लिये जिन्होंने विवाह नहीं किया है।"

"अच्छा! यह तो बहुत अन्याय की बात है! तो शीघ्र शीघ्र इसका कोई उपाय कर डालो! तुम भी विवाह कर लो।"

अनीता ने अपनी बड़ी बड़ी व्यथित आंखों से एक बार इन्द्रनाथ की ओर देखा—इसके बाद जमीन की ओर देखने लगी, पर मुंह से कुछ न बोली। उस दृष्टि में हृदय के अन्तरतम स्थल का जो करुण क्रन्दन छिपा हुआ था वह इन्द्रनाथ समझ सका।

इन्द्रनाथ की अपने को चाबुक मारने की इच्छा हुई। अपनी कही हुई बात को घुमाने की चेष्टा कर वह कहने के योग्य कोई दूसरी बात खोजने लगा, पर उसे कोई दूसरी बात मिली ही नहीं। जितना ही समय व्यतीत होने लगा उतना ही वह नीर-

चता उसे पीड़ित करने लगी। अन्त में इस नीरवता को भङ्ग करने के लिये वह बोला, "अच्छा, अनीता, अब तुम यहीं रहोगी न?"

अनीता ने शान्त होकर कहा, "नहीं, परसों जा रही हूं।"

"जा रही हो? मनोरमा तो कहती थी कि अब तुम नहीं जाओगी। फिर क्या हुआ? मगर यह तो सोचो अनीता कि क्या तुम उचित काम कर रही हो, तुम्हें क्या अपने भाई के मन में इतनी व्यथा पहुँचा कर चला जाना चाहिये? उसके सिवाय मनोरमा, सरयू, मैं, हम सब इस बात से कितना दुःखित होंगे, यह क्या तुम नहीं समझती हो, अनीता?"

अनीता अश्रु रुद्ध कण्ठ से बोली, "और मैं भी क्या कम व्यथा पाऊंगी? पर जाने के सिवाय और दूसरा उपाय जो नहीं है।"

इन्द्रनाथ ने और भी दृढ़ता के साथ कहा, "जिससे तुम्हें व्यथा मिले, जिन्हें तुमसे प्रेम है उन्हें व्यथा मिले, उस काम को न करने से क्या तुम्हारे देवता सन्तुष्ट न होंगे अनीता? तुमने एक दिन कहा था कि मैं तुम्हारा देवता हूँ। मुझे देवता या गुरु होने की स्पर्द्धा नहीं है, फिर भी आयु में तुमसे बड़ा हूं और तुम्हारा हिताकांक्षी हूं, इस लिये कहता हूं कि तुम भूल कर रही हो, अनीता। यह घर छोड़ कर चले जाने से तुम्हें शान्ति न मिलेगी अनीता—तुम न जाओ!"

बहुत देर तक नीरव रहने के बाद अनीता बोली, "तुम

मुझसे ऐसा न कहो ! तुम सचमुच ही मेरे देवता हो ! तुम्हारे बाधा देने पर मैं कभी नहीं जा सकूंगी, अस्तु तुम मुझे क्षमा करो। मुझे जाना ही होगा !"

एक क्षीण क्षुद्र नारी-मूर्त्ति छाया के अन्तराल में खड़ी थी। किसी ने यह लक्ष्य नहीं किया था। इस बात को सुन कर वह और खड़ी रह न सकी। अग्रसर होकर अनीता का हाथ पकड़ कर वह बोली, "जाना ही होगा ! क्यों जाना होगा, बहन !"

इन्द्रनाथ और अनीता दोनों ही चौंक उठे—वह सरयू थी। सरयू ने अनीता के हाथ को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर कहा, "तुम क्यों जाना चाहती हो, बहिन ! तुम्हारे प्राण में जो दुःख है, तुम उसको छिपा नहीं सकती हो इसी लिये ? पर मैं जान गई हूँ कि तुम और मैं एक ही पेड़ के दो मुरझाये हुए फूल हैं ! जिनके लिये तुम संसार त्याग कर चली जा रही हो, वे भी तो दिन रात तुम्हारे लिये ही संसार में अन्धकार देख रहे हैं। वे भी तो तुम्हारे बिना रात दिन दुर्बल हुए जा रहे हैं। मैं जान गई हूं कि उनको तुमसे कितना प्रेम है—तुम्हारे बिना उनको एक क्षण के लिये भी शान्ति नहीं है। तब, मैं क्या इतनी बड़ी पापिन हूं कि तुम दोनों को आग में जलाकर मार डालूंगी ? अगर मुझसे ऐसा हो तो मेरा जीवित रहना धिक है। आओ बहन !"

कहकर अनीता को खींच कर सरयू इन्द्रनाथ के पास ले गई और इन्द्रनाथ के हाथ को अनीता के हाथ से मिला कर

बोली, "यह लो बहन, अपने यथा-सर्वस्व को मैं तुम्हें सौंपती हूँ। भगिनी के समान मुझसे स्नेह करना, बहन! हम दोनों मिल कर इनकी सेवा कर कृतार्थ हो जायंगी—और नहीं तो मेरे भाग्य में जो बदा है सो होगा।"

एक क्षण तक सब स्तब्ध हो रहे। इन्द्रनाथ और अनीता के कण्ठ रुद्ध हो गये। पर इन्द्र अपने को सम्हाल कर बोला, "तुम यह क्या कर रही हो, सरयू!!"

सरयू बोली, "चुप रहो, तुम्हें अब और कुछ नहीं बोलना होगा। तुम वीर हो, तुम देवता हो,—अब तक तुम वीर के समान, देवता के समान, अपना कर्त्तव्य पालन करते आये। आज मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूंगी। इसमें तुम बाधा नहीं दे सकते! अनीता बहन, तुम भी कोई आपत्ति न करना! मेरे मन में कोई ग्लानि नहीं है। मैं तुम लोगों की सब बात जान गई हूँ। तुम लोगों ने जो किया है वह तुम्हीं लोगों के योग्य था। अब तुम लोग मुझे अपने योग्य बनने का अवसर दो। बहन, तुम अब ब्राह्म नहीं रही, वैष्णव हो गई हो। अब मेरे स्वामी के तुम्हारे साथ विवाह करने में कोई बाधा नहीं हो सकती है।"

बड़ी मुश्किल से अनीता बोल सकी। उसने इन्द्रनाथ का हाथ नहीं छोड़ा, बल्कि इन्द्रनाथ और सरयू दोनों का हाथ मिलाकर, सरयू के हाथ पर इन्द्रनाथ का हाथ रख कर, बोली—"बहन, मैं तुम्हारे स्नेह के दान को अस्वीकार नहीं कर सकती

हूं।" कह कर उसने इन्द्रनाथ के हाथ का दो बार चुम्बन किया। इसके बाद कहा, "तुम्हारी दया से मैंने आज अमूल्य रत्न लाभ किया। अब मैं अपना यह सर्वस्व तुम्हें देती हूं, बहन, तुम ग्रहण करो।" कह कर सरयू के हाथ में इन्द्रनाथ का हाथ देकर उसने घुटना टेक कर हाथ जोड़ कर उन लोगों को प्रणाम किया। इसके बाद बोली, "अब तक मैंने अपने देवता को, अपने नारायण को, अकेला ही देखा था, अब तुम लोगों की युगल-मूर्त्ति को देख कर धन्य हो गई। लक्ष्मी-नारायण! लक्ष्मीनारायण!!

अनीता चली गई। इन्द्रनाथ ने सरयू को अपनी छाती से लगा लिया। दोनों के आंसुओं की धारा ने उनके अन्तर की सब ग्लानि, सब अन्धकार, को धो डाला।

× × ×

अनीता वृन्दाबन चली गई। अमल और मनोरमा उसके साथ साथ वृन्दावन तक जाकर वहां उसके यथा-सम्भव सुख से रहने का सब प्रबन्ध कर आये।

अमल को घर लौटने की इच्छा न हुई। वह मनोरमा और टुकू को लेकर पृथ्वी-पर्यटन करने के लिये निकल गया। आज कल वे लोग अमेरिका में हैं।

॥ समाप्त ॥